उन्होंने कोई उदाहरण देने को कहा। हमने अनायास ही पुस्तिका खोली। जैसा उसमें लिखा था, पढ़ कर सुनाया। उसमें एक पाठ था :—

संकोचनरहस्यो नाम—यंत्रांगोपसंहाराधिकोक्तरीत्या अंतरिक्षे अति वेगात् पलायमानानां विस्तृतखेटयानानामपाय सम्भवे विमानस्य सप्तमकीलीचालनद्वारा तदंगोपसंहारक्रिया रहस्यम्।

अर्थात् यदि आकाश में आपका विमान अनेकों अतिवेग से भागने वाले शत्रु-विमानों से घिर जाय और आप के विमान के निकल भागने या नाश से बचने का कोई उपाय न दिखाई दे तो आप अपने विमान में लगी सात नम्बर की कीली (Lever) को चलाइए। इससे आप के विमान का एक-एक अंग सिकुड़ कर छोटा हो जायेगा और आप के विमान की गति अति तेज हो जायेगी और आप निकल जायेंगे। इस पाठ को सुन कर श्री हॉले उत्तेजित और चकित होकर कुर्सी से उठ खड़े हुए और बोले—"वर्गीज, क्या तुमने कभी चील को नीचे झपटते नहीं देखा है, उस समय कैसे वह अपने शरीर तथा पैरों को सिकुड़ कर अति तीव्र गति प्राप्त करती है, यही सिद्धान्त इस यन्त्र द्वारा प्रकट किया है। इस प्रकार के अनेकों स्थल जब उन्हें सुनाये तो वह इस ग्रंथिका के साथ मानो चिपट ही गये। उन्होंने हमारे साथ इस ग्रंथ के केवल एक सूत्र (दूसरे) ही पर लगभग एक महीना काम किया। विदा होने के समय हमने संदेह प्रकट करते हुए उनसे पूछा—"क्या इस परिश्रम को व्यर्थ भी समझा जा सकता है?" उन्होंने बड़े गंभीर भाव से उत्तर दिया—"मेरे विचार में व्यक्ति के जीवन में ऐसी घटना शायद दस लाख में एक बार आती है (It is a chance one out of a million)"। पाठक इस ग्रंथ की उपयोगिता का एक विदेशी विद्वान् के परिश्रम और शब्दों से अनुमान लगा सकते हैं। इसमें से उसे जो नये-नये भाव लेने थे, ले गया। हम लोगों के पास तो वे सूखे पन्ने ही पड़े हैं।

विमानप्रकरणम् :

ग्रन्थ परिचय—यह विमानप्रकरण भरद्वाज ऋषि के महाग्रन्थ 'यन्त्रसर्वस्व' का एक भाग है। 'यन्त्रसर्वस्व' महाग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इसके 'विमान-प्रकरण' पर यति बोधानन्द ने व्याख्या वृत्ति के रूप में लिखी, उसका कुछ भाग हस्तलिखित प्राप्त पुस्तिका में बोधानन्द यूँ लिखते हैं :—

"पूर्वाचार्यकृतान् शास्त्रानवलोक्य यथामति।
सर्वलोकोपकराय सर्वानर्थविनाशकम्॥

त्रयी हृदयसन्दोहसाररूपं सुखप्रदम् ।
सूत्रैः पञ्चशतैर्युक्तं शताधिकरणैस्तथा ॥
अष्टाध्यायसमायुक्तमति गूढं मनोहरम् ।
जगतामतिसंधानकारणं शुभदं नृणाम् ॥
अनायासाद् व्योमयानस्वरूपज्ञानसाधनम् ।
वैमानिकाधिकरणं कथ्यतेऽस्मिन् यथामति ॥
संग्रहाद् वैमानिकाधिकरणस्य यथाविधि ।
लिलेख बोधानन्दवृत्त्याख्यां व्याख्यां मनोहरम् ॥"

अर्थात् अपने से पूर्व आचार्यों के शास्त्रों का पूर्णरूप से अध्ययन कर सबके हित और सौकर्य्य के लिये इस 'वैमानिक अधिकरण' को ८ अध्याय, १०० अधिकरण और ५०० सूत्रों में विभाजित किया गया है और व्याख्या श्लोकों में निबद्ध की है। आगे लिखते हैं :—

"तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकारे सम्प्रदर्शितम् ।
नानाविमानवैचित्र्यरचनाक्रमबोधकम् ॥"

भाव है : भरद्वाज ऋषि ने अति परिश्रम कर मनुष्यों के अभीष्ट फलप्रद ४० अधिकारों से युक्त 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रंथ रचा और उसमें भिन्न-भिन्न विमानों की विचित्रता और रचना का बोध ८ अध्याय, ५०० सूत्रों द्वारा कराया।

इतना विशाल वैमानिक साहित्य ग्रंथ था जो लुप्त है और इस समय केवल बड़ौदा पुस्तकालय से एक लघु हस्तलिखित प्रतिलिपि केवल ५ सूत्रों की ही मिली है। शेष सूत्र न मालूम गुम हो गये या किसी दूसरे के हाथ लगे। हमारे एक मित्र एन० बी० गाद्रे ने हमें ताञ्जौर से एकबार लिखा था कि वहाँ एक निर्धन ब्राह्मण के पास इस विमान-शास्त्र के १५ सूत्र हैं, परन्तु हमें खेद है कि हम श्री गाद्रे की प्रेरणा के होते हुए भी उन सूत्रों को मोल भी न ले सके। उसने नहीं दिये। कितनी शोचनीय कथा तथा अवस्था है।

इस प्राप्त लघु पुस्तिका में सबसे पहिले प्राचीन विमानसम्बन्धी २५ विज्ञान-ग्रंथों की सूची दी हुई है। जैसे :—

शक्तिसूत्र—अगस्त्यकृत; सौदामिनीकला—ईश्वरकृत; अंशुमन्तंत्रम्—भरद्वाजकृत; यन्त्रसर्वस्व—भरद्वाजकृत; आकाशशास्त्रम्—भरद्वाजकृत; वाल्मीकिगणितं—वाल्मीकिकृत इत्यादि।

इस प्रकार १०० अधिकरण इस 'वैमानिक प्रकरण' की हस्तलिखित पुस्तिका में दिये गये हैं। पाठक इस पर तनिक भी ध्यान देंगे तो देखेंगे कि जो विषय या विद्या इन अधिकरणों में दी गई है वह आजकल की वैज्ञानिक विद्या से कम महत्त्व की नहीं है।

उपलब्ध चार सूत्र :

इन चार सूत्रों के साथ बोधानन्द की वृत्ति के अतिरिक्त कुछ अन्य लेखकों के नाम तथा विचार भी दिये गए हैं।

प्रथम सूत्र है :—"वेगसाम्याद् विमानोऽण्डजानामिति।"

इस सूत्र द्वारा विमान क्या है इसकी परिभाषा की गई है। बोधानन्द अपनी वृत्ति में कहते हैं कि विमान वह आकाशयान है जो गृध्र आदि पक्षियों के समान वेग से आकाश में गमन करता है। लल्लाचार्य एक अन्य लेखक में भी यही लक्षण देते हैं।

नारायणाचार्य के अनुसार विमान का लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट है —

पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु खगवद्वेगतः स्वयम्।
यः समर्थो भवेद्गन्तुं स विमान इति स्मृतः॥

अर्थात् जो विमान पृथिवी, जल तथा अंतरिक्ष में पक्षी के समान वेग से उड़ सके उसे ही विमान कहा जाता है। अर्थात् उस समय में विमान पृथिवी पर, पानी में तथा वायु (हवा) में तीनों अवस्थाओं में वेग से चलनेवाले होते थे। ऐसा नहीं कि पृथिवी या पानी में गिर कर नष्ट हो जाते थे।

विश्वम्भर तथा शंखाचार्य के अनुसार :—

देशाद्देशान्तरं तद्वद् द्वीपाद्द्वीपान्तरं तथा।
लोकाल्लोकान्तरं चापि योऽम्बरे गन्तुं अर्हति,
स विमान इति प्रोक्तः खेटशास्त्रविदांवरैः॥

अर्थात् उस समय जो एक देश से दूसरे देश, एक द्वीप से दूसरे द्वीप तथा एक लोक से दूसरे लोक को आकाश द्वारा उड़कर जा सकता था उसे ही विमान कहा जाता था।

प्रथम सूत्र द्वारा विभिन्न खेटकों के विचार प्रकट किये गये हैं।

दूसरा सूत्र—रहस्यज्ञोधिकारी (अ० १ सूत्र २)

बोधानन्द बताते हैं कि रहस्यों को जानने वाला ही विमान चलाने का अधिकारी हो सकता है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए यों लिखते हैं:—

विमान-रचने व्योमारोहणे चलने तथा।
स्तम्भने गमने चित्रगतिवेगादिनिर्णये॥
वैमानिक रहस्यार्थज्ञानसाधनमन्तरा।
यतो संसिद्धिर्नेति सूत्रेण वर्णितम्॥

अर्थात् जिस वैमानिक व्यक्ति को अनेक प्रकार के रहस्य, जैसे विमान बनाने, उसे आकाश में उड़ाने, चलाने तथा आकाश में ही रोकने, पुनः चलाने, चित्र-विचित्र प्रकार की अनेक गतियों के चलाने के और विमान की विशेष अवस्था में विशेष गतियों का निर्णय करना जानता हो वही अधिकारी हो सकता है, दूसरा नहीं।

वृत्तिकार और भी लिखते हैं कि लल्लाचार्य आदि अनेक पुराकाल के विमान-शास्त्रियों ने "रहस्यलहरी" आदि ग्रंथों में जो बताया है उसके अनुसार संक्षेप में वर्णन करता हूँ। ज्ञातव्य है कि भरद्वाज ऋषि के रचे "वैमानिक प्रकरण" से पहले कई अन्य आचार्यों ने भी विमान-विषयक ग्रंथ लिखे हैं, जैसे :—

नारायण और उसका लिखा ग्रंथ	'विमानचन्द्रिका'
शौनक ,,	'व्योमयानतंत्र'
गर्ग ,,	'यन्त्रकल्प'
वाचस्पति ,,	'यानबिन्दु'
चाक्रायणि ,,	'व्योमयानार्क'
धुण्डिनाथ ,,	'खेटयानप्रदीपिका'।

भरद्वाज जी ने इन शास्त्रों का भी भलीभांति अवलोकन तथा विचार करके "वैमानिकप्रकरण" की परिभाषा को विस्तार से लिखा है—यह सब वहाँ लिखा हुआ है।

रहस्यलहरी में ३२ प्रकार के रहस्य वर्णित हैं :—

एतानि द्वात्रिंशद्रहस्यानि गुरोर्मुखात्।
विज्ञानविधिवत् सर्वं पश्चात् कार्यं समारभेत्॥

एतद्रहस्यानुभवो यस्यास्ति गुरुबोधनः।
स एव व्योमयानाधिकारी स्यान्नेतरे जनाः॥

अर्थात् जो गुरु से भलीभांति ३२ रहस्यों को जान उन्हें अभ्यास कर, रहस्यों की जानकारी में प्रवीण हो वही विमानों के चलाने का अधिकारी है, दूसरा नहीं।

ये ३२ रहस्य बड़े ही विचित्र तथा वैज्ञानिक ढंग से बनाये हुए थे। *आजकल के विमानों में भी वह विचित्रता नहीं पाई जाती।* इन ३२ रहस्यों को पूरा लिखना लेख की काया को बहुत बड़ा करना है। पाठकों को ज्ञान तथा अपनी पुरानी कला-कौशल के विकास की झांकी दिखाने के लिए कुछ यन्त्रों का नीचे वर्णन करते हैं :—

१. पहले कुछ रहस्यों के वर्णन में वह अनेक प्रकार की शक्तियों, जैसे छिन्नमस्ता, भैरवी, वेगिनी, सिद्धाम्बा आदि को प्राप्त कर, उनको विभिन्न मार्गों या प्रयोगों जैसे—घुटिका, पादुका, दृश्य, अदृश्यशक्ति मार्गों और उन शक्तियों को विभिन्न कलाओं में संयोजन करके अभेद्यत्व, अछेद्यत्व, अदाह्यत्व, अविनाशत्व आदि गुणों को प्राप्त कर उन्हें विमान-रचना क्रिया में प्रयोग करने की विधियाँ बताई हैं। साथ ही महामाया, शाम्भरादि तांत्रिकशास्त्रों (Technical Literatures) द्वारा अनेक प्रकार की शक्तियों के अनुष्ठानों के रहस्य वर्णित किये हैं। यह लिखा है कि विमानविद्या में प्रवीण अति अनुभवी विद्वान् विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु तथा मय आदि कृतकों (Builders or constructors) के ग्रंथ उस समय उपलब्ध थे। रामायण में लिखा है कि 'पुष्पक' विमान के आविष्कारक या मांत्रिक (Theorist) अगस्त्य ऋषि थे पर उसके निर्माण कर्त्ता विश्वकर्मा थे।

२. आकाश-परिधि-मण्डलों के संधिस्थानों में शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं और जब विमान इन संधि-स्थानों में प्रवेश करता है तो शक्तियाँ उसका सम्मर्दन कर चूर-चूर कर सकती हैं अतः उन संधियों में प्रवेश करने से पूर्व ही सूचना देने वाला "रहस्य" विमान में लगा होता था जो उसका उपाय करने को सावधान कर देता था। क्या यह आजकल के (Radar) के समान यन्त्र का बोध नहीं देता!

३. माया विमान या अदृश्य विमान को दृश्य और अपने विमान को अदृश्य कर देने वाले यन्त्र रहस्य विमानों में होते थे।

४. संकोचन रहस्य—शत्रु के विमानों से घिरे अपने विमान को भाग निकलने के लिये अपने विमान की काया को ही सिकुड़ कर छोटा करके वेग को बहुत बढ़ा कर विमान में लगी एक ही कीली से यह प्रभाव प्राप्त किया जाने वाला रहस्य भी होता था। आजकल कोई भी विमान ऐसा अपने शरीर को छोटा या बड़ा नहीं कर सकता। प्राचीन विमान में एक ऐसा भी 'रहस्य' लगा होता था जिसे एक से दस रेखा तक चलाने से विमान उतना ही विस्तृत भी हो सकता था।

इसी प्रकार अन्य अनेकों 'रहस्य' वर्णित हैं जिनके द्वारा विमान के अनेक रूप चलते-चलते बदले जा सकते थे जैसे अनेक प्रकार के धूम्रों की सहायता से महाभयप्रद काया का विमान, या सिंह, व्याघ्र, भालू, सर्प, गिरि, नदी वृक्षादि आकार के या अति सुन्दर, अप्सरारूप, पुष्पमाला से सेवित रूप भी अनेक प्रकार की किरणों की सहायता से बना लिये जाते थे। हो सकता है ये Play of colours, spectrums द्वारा उत्पन्न किये जाते हों।

५. तमोमय रहस्य द्वारा अपनी रक्षार्थ अंधेरा भी उत्पन्न कर सकते थे। इसी प्रकार विमान के अगले भाग में संहारयंत्रनाल द्वारा सप्त जातीय धूम को पञ्चर्भविवेकशास्त्र में बताये अनुसार विद्युत् संसर्ग (Expansion of gases by electric sparks) से पांच स्कन्ध-वात नाली मुखों से निकली तरंगों वाली प्रलयनाशक्रियारूपी "प्रलय रहस्य" का वर्णन भी है।

६. महाशब्दविमोहन रहस्य शत्रु के क्षेत्रों मे बम बरसाने की अपेक्षा विमान में महाशब्दकारक ६२ ध्मानकलाघर्षण शब्द (By 62 blowing chambers) जो एक महाभयानक शब्द उत्पन्न करता था, जिससे शत्रुओं के मस्तिष्क पर किष्कुप्रमाण कम्पन (Vibrations) उत्पन्न कर देता था और उसके प्रभाव से स्मृति-विस्मरण हो शत्रु मोहित या मूर्च्छित हो जाते थे। आजकल के Acoustic science (शब्द विज्ञान) के जानने वाले जानते हैं कि शब्दतरंगें इस प्रकार की उत्पन्न की जा सकती हैं जो पत्थर की दीवार पर यदि टकराई जाय तो उस दीवार को भी तोड़ दें, मस्तिष्क का तो कहना ही क्या। इस प्रकार Acoustics विद्या-कोविद विमान में "महाशब्द-विमोहनरहस्य" के प्रभाव को सच्चा सिद्ध करता है।

विमान की विचित्र गतियों अर्थात् सर्पवत् गति आदि को उत्पन्न करना एक ही कीली के आधार पर रखा गया था। इसी प्रकार शत्रु के विमान में अत्यन्त वेगवान कम्पन करने का "चापलरहस्य" भी होता था। इस रहस्य के विषय में

लिखा है कि विमान के मध्य में एक कीली या लीवर (lever) लगा होता था। जिसके चलाने मात्र से एक चुटकी भर के छोटे से काल में (एकछोटिकावछिन्नकाले) ४०८७ वेग की तरंगें उत्पन्न हो जाएँगी और उन्हें यदि शत्रुविमान की ओर अभिमुख कर दिया जावे तो शत्रुविमान वेग से चक्कर खाकर खण्डित हो जायेगा।

"परशब्दग्राहक" या "रूपाकर्षक" तथा "क्रियाग्रहणरहस्य" का भी वर्णन दिया हुआ है। उस समय का परशब्दग्राहक यंत्र आजकल के रेडियो से अधिक उत्तम इसलिये था क्योंकि आजकल तब तक radio शब्द ग्रहण नहीं करता जबतक दूसरी ओर से शब्द को प्रसारित (broadcast) न किया जाये। कोई भी व्यक्ति अपनी बातें शत्रु के लिये प्रसारित नहीं करता तथापि उस समय का परशब्दग्राहकरहस्य सब कुछ ग्रहण कर लेता था। वहाँ लिखा है—"परविमानस्थजनसम्भाषणादि सर्वं शब्दाकर्षणं" अर्थात् शब्द पकड़ते थे। इसी प्रकार परविमानस्थित वस्तुरूपाकर्षण भी करने के यन्त्र थे। "क्रियाग्रहणरहस्य" विशेष रश्मियों और द्रावक शक्ति तथा सतवर्गी सूर्यकिरणों को दर्पण द्वारा एक शुद्धपट (White screen) पर प्रसारित करने पर दूसरों के विमान या पृथिवी अथवा अंतरिक्ष में जहाँ कहीं कोई भी क्रिया हो रही होती थी उसके स्वरूप प्रतिबिम्ब (Images) शुद्धपट पर मूर्तिवत् चित्रित हो जाते थे जिसे देख कर दूसरों की सब क्रियाओं का पता चल जाता था। यह आजकल के Kinometography या Television के समान यन्त्र था।

अपने प्राचीन विमानों की विशेषताओं का कितना और वर्णन किया जावे, इस प्रकार के अनेकों अद्भुत चमत्कार करने वाले यंत्र हमारे विद्वान् शास्त्री जानते थे। स्थानाभाव के कारण इन यन्त्रों के विषय में अधिक नहीं लिख सकते इसलिये तीसरे तथा चौथे सूत्र का संक्षेप में वर्णन करते हैं।
तीसरा सूत्र है : पञ्चज्ञश्च १।३॥

बोधानन्द की वृत्ति है कि पाँचों को जानने वाला ही अधिकारी चालक हो सकता है। उसने आकाश में पाँच प्रकार के आवर्त, भ्रमर या भवण्डरों का वर्णन किया है। "पञ्चावर्त" का शौनक ने विस्तार से वर्णन किया है। वे हैं रेखापथ, मण्डल, कक्ष, शक्ति तथा केन्द्र। ये ५ प्रकार के मार्ग (Space spheres) आकाश में विमानों के लिये बताते हैं।

इन्हें "शौनक शास्त्र" में "आकूर्मादावरुणान्तं" अर्थात् कूर्म से लेकर वरुण पर्यन्त कहा है। आगे इनकी गणना की हुई है कि ये Spheres या क्षेत्र कितनी-कितनी दूर तक फैले हुए हैं और लिखा है कि इस प्रकार वाल्मीकि-गणित से ही गणित-शास्त्र के पारंगत विद्वानों ने ऊपर के विमान-मार्गों का निर्णय धारित किया है। उनका कथन है कि दो प्रवाहों के संसर्ग से आवर्तन होते हैं और इनके संधिस्थानों में विमान फँसकर तरंगों के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। आजकल भी कई बार अनायास ही इन आवर्तों में फँस जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं, ऐसी दुर्घटनाएँ देखने में आती हैं। "मार्गनिबन्ध" ग्रंथ में गणित इतनी जटिल त्रिकोणमिति (Trignometry) आदि द्वारा वर्णित है जो सर्वसाधारण के लिये अति कठिन है अतः उनका यहाँ वर्णन नहीं किया जा रहा है।

चौथा सूत्र है "अङ्गान्येकत्रिंशत्"। बोधानन्द व्याख्या करके बताते हैं कि शास्त्रों में सब विमानों के अंग तथा प्रत्यङ्गों का परस्पर अंगांगीभाव होना उतना ही आवश्यक है जितना शरीर के अङ्गों में होना। विमान के अङ्ग ३१ होते हैं और उन अङ्गों को विमान के किस-किस भाग में किस-किस अंग को लगाया या रखा जावे, यह "छायापुरुषशास्त्र" में भलीभाँति वर्णित है। आजकल विमानशास्त्री इस ज्ञान को Aeronautic architecture नाम देते है। विमान-चालक के सुलभ और शीघ्र इन अंगों को प्रयोग में लाने के लिये इन अंगों की उचित स्थिति इस सूत्र की व्याख्यावृत्ति निर्देशन कर रही है।

इन अंगों की स्थितियों में सबसे पहिले "विश्वक्रियादर्शन" (Paranomic view of cosmos) दर्पण का स्थान बताया है, पुनः परिवेप-स्थान, अंग-संकोचन यन्त्र स्थान होते हैं। विमानकण्ठ में कुण्ठिणीशक्तिस्थान, पुष्पिणीपिञ्जुलादर्श, नालपञ्चक, गूहागर्भादर्श, पञ्चावर्तकस्कन्धनाल, रौद्रीदर्पण, शब्दकेन्द्रमुख, विद्युद्द्वादशक, प्राणकुण्डिलीसंस्थान, वक्रप्रसारणस्थान, शक्तिपञ्जरस्थान, शिरःकील, शब्दाकर्षक, पटप्रसारणस्थान, दिशाम्पति, सूर्य-शक्तिआकर्षणपञ्जर (Solar energy absorption system) इत्यादि यंत्रों के उचित स्थानों का न्यासन किया हुआ है।

ऊपर वर्णित अनेकों शक्तिजनक संस्थानों, उनके प्रयोग की कलाओं तथा अनेक यंत्रों के विषय में पढ़ कर स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे

लिखा है कि विमान के मध्य में एक कीली या लीवर (lever) लगा होता था। जिसके चलाने मात्र से एक चुटकी भर के छोटे से काल में (एकछोटिकावच्छिन्नकाले) ४०८७ वेग की तरंगें उत्पन्न हो जाएँगी और उन्हें यदि शत्रु-विमान की ओर अभिमुख कर दिया जाये तो शत्रुविमान वेग से चक्कर खाकर खण्डित हो जायेगा।

"परशब्दग्राहक" या "रूपाकर्षक" तथा "क्रियाग्रहणरहस्य" का भी वर्णन दिया हुआ है। उस समय का परशब्दग्राहक यंत्र आजकल के रेडियो से अधिक उत्तम इसलिये था क्योंकि आजकल तब तक radio शब्द ग्रहण नहीं करता जबतक दूसरी ओर से शब्द को प्रसारित (broadcast) न किया जाये। कोई भी व्यक्ति अपनी बातें शत्रु के लिये प्रसारित नहीं करता तथापि उस समय का परशब्दग्राहकरहस्य सब कुछ ग्रहण कर लेता था। यहाँ लिखा है—"परविमानस्थजनसम्भाषणादि सर्व शब्दाकर्षणं" अर्थात् शब्द पकड़ते थे। इसी प्रकार परविमानस्थित वस्तुरूपाकर्षण भी करने के यन्त्र थे। "क्रियाग्रहणरहस्य" विशेष रश्मियों और द्रावक शक्ति तथा सतवर्गी सूर्य-किरणों को दर्पण द्वारा एक शुद्धपट (White screen) पर प्रसारित करने पर दूसरों के *विमान या पृथिवी अथवा अंतरिक्ष में जहाँ कहीं कोई भी क्रिया* हो रही होती थी उसके स्वरूप प्रतिबिम्ब (Images) शुद्धपट पर मूर्तिवत् चित्रित हो जाते थे जिसे देख कर दूसरों की सब क्रियाओं का पता चल जाता था। यह आजकल के Kinometography या Television के समान यन्त्र था।

अपने प्राचीन विमानों की विशेषताओं का कितना और वर्णन किया जावे, इस प्रकार के अनेकों अद्भुत चमत्कार करने वाले यंत्र हमारे विद्वान् लेटशास्त्री जानते थे। स्थानाभाव के कारण इन यन्त्रों के विषय में अधिक नहीं लिख सकते इसलिये तीसरे तथा चौथे सूत्र का संक्षेप में वर्णन करते हैं।

तीसरा सूत्र है : पञ्चाख्य १। ३॥

बोधानन्द की वृत्ति है कि पाँचों को जानने वाला ही अधिकारी चालक हो सकता है। उसने आकाश में पाँच प्रकार के आवर्त, भ्रमर या ववण्डरों का वर्णन किया है। "पञ्चावर्त" का शौनक ने विस्तार से वर्णन किया है। वे हैं रेखापथ, मण्डल, कक्ष, शक्ति तथा केन्द्र। ये ५ प्रकार के मार्ग (Space spheres) आकाश में विमानों के लिये बनाये हैं।

इन्हें "शौनक शास्त्र" में "आकूर्मादावरुणान्तं" अर्थात् कूर्म से लेकर वरुण पर्यन्त कहा है। आगे इनकी गणना की हुई है कि ये Spheres या क्षेत्र कितनी-कितनी दूर तक फैले हुए हैं और लिखा है कि इस प्रकार वाल्मीकि-गणित से ही गणित-शास्त्र के पारंगत विद्वानों ने ऊपर के विमान-मार्गों का निर्णय धारित किया है। उनका कथन है कि दो प्रवाहों के संसर्ग से आवर्तन होते हैं और इनके संधिस्थानों में विमान फँसकर तरंगों के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। आजकल भी कई बार अनायास ही इन आवर्तों में फँस जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं, ऐसी दुर्घटनाएँ देखने में आती हैं। "मार्गनिबन्ध" ग्रंथ में गणित इतनी जटिल त्रिकोणमिति (Trignometry) आदि द्वारा वर्णित है जो सर्वसाधारण के लिये अति कठिन है अतः उनका यहाँ वर्णन नहीं किया जा रहा है।

चौथा सूत्र है "अङ्गान्येकत्रिंशत्"। बोधानन्द व्याख्या करके बताते हैं कि शास्त्रों में सब विमानों के अंग तथा प्रत्यङ्गों का परस्पर अंगांगीभाव होना उतना ही आवश्यक है जितना शरीर के अङ्गों में होना। विमान के अङ्ग ३१ होते हैं और उन अङ्गों को विमान के किस-किस भाग में किस-किस अंग को लगाया या रखा जावे, यह "छायापुरुषशास्त्र" में भलीभाँति वर्णित है। आजकल विमानशास्त्री इस ज्ञान को Aeronautic architecture नाम देते हैं। विमान-चालक के सुलभ और शीघ्र इन अंगों को प्रयोग में लाने के लिये इन अंगों की उचित स्थिति इस सूत्र की व्याख्यावृत्ति निर्देशन कर रही है।

इन अंगों की स्थितियों में सबसे पहिले "विश्वक्रियादर्शन" (Paranomic view of cosmos) दर्पण का स्थान बताया है, पुनः परिवेषस्थान, अंग-संकोचन यन्त्र स्थान होते हैं। विमानकण्ठ में कुण्ठिणीशक्तिस्थान, पुष्पिणीपिञ्जुलादर्श, नालपञ्चक, गूहागर्भादर्श, पञ्चावर्तकरुन्धनाल, रौद्रीदर्पण, शब्दकेन्द्रमुख, विद्युद्द्वादशक, प्राणकुण्डिलीसंस्थान, वक्रप्रसारणस्थान, शक्तिपञ्जरस्थान, शिरःकील, शब्दाकर्षक, पटप्रसारणस्थान, दिशाम्पति, सूर्यशक्तिआकर्षणपञ्जर (Solar energy absorption system) इत्यादि यंत्रों के उचित स्थानों का न्यासन किया हुआ है।

ऊपर वर्णित अनेकों शक्तिजनक संस्थानों, उनके प्रयोग की कलाओं तथा अनेक यंत्रों के विषय में पढ़ कर स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे

पूर्वज कितने विज्ञान-कोविद् थे और विमानादि अनेक कलाओं के बनाने में अत्यन्त निपुण थे। विज्ञान प्राप्ति के कई ढंग व मार्ग हैं। यह आवश्यक नहीं कि जिस प्रकार से पश्चिमी विद्वान् जिन तथ्यों पर पहुँचे हैं वही एक विधि है। हमारे पूर्वजों ने अधिक सरल विधियों से उतनी ही योग्यता प्राप्त की जितनी आजकल पश्चिमी ढंग में बड़े-बड़े भवनों व प्रयोगशालाओं द्वारा प्राप्त की जा रही है। इसलिये हमारा एतद्देशीय विद्वानों तथा विज्ञानवेत्ताओं से साग्रह सविनय अनुरोध है कि अपने पुराने प्राप्त साहित्य को व्यर्थ व पिछड़ा हुआ (Out of date) समझ कर न फटकारें वरन् ध्यान तथा आन्वेषिकी दृष्टि तथा विश्वास से परखें। हमारी धारणा है कि उनका परिश्रम व्यर्थ न होगा और बहुमूल्य आविष्कार प्राप्त होंगे।

—डा० एस० के० भारद्वाज

प्राक्कथन

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, लाक्षणिक साहित्य से सम्बन्धित है। इसके लेखक हैं पं० अंबालाल प्रे० शाह। आप अहमदाबादस्थित लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में पिछले कई वर्षों से कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत भाग के लेखन में आपने यथेष्ट श्रम किया है तथा लाक्षणिक साहित्य के विविध अंगों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आपकी मातृभाषा गुजराती होने पर भी मेरे अनुरोध को स्वीकार कर आपने प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी में निर्माण किया है। ऐसी स्थिति में ग्रन्थ में भाषाविषयक सौष्ठव का निर्वाह पर्याप्त मात्रा में कदाचित् न हो पाया हो, यह स्वाभाविक है। वैसे सम्पादकों ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि ग्रन्थ के भाव एवं भाषा दोनों यथासम्भव अपने सही रूप में रहें।

इस भाग से पूर्व प्रकाशित चारों भागों का विद्वत्समाज और सामान्य पाठकवृन्द ने हार्दिक स्वागत किया है। आगमिक व्याख्याओं से सम्बन्धित तृतीय भाग उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा १५००) रु० के रवीन्द्र पुरस्कार से पुरस्कृत भी हुआ है। प्रस्तुत भाग भी विद्वानों व अन्य पाठकों को उसी प्रकार पसंद आएगा, ऐसा विश्वास है।

ग्रन्थ-लेखक पं० अंबालाल प्रे० शाह का तथा सम्पादक पूज्य पं० दलसुखभाई का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। ग्रंथ के मुद्रण के लिए संसार प्रेस का तथा प्रूफ-संशोधन आदि के लिए संस्थान के शोध-सहायक पं० कपिलदेव गिरि का आभार मानता हूँ।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी–५
२९. १२. ६९

मोहनलाल मेहता
अध्यक्ष

पूर्वज कितने विज्ञान-कोविद् थे और विमानादि अनेक कलाओं के बनाने में अत्यन्त निपुण थे। विज्ञान प्राप्ति के कई ढंग व मार्ग हैं। यह आवश्यक नहीं कि जिस प्रकार से पश्चिमी विद्वान् जिन तथ्यों पर पहुँचे हैं वही एक विधि है। हमारे पूर्वजों ने अधिक सरल विधियों से उतनी ही योग्यता प्राप्त की जितनी आजकल पश्चिमी ढंग में बड़े-बड़े भवनों व प्रयोगशालाओं द्वारा प्राप्त की जा रही है। इसलिये हमारा एतद्देशीय विद्वानों तथा विज्ञानवेत्ताओं से साग्रह सविनय अनुरोध है कि अपने पुराने प्राप्त साहित्य को व्यर्थ व पिछड़ा हुआ (Out of date) समझ कर न फटकारें वरन् ध्यान तथा आन्वेषिकी दृष्टि तथा विश्वास से परखें। हमारी धारणा है कि उनका परिश्रम व्यर्थ न होगा और बहुमूल्य आविष्कार प्राप्त होंगे।

—डा० एस० के० भारद्वाज

प्राक्कथन

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, लाक्षणिक साहित्य से सम्बन्धित है। इसके लेखक हैं पं० अंबालाल प्रे० शाह। आप अहमदाबादस्थित लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में पिछले कई वर्षों से कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत भाग के लेखन में आपने यथेष्ट श्रम किया है तथा लाक्षणिक साहित्य के विविध अंगों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आपकी मातृभाषा गुजराती होने पर भी मेरे अनुरोध को स्वीकार कर आपने प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी में निर्माण किया है। ऐसी स्थिति में ग्रन्थ में भाषाविषयक सौष्ठव का निर्वाह पर्याप्त मात्रा में कदाचित् न हो पाया हो, यह स्वाभाविक है। वैसे सम्पादकों ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि ग्रन्थ के भाव एवं भाषा दोनों यथासम्भव अपने सही रूप में रहें।

इस भाग से पूर्व प्रकाशित चारों भागों का विद्वत्समाज और सामान्य पाठकवृन्द ने हार्दिक स्वागत किया है। आगमिक व्याख्याओं से सम्बन्धित तृतीय भाग उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा १५००) रु० के रवीन्द्र पुरस्कार से पुरस्कृत भी हुआ है। प्रस्तुत भाग भी विद्वानों व अन्य पाठकों को उसी प्रकार पसंद आएगा, ऐसा विश्वास है।

ग्रन्थ-लेखक पं० अंबालाल प्रे० शाह का तथा सम्पादक पूज्य पं० दलसुखभाई का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। ग्रंथ के मुद्रण के लिए संसार प्रेस का तथा प्रूफ-संशोधन आदि के लिए संस्थान के शोध-सहायक पं० कपिलदेव गिरि का आभार मानता हूँ।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी–५
२९. १२. ६९

मोहनलाल मेहता
अध्यक्ष

प्रस्तुत पुस्तक में

ला

क्ष

णि

क

सा

हि

त्य

पहला प्रकरण

व्याकरण

व्याकरण की व्याख्या करते हुए किसी ने इस प्रकार कहा है :

"प्रकृति-प्रत्ययोपाधि-निपातादि विभागशः ।
यदन्वाख्यानकरणं शास्त्रं व्याकरणं विदुः ॥"

अर्थात् प्रकृति और प्रत्ययों के विभाग द्वारा पदों का अन्वाख्यान—स्पष्टीकरण करनेवाला शास्त्र 'व्याकरण' कहलाता है।

व्याकरण द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति स्पष्ट की जाती है। व्याकरण के सूत्र संज्ञा, विधि, निषेध, नियम, अतिदेश एवं अधिकार—इन छः विभागों में विभक्त हैं। प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ, उदाहरण और सिद्धि—ये छः अंग होते हैं। संक्षेप में कहें तो भाषा-विकृति को रोककर भाषा के गठन का बोध करानेवाला शास्त्र व्याकरण है।

वैयाकरणों ने व्याकरण के विस्तार और दुष्करता का ध्यान दिलाते हुए व्याकरण का अध्ययन करने की प्रेरणा इस प्रकार दी है :

"अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं,
स्वल्पं तथाऽऽयुर्बहवश्च विघ्नाः ।
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥"

अर्थात् व्याकरण-शास्त्र का अन्त नहीं है, आयु स्वल्प है और बहुत से विघ्न हैं, इसलिये जैसे हंस पानी मिले हुए दूध में से सिर्फ दूध ही ग्रहण करता है, उसी प्रकार निरर्थक विस्तार को छोड़कर साररूप (व्याकरण) को ग्रहण करना चाहिये।

यद्यपि व्याकरण के विस्तार और गहराई में न पड़ें तथापि भाषा प्रयोगों में अनर्थ न हो और अपने विचार लौकिक और सामयिक शब्दों द्वारा दूसरों को स्फुट और सुचारु रूप से समझा सकें इसलिये व्याकरण का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। व्याकरण से ही तो ज्ञान मूर्तरूप बनता है।

व्याकरणों की रचना प्राचीन काल से होती रही है फिर भी व्याकरण-तंत्र की प्रणालि की वैज्ञानिक एवं नियमबद्ध रीति से नींव डालनेवाले महर्षि पाणिनि (ई० पूर्व ५०० से ४०० के बीच) माने जाते हैं। यद्यपि ये अपने पूर्वज वैयाकरणों का सादर उल्लेख करते हैं परन्तु उन वैयाकरणों का प्रयत्न न व्यवस्थित था और न शृंखलाबद्ध ही। ऐसी स्थिति में यह मानना पड़ेगा कि पाणिनि ने अष्टाध्यायी जैसे छोटे-से सूत्रबद्ध ग्रंथ में संस्कृत-भाषा का सार-निचोड़ लेकर भाषा का ऐसा बांध निर्मित किया कि उन सूत्रों के अलावा सिद्ध प्रयोगों को अपभ्रष्ट करार दिये गए और उनके बाद होनेवाले वैयाकरणों को सिर्फ उनका अनुसरण ही करना पड़ा। उनके बाद वररुचि (ई० पूर्व ४०० से ३०० के बीच), पतञ्जलि, चन्द्रगोमिन् आदि अनेक वैयाकरण हुए, जिन्होंने व्याकरण-शास्त्र का विस्तार, स्पष्टीकरण, सरलता, लघुता आदि उद्देश्यों को लेकर अपनी नई-नई रचनाओं द्वारा विचार उपस्थित किए। प्रस्तुत प्रकरण में केवल जैन वैयाकरण और उनके ग्रन्थों के विषय में संक्षिप्त जानकारी कराई जाएगी।

ऐतिहासिक विवेचन से ऐसा जान पड़ता है कि जब ब्राह्मणों ने शास्त्रों पर अपना सर्वस्व अधिकार जमा लिया तब जैन विद्वानों को व्याकरण आदि विषय के अपने नये ग्रन्थ बनाने की प्रेरणा मिली जिससे इस व्याकरण विषय पर जैनाचार्यों के स्वतंत्र और टीकात्मक ग्रन्थ आज हमें शताधिक मात्रा में सुलभ हो रहे हैं। जिन वैयाकरणों की छोटी-बड़ी रचनाएँ जैन भंडारों में अभी तक अज्ञातावस्था में पड़ी है वे इस गिनती में नहीं हैं।

कई आचार्यों के ग्रन्थों का नामोल्लेख मिलता है परन्तु वे कृतियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। जैसे क्षपणकरचित व्याकरण, उसकी वृत्ति और न्यास, मल्लवादीकृत 'विश्रान्तविद्याधर-न्यास', पूज्यपादरचित 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर अपना स्वोपज्ञ 'न्यास' और 'पाणिनीय व्याकरण' पर 'शब्दावतार-न्यास', भद्रेश्वररचित 'दीपकव्याकरण' आदि अद्यापि उपलब्ध नहीं हुए हैं। उन वैयाकरणों ने न केवल जैनरचित व्याकरण आदि ग्रन्थों पर ही टीका-टिप्पण लिखे अपितु जैनेतर विद्वानों के व्याकरण आदि ग्रन्थों का समादर करते हुए टीका, व्याख्या, विवरण आदि निर्माण करने की उदारता दिखाई है, तभी तो वे ग्रन्थकार जैनेतर विद्वानों के साथ ही साथ भारत के साहित्य-प्रांगण में अपनी प्रतिभा से गौरवपूर्ण आसन जमाये हुए हैं। उन्होंने सैकड़ों ग्रन्थों का निर्माण करके जैनविद्या का मुख उज्ज्वल बनाने की कोशिश की है।

भगवान् महावीर के पूर्व किसी जैनाचार्य ने व्याकरण की रचना की हो ऐसा नहीं लगता। 'ऐन्द्रव्याकरण' महावीर के समय (ई० पूर्व ५९०) में बना। 'सद्दपाहुड' महावीर के पिछले काल (ई० पूर्व ५५७) में बना। लेकिन इन दोनों व्याकरणों में से एक भी उपलब्ध नहीं है। उसके बाद दिगंबर जैनाचार्य देवनन्दि ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' की रचना विक्रम की छठी शताब्दी में की जिसे उपलब्ध जैन व्याकरण-ग्रन्थों में सर्वप्रथम रचना कह सकते हैं। इसी तरह यापनीय संघ के आचार्य शाकटायन ने लगभग वि० सं० ९०० में 'शब्दानुशासन' की रचना की, यह यापनीय संघ का आद्य और जैनो का उपलब्ध दूसरा व्याकरण है। आचार्य बुद्धिसागर सूरि ने 'पञ्चग्रन्थी' व्याकरण वि० सं० १०८० में रचा है, जिसे श्वेतांबर जैनों के उपलब्ध व्याकरण-ग्रन्थों में सर्वप्रथम रचना कह सकते हैं। उसके बाद हेमचन्द्र सूरि ने 'सिद्ध-हेमचन्द्र-शब्दानुशासन' की रचना पंचांगों से युक्त की है, इसके बाद जिनका ब्यौरेवार वर्णन हम यहां कर रहे हैं, ऐसे और भी अनेक वैयाकरण हुए हैं जिन्होंने स्वतंत्र व्याकरणों की या टीका, टिप्पण तथा आंशिक रूप से व्याकरण-ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं।

ऐन्द्र-व्याकरण :

प्राचीन काल में इन्द्र नामक आचार्य का बनाया हुआ एक व्याकरण-ग्रन्थ था[1] परन्तु वह विनष्ट हो गया है[2]। ऐन्द्र-व्याकरण के लिये जैन ग्रन्थों में ऐसी परम्परा एवं मान्यता है कि भगवान् महावीर ने इन्द्र के लिये एक शब्दानुशासन कहा, उसे उपाध्याय (लेखाचार्य) ने सुनकर लोक में ऐन्द्र नाम से प्रगट किया[3]।

ऐसा मानना अतिरेकपूर्ण कहा जायगा कि भगवान् महावीर ने ऐसे किसी व्याकरण की रचना की हो और वह भी मागधी या प्राकृत में न होकर ब्राह्मणों की प्रमुख भाषा संस्कृत में ही हो।

---

१. डॉ० ए० सी० बर्नेल ने ऐन्द्रव्याकरण-सम्बन्धी चीनी, तिब्बतीय और भारतीय साहित्य के उल्लेखों का संग्रह करके 'ऑन दी ऐन्द्र स्कूल आफ ग्रामेरियन्स' नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है।

२. 'तेन प्रणष्टमैन्द्रं तदस्माद् भुवि व्याकरणम्'—कथासरित्सागर, तरंग ४.

३. सक्को अ तस्समक्खं भगवंतं आसणे निवेसित्ता।
सद्दस्स लक्खणं पुच्छे वागरणं अवयवा इंदं ॥—आवश्यकनिर्युक्ति और हारिभद्रीय 'आवश्यकवृत्ति' भा०१, पृ० १८२.

पिछले जैन ग्रन्थकारों ने तो 'जैनेन्द्रव्याकरण' को ही 'ऐन्द्र' व्याकरण के तौरपर बताने का प्रयत्न किया है[1]। वस्तुतः 'ऐन्द्र' और 'जैनेन्द्र'—ये दोनों व्याकरण भिन्न-भिन्न थे। जैनेन्द्र से अति प्राचीन अनेक उल्लेख 'ऐन्द्रव्याकरण' के सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं :

दुर्गाचार्य ने 'निरुक्त-वृत्ति' पृ० १० के प्रारम्भ में 'इन्द्र-व्याकरण' का सूत्र इस प्रकार बताया है : 'शास्त्रेष्वपि 'अथ वर्णसमूहः' इति ऐन्द्र-व्याकरणस्य।'

जैन 'शाकटायन-व्याकरण' (सूत्र—१. २. ३७) में 'इन्द्र-व्याकरण' का मत प्रदर्शित किया है।

'चरक' के व्याख्याता भट्टारक हरिश्चन्द्र ने 'इन्द्र-व्याकरण' का निर्देश इस प्रकार किया है : 'शास्त्रेष्वपि 'अथ वर्णसमूहः' इति ऐन्द्र-व्याकरणस्य।'

दिगम्बराचार्य सोमदेवसूरि ने अपने 'यशस्तिलकचम्पू' (आश्वास १, पृ० ९०) में 'इन्द्र-व्याकरण' का उल्लेख किया है।

'ऐन्द्र-व्याकरण' की रचना ईसा पूर्व ५९० में हुई होगी ऐसा विद्वानों का मत है। परन्तु यह व्याकरण आज तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

शब्दप्राभृत (सद्दपाहुड) :

जैन आगमों का १२ वाँ अंग 'दृष्टिवाद' के नाम से था, जो अब उपलब्ध नहीं है। इस अंग में १४ पूर्व संनिविष्ट थे। प्रत्येक पूर्व का 'वस्तु' और वस्तु का अवांतर विभाग 'प्राभृत' नाम से कहा जाता था। 'आवश्यक-चूर्णि', 'अनुयोग-द्वार-चूर्णि' (पत्र, ४७), सिद्धसेनगणिकृत 'तत्त्वार्थसूत्र-भाष्य-टीका' (पृ० ५०) और मलधारी हेमचन्द्रसूरिकृत 'अनुयोगद्वारसूत्र-टीका' (पत्र, १५०) में 'शब्दप्राभृत' का उल्लेख मिलता है।

सिद्धसेनगणि ने कहा है कि "पूर्वों में जो 'शब्दप्राभृत' है, उसमें से व्याकरण का उद्भव हुआ है।"

'शब्दप्राभृत' लुप्त हो गया है। वह किस भाषा में था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। ऐसा माना जाता है कि चौदह पूर्व संस्कृत भाषा में

---

१. विनयविजय उपाध्याय (सं० १६९६) और लक्ष्मीवल्लभ मुनि (१८ वीं शताब्दी) ने जैनेन्द्र को ही भगवत्प्रणीत बताया है।

थे। इसलिये 'शब्दप्राभृत' भी संस्कृत में रहा होगा ऐसी सम्भावना हो सकती है।

क्षपणक-व्याकरण :

व्याकरणविषयक कई ग्रन्थों में ऐसे उद्धरण मिलते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि किसी क्षपणक नाम के वैयाकरण ने किसी शब्दानुशासन की रचना की है। 'तन्त्रप्रदीप' में क्षपणक के मत का एकाधिक बार उल्लेख आता है[1]।

कवि कालिदासरचित 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ग्रन्थ में विक्रमादित्य राजा की सभा के नव रत्नों के नाम उल्लिखित हैं, उनमें क्षपणक भी एक थे[2]।

कई ऐतिहासिक विद्वानों के मंतव्य से जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर का ही दूसरा नाम क्षपणक था।

दिगम्बर जैनाचार्य देवनन्दि ने सिद्धसेन के व्याकरणविषयक मत का 'वेत्तेः सिद्धसेनस्य ॥ ५. १. ७ ॥' इस सूत्र से उल्लेख किया है।

उज्ज्वलदत्त-विरचित 'उणादिवृत्ति' में 'क्षपणकवृत्तौ अत्र 'इति' शब्द आद्यर्थे व्याख्यातः ॥'इस प्रकार उल्लेख किया है, इससे मालूम पड़ता है कि क्षपणक ने वृत्ति, धातुपाठ, उणादिसूत्र आदि के साथ व्याकरण-ग्रन्थ की रचना की होगी।

मैत्रेयरक्षित ने 'तन्त्रप्रदीप' (४. १. १५५) सूत्र में 'क्षपणक-महान्यास' उद्धृत किया है। इससे प्रतीत होता है कि क्षपणक-रचित व्याकरण पर 'न्यास' की रचना भी हुई होगी।

यह क्षपणकरचित शब्दानुशासन, उसकी वृत्ति, न्यास या उसका कोई अंश आजतक प्राप्त नहीं हुआ है।

---

१. मैत्रेयरक्षित ने अपने 'तंत्रप्रदीप' में—'अतएव नावमात्मानं मन्यते इति विग्रहपरत्वादनेन ह्रस्वत्वं बाधित्वा अमागमे सति 'नावं मन्ये' इति क्षपणक-व्याकरणे दर्शितम्।' ऐसा उल्लेख किया है—भारत कौमुदी, भा० २, पृ० ८९१ की टिप्पणी।

२. क्षपणकोऽमरसिंहशङ्कू वेतालभट्ट-घटकर्पर-कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

जैनेन्द्र-व्याकरण (पञ्चाध्यायी) :

इस व्याकरण के कर्ता देवनन्दि दिगंबर-सम्प्रदाय के आचार्य थे। उनके पूज्यपाद[1] और जिनेन्द्रबुद्धि[2] ऐसे दो और नाम भी प्रचलित थे। 'देव' इस प्रकार संक्षिप्त नाम से भी लोग उन्हें पहिचानते थे। उन्होंने बहुत से ग्रन्थों की रचना की है। लक्षणशास्त्र में देवनंदि उत्तम ग्रंथकार माने गये हैं।[3] इनका समय विक्रम की छठी शताब्दी है।

बोपदेव ने जिन आठ प्राचीन वैयाकरणों का उल्लेख किया है उनमें जैनेन्द्र भी एक हैं। ये देवनन्दि या पूज्यपाद विक्रम की छठी शताब्दी में विद्यमान थे ऐसा विद्वानों का मंतव्य है[4]। जहाँ तक मालूम हुआ है, जैनाचार्य द्वारा रचे गये मौलिक व्याकरणों में 'जैनेन्द्र-व्याकरण' सर्वप्रथम है।

---

१. यशः कीर्तिर्यशोनन्दी देवनन्दी महामतिः।
श्रीपूज्यपादापराख्यो गुणनन्दी गुणाकरः ॥—नन्दीसंघपट्टावली।

२ एक जिनेन्द्रबुद्धि नाम के बोधिसत्वदेशीयाचार्य या बौद्ध साधु विक्रम की ८वीं शताब्दी में हुए थे, जिन्होंने 'पाणिनीय व्याकरण' की 'काशिकावृत्ति' पर एक न्यासग्रन्थ की रचना की थी, जो 'जिनेन्द्रबुद्धि-न्यास' के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन ये जिनेन्द्रबुद्धि उनसे भिन्न हैं। यह तो पूज्यपाद का नामान्तर है, जिनके विषय में इस प्रकार उल्लेख मिलता है :
'जिनवद् बभूव यदनङ्गचापहृत् स जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधु वर्णितः।'
—श्रवण बेलगोल के सं० १०८ (२८५) का मंगराजकवि (सं० १५००) कृत शिलालेख, श्लोक १६.

३. 'प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्'।—धनञ्जयनाममाला, श्लोक २०.
'सर्वव्याकरणे विपश्चिदधिपः श्रीपूज्यपादः स्वयम्।'; 'शब्दाश्च येन (पूज्यपादेन) सिद्धयन्ति।'— ये सब प्रमाण उनके महावैयाकरण होने के परिचायक हैं।

४. नाथूराम प्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास' पृ० ११५–११७.

इस व्याकरण में पाँच अध्याय होने से इसे 'पञ्चाध्यायी' भी कहते हैं। इसमें प्रकरण-विभाग नहीं है। पाणिनि की तरह विधानक्रम को लक्ष्य कर सूत्र-रचना की गई है। एकशेष प्रकरण-रहित याने अनेकशेष रचना इस व्याकरण की अपनी विशेषता है। संज्ञाएँ अल्पाक्षरी हैं और 'पाणिनीय व्याकरण' के आधारपर यह ग्रन्थ है परन्तु अर्थगौरव बढ़ जाने से यह व्याकरण क्लिष्ट बन गया है। यह लौकिक व्याकरण है, इसमें छांदस् प्रयोगों को भी लौकिक मानकर सिद्ध किये गये हैं।

देवनंदि ने इसमें श्रीदत्त[1], यशोभद्र[2], भूतबलि[3], प्रभाचन्द्र[4], सिद्धसेन[5] और समंतभद्र[6]—इन प्राचीन जैनाचार्यों के मतों का उल्लेख किया है। परन्तु इन आचार्यों का कोई भी व्याकरण-ग्रंथ अद्यापि प्राप्त नहीं हुआ है, न कहीं इनके वैयाकरण होने का उल्लेख ही मिलता है।

जैनेन्द्रव्याकरण' के दो तरह के सूत्रपाठ मिलते हैं। एक प्राचीन है, जिसमें ३००० सूत्र हैं, दूसरा संशोधित पाठ है, जिसमें ३७०० सूत्र हैं। इनमें भी सब सूत्र समान नहीं हैं और संज्ञाओं में भी भिन्नता है। ऐसा होने पर भी बहुत अंश में समानता है। दोनों सूत्रपाठों पर भिन्न-भिन्न टीकाग्रन्थ हैं, उनका परिचय अलग दिया गया है।

पं० कल्याणविजयजी गणि इस व्याकरण की आलोचना करते हुए इस प्रकार लिखते हैं :

"जैनेन्द्रव्याकरण आचार्य देवनन्दि की कृति मानी जाती है, परंतु इसमें जिन-जिन आचार्यों के मत का उल्लेख किया गया है, उनमें एक भी व्याकरणकार होने का प्रमाण नहीं मिलता। हमें तो ज्ञात होता है कि पिछले किन्हीं दिगम्बर जैन विद्वानों ने पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रों को अस्त-व्यस्त कर यह कृत्रिम व्याकरण बनाकर देवनन्दि के नाम पर चढ़ा दिया है।"[7]

---

१. 'गुणे श्रीदत्तस्याश्त्रियाम्' ॥ १. ४. ३४ ॥
२. 'कृवृषिमृजां यशोभद्रस्य' ॥ २. १. ९९ ॥
३. 'राद् भूतबलेः' ॥ ३. ४. ८३ ॥
४. 'रात्रेः कृतिप्रभाचन्द्रस्य' ॥ ४. ३. १८० ॥
५. 'वेत्तेः सिद्धसेनस्य' ॥ ५. १. ७ ॥
६. 'चतुष्टयं समन्तभद्रस्य' ॥ ५. ४. १४० ॥
७. 'प्रबन्ध-पारिजात' पृ० २१४.

जैनेन्द्रव्याकरणरूपी महल में प्रवेश के लिये 'पञ्चवस्तु' को सोपान-पंक्ति स्वरूप बताया गया है।[1] इसकी दो हस्तलिखित प्रतियां पूना के भांडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट में हैं।

यह ग्रन्थ किसने रचा, इसका हस्तलिखित प्रतियों के आदि-अंत में कोई निर्देश नहीं मिलता। केवल एक जगह संधि-प्रकरण में 'संधि त्रिधा "कथयति श्रुतकीर्त्तिरार्यः' ऐसा लिखा है। इस उल्लेख से उसके कर्ता श्रुतकीर्ति आचार्य थे यह स्पष्ट होता है।

'नन्दीसंघ की पट्टावली' में 'त्रैविद्यः श्रुतकीर्त्याख्यो वैयाकरणभास्करः' इस प्रकार श्रुतकीर्ति को वैयाकरण-भास्कर बताया गया है।

श्रुतकीर्ति नामक अनेक आचार्य हुए हैं। उनमें से यह श्रुतकीर्ति कौन से हैं यह ढूंढना मुश्किल है। कन्नड भाषा के 'चंद्रप्रभचरित' के कर्ता अग्गल कवि ने श्रुतकीर्ति को अपना गुरु बताया है :

'इदु परमपुरुनाथकुलभूभृत्समुद्भूतप्रवचनसरित्सरिन्नाथश्रुतकीर्ति त्रैविद्यचक्रवर्तिपदपद्मनिधानदीपवर्तिश्रीमदग्गलदेवविरचिते चन्द्र-प्रभचरिते।'

यह ग्रन्थ शक सं० १०११ (वि० सं० ११४६) में रचा गया है। यदि आर्य श्रुतकीर्ति और श्रुतकीर्ति त्रैविद्यचक्रवर्ती एक ही हों तो 'पञ्चवस्तु' १२ वीं शताब्दी के प्रारंभ में रची गई है ऐसा मानना चाहिये।

लघु जैनेन्द्र (जैनेन्द्रव्याकरण-टीका) :

दिगंबर जैन पंडित महाचन्द्र ने विक्रम की १२ वीं शताब्दी में जैनेन्द्र-व्याकरण पर 'लघु जैनेन्द्र' नामक टीका की आचार्य अभयनन्दि की 'महावृत्ति' के आधार पर रचना की है।[2]

---

१. सूत्रस्तम्भसमुद्धृतं प्रविलसन्न्यासोरुरत्नक्षिति-
श्रीमद्वृत्तिकपाटसंपुटयुतं भाष्योऽथ शय्यातलम्।
टीकामालमिहारुरुक्षुरचितं जैनेन्द्रशब्दागमं,
प्रासादं पृथुपञ्चवस्तुकमिदं सोपानमारोहतात्॥

२. महावृत्तिं शुम्भत् सकलबुधपूज्यां सुखकरीं
विलोक्योद्यज्ज्ञानप्रभुविभयनन्दीप्रविहिताम्।
अनेकैः सच्छब्दैर्भ्रमविगतकैः संदृब्धमूतां (?)
प्रकुर्वेऽहं [टीकां] तनुमतिर्महाचन्द्रविबुधः॥

इसकी एक प्रति अंकलेश्वर दिगंबर जैन मंदिर में और दूसरी अपूर्ण प्रति प्रतापगढ़ (मालवा) के पुराने जैन मंदिर में है।

शब्दार्णव (जैनेन्द्र-व्याकरण-परिवर्तित-सूत्रपाठ) :

आचार्य गुणनंदि ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' के मूल ३००० सूत्रपाठ को परिवर्तित और परिवर्धित करके व्याकरण को सर्वांगपूर्ण बनाने की कोशिश की है। इसका रचना-काल वि० सं० १०३६ से पूर्व है।

शब्दार्णवप्रक्रिया के नाम से छपे हुए ग्रन्थ के अंतिम श्लोक में कहा है :

'सैषा श्रीगुणनन्दितानितवपुः शब्दार्णवे निर्णयं
नावत्या श्रयतां विविक्षुमनसां साक्षात् स्वयं प्रक्रिया ।'

अर्थात् गुणनंदि ने जिसके शरीर को विस्तृत किया उस 'शब्दार्णव' में प्रवेश करने के लिये यह प्रक्रिया साक्षात् नौका के समान है।

शब्दार्णवकार ने सूत्रपाठ के आधे से अधिक वे ही सूत्र रखे हैं, संज्ञाओं और सूत्रों में अंतर किया है। इससे अभयनंदि के स्वीकृत सूत्रपाठ के साथ ३००० सूत्रों का भी मेल नहीं है।

यह संभव है कि इस सूत्रपाठ पर गुणनंदि ने कोई वृत्ति रची हो परंतु ऐसा कोई ग्रन्थ अद्यापि उपलब्ध नहीं हुआ है।

गुणनंदि नामके अनेक आचार्य हुए हैं। एक गुणनंदि का उल्लेख श्रवण बेल्गोल के ४२, ४३ और ४७ वें शिलालेखा में है। उसके अनुसार वे बलाकपिच्छ के शिष्य और गृध्रपृच्छ के प्रशिष्य थे। वे तर्क, व्याकरण और साहित्यशास्त्र के निपुण विद्वान् थे। उनके पास ३०० शास्त्र-पारंगत शिष्य थे, जिनमें ७२ शिष्य तो सिद्धान्त के पारगामी थे। आदिपंप के गुरु देवेन्द्र के भी वे गुरु थे।[1] 'कर्नाटक-कविचरिते' के कर्ता ने उनका समय वि० सं० ९५७ निश्चित किया है। यही गुणनंदि आचार्य 'शब्दार्णव' के कर्ता हों ऐसा अनुमान है।

---

१. तच्छिष्यो गुणनन्दिपण्डितयतिश्चारित्रचक्रेश्वरः
तर्क-व्याकरणादिशास्त्रनिपुणः साहित्यविद्यापतिः।
मिथ्यात्वादिमदान्धसिन्धुरघटासंघातकण्ठीरवो
भव्याम्भोजदिवाकरो विजयतां कन्दर्पदर्पापहः ॥

शब्दार्णवचन्द्रिका (जैनेन्द्रव्याकरणवृत्ति) :

दिगम्बर सोमदेव मुनि ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर आधारित आचार्य गुणनंदि के 'शब्दार्णव' सूत्रपाठ पर 'शब्दार्णवचन्द्रिका' नाम की एक विस्तृत टीका की रचना की थी। ग्रन्थकार ने स्वयं बताया है :

'श्री सोमदेवयतिनिर्मितमादधाति या,
नौः प्रतीतगुणनन्दितशब्दवारिधौ।'

अर्थात् शब्दार्णव में प्रवेश करने के लिये नौका के समान यह टीका सोमदेव मुनि ने बनाई है।

इसमें शाकटायन के प्रत्याहारसूत्र स्वीकार किये गये हैं। यही क्या, जैनेन्द्र का टीकासाहित्य शाकटायन की कृति से बहुत कुछ उपकृत हुआ पाया जाता है।

शब्दार्णवप्रक्रिया (जैनेन्द्रव्याकरण-टीका) :

यह ग्रन्थ (वि० सं० ११८०) 'जैनेन्द्रप्रक्रिया' नाम से छपा है और प्रकाशक ने उसके कर्ता का नाम गुणनन्दि बताया है परंतु यह ठीक नहीं है। यद्यपि अन्तिम पद्यों में गुणनन्दि का नाम है परन्तु यह तो उनकी प्रशंसात्मक स्तुतिस्वरूप है :

'राजन्मृगाधिराजो गुणनन्दी भुवि चिरं जीयात्।'

ऐसी आत्मप्रशंसा स्वयं कर्ता अपने लिये नहीं कर सकता।

सोमदेव की 'शब्दार्णवचन्द्रिका' के आधार पर यह प्रक्रियाबद्ध टीका-ग्रन्थ है।

तीसरे पद्य में श्रुतकीर्ति का नाम इस प्रकार उल्लिखित है :

'सोऽयं यः श्रुतकीर्तिदेवयतिपो भट्टारकोत्तंसकः।
रंरम्यान्मम मानसे कविपतिः सद्राजहंसश्चिरम्॥'

यह श्रुतकीर्ति 'पञ्चवस्तु'कार श्रुतकीर्ति से भिन्न होंगे, क्योंकि इसमें श्रुतिकीर्ति को 'कविपति' बताया है। सम्भवतः श्रवण बेलगोल के १०८वें शिलालेख में जिस श्रुतकीर्ति का उल्लेख है वही ये होंगे ऐसा अनुमान है। इस श्रुतकीर्ति का

समय वि० सं० ११८० बताया गया है।[1] इस श्रुतकीर्ति के किसी शिष्य ने यह प्रक्रिया ग्रन्थ बनाया।[2] पद्य में 'राजहंस' का उल्लेख है। क्या यह नाम कर्ता का तो नहीं है?

भगवद्वाग्वादिनी :

'कल्पसूत्र' की टीका में उपाध्याय विनयविजय और श्री लक्ष्मीवल्लभ ने निर्देश किया है कि 'भगवत्प्रणीत व्याकरण का नाम जैनेन्द्र है'। इसके अलावा कुछ नहीं कहा है। उससे भी बढ़कर रत्नर्षि नामक किसी मुनि ने 'भगवद्-वाग्वादिनी' नामक ग्रन्थ की रचना लगभग वि० सं० १७९७ में की है उसमें उन्होंने जैनेन्द्र-व्याकरण के कर्ता देवनंदि नहीं परन्तु साक्षात् भगवान् महावीर हैं ऐसा बताने का प्रयत्न जोरों से किया है।

'भगवद्वाग्वादिनी' में जैनेन्द्र-व्याकरण का 'शब्दार्णवचन्द्रिकाकार' द्वारा मान्य किया हुआ सूत्रपाठ मात्र है और ८०० श्लोक-प्रमाण है।[3]

जैनेन्द्रव्याकरण-वृत्ति :

'जैनेन्द्रव्याकरण' पर मेघविजय नामक किसी श्वेतांबर मुनि ने वृत्ति[4] की रचना की है। ये हैमकौमुदी (चन्द्रप्रभा) व्याकरण के कर्ता ही हों तो इस वृत्ति की रचना १८वीं शताब्दी में हुई ऐसा मान सकते हैं।

अनिट्कारिकावचूरि :

'जैनेन्द्रव्याकरण' की अनिट्कारिका पर श्वेतांबर जैन मुनि विजयविमल ने १७वीं शताब्दी में 'अवचूरि' की रचना की है[5]।

निम्नोक्त आधुनिक विद्वानों ने भी 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर सरल प्रक्रिया वृत्तियाँ बनाई हैं :

---

१. 'सिस्टम्स ऑफ ग्रामर' पृ० ६७.
२. नाथूराम प्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास' पृ० ११५.
३. नाथूराम प्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास' परिशिष्ट, पृ० १२५.
४. इस वृत्ति-ग्रन्थ का उल्लेख 'राजस्थान के जैन शास्त्र-भंडारों की ग्रन्थसूची, भा० २ के पृ० २५७ में किया गया है। इसकी प्रति १६–४९ पत्रों की मिली है।
५. इसकी हस्तलिखित प्रति छाणी के भण्डार में (सं० ५७८) है।

पं० वंशीधरजी ने 'जैनेन्द्रप्रक्रिया', पं० नेमिचन्द्रजी ने 'प्रक्रियावतार' और पं० राजकुमारजी ने 'जैनेन्द्रलघुवृत्ति'।

शाकटायन-व्याकरण :

पाणिनि वगैरह ने जिन शाकटायन नामक वैयाकरणाचार्य का उल्लेख किया है वे पाणिनि के पूर्व काल में हुए थे परंतु जिनका 'शाकटायनव्याकरण' आज उपलब्ध है उन शाकटायन आचार्य का वास्तविक नाम तो है पाल्यकीर्ति और उनके व्याकरण का नाम है शब्दानुशासन। पाणिनिनिर्दिष्ट उस प्राचीन शाकटायन आचार्य की तरह पाल्यकीर्ति प्रसिद्ध वैयाकरण होने से उनका नाम भी शाकटायन और उनके व्याकरण का नाम 'शाकटायनव्याकरण' प्रसिद्धि में आ गया ऐसा लगता है।

पाल्यकीर्ति जैनों के यापनीय संघ के अग्रणी एवं बड़े आचार्य थे। वे राजा अमोघवर्ष के राज्य-काल में हुए थे। अमोघवर्ष शक सं० ७३६ (वि० सं० ८७१) में राजगद्दी पर बैठा। उसी के आसपास में यानी विक्रम की ९ वीं शती में इस व्याकरण की रचना की गई है।

इस व्याकरण में प्रकरण-विभाग नहीं है। पाणिनि की तरह विधान-क्रम का अनुसरण करके सूत्र-रचना की गई है।

यद्यपि प्रक्रिया-क्रम की रचना करने का प्रयत्न किया है परंतु ऐसा करने से क्लिष्टता और विप्रकीर्णता आ गई है। उनके प्रत्याहार पाणिनि से मिलते-जुलते होने पर भी कुछ भिन्न हैं। जैसे—'ऋलृक्' के स्थान पर केवल 'ऋक्' पाठ है, क्योंकि 'ऋ' और 'लृ' में अभेद स्वीकार किया गया है। 'हयवरट्' और 'लण्' को मिलाकर 'वेट्' को हटा कर यहाँ एक सूत्र बनाया गया है तथा उपांत्य सूत्र 'शषसर्' में विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का भी समावेश करके काम लिया है। सूत्रों की रचना बिल्कुल भिन्न ढंग की है। इस पर कातंत्र-व्याकरण का प्रचुर प्रभाव है। इसमें चार अध्याय हैं और यह १६ पादों में विभक्त है।

यक्षवर्मा ने 'शाकटायनव्याकरण' की 'चिन्तामणि' टीका में इस व्याकरण की विशेषता बताते हुए कहा है :

'इष्टिर्नेष्टा न वक्तव्यं वक्तव्यं सूत्रतः पृथक्।
संख्यानं नोपसंख्यानं यस्य शब्दानुशासने॥
इन्द्र-चन्द्रादिभिः शाब्दैर्यदुक्तं शब्दलक्षणम्।
तदिहास्ति समस्तं च यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥'

अर्थात् शाकटायनव्याकरण में इष्टियां[1] पढ़ने की जरूरत नहीं। सूत्रों से अलग वक्तव्य कुछ नहीं है। उपसंख्यानों की भी जरूरत नहीं है। इन्द्र, चन्द्र आदि वैयाकरणों ने जो शब्द-लक्षण कहा वह सब इस व्याकरण में आ जाता है और जो यहाँ नहीं है वह कहीं भी नहीं मिलेगा।

इस वक्तव्य में अतिशयोक्ति होने पर भी पाल्यकीर्ति ने इस व्याकरण में अपने पूर्व के वैयाकरणों की कमियाँ सुधारने का प्रयत्न किया है और लौकिक पदों का अन्वाख्यान दिया है। व्याकरण के उदाहरणों से रचनाकालीन समय का ध्यान आता है। इस व्याकरण में आर्य वज्र, इन्द्र और सिद्धनंदि जैसे पूर्वाचार्यों का उल्लेख है।[2] प्रथम नाम से तो प्रसिद्ध आर्य वज्र स्वामी अभिप्रेत होंगे और बाद के दो नामों से यापनीय संघ के आचार्य।

इस व्याकरण पर बहुत-सी वृत्तियों की रचना हुई है।

राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में पाल्यकीर्ति शाकटायन के साहित्य-विषयक मत का उल्लेख किया है[3], इससे उनका साहित्य-विषयक कोई ग्रन्थ रहा होगा ऐसा लगता है परन्तु वह ग्रन्थ कौन-सा था यह अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है।

पाल्यकीर्ति के अन्य ग्रन्थ :

१. स्त्रीमुक्ति-प्रकरण, २. केवलिभुक्ति-प्रकरण।

यापनीय संघ स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति के विषय में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता का अनुसरण करता है, और विषयों में दिगंबरों के साथ मिलता-जुलता है यह इन प्रकरणों से जाना जाता है।[4]

---

१. सूत्र और वार्तिक से जो सिद्ध न हो परंतु भाष्यकार के प्रयोगों से सिद्ध हो उसको 'इष्टि' कहते हैं।

२. सूत्र १. २. १३, १. २. ३७ और २. १. २२९.

३. यथा तथा वाऽस्तु वस्तुनो रूपं वक्तृप्रकृतिविशेषायत्ता तु रसवत्ता। तथा च यमर्थं रक्तः स्तौति तं विरक्तो विनिन्दति मध्यस्थस्तु तत्रोदास्ते इति पाल्यकीर्तिः।

४. जैन साहित्य संशोधक भा० २ अंक ३-४ में ये प्रकरण प्रकाशित हुए हैं।

अमोघवृत्ति (शाकटायनव्याकरण-वृत्ति) :

'शाकटायनव्याकरण' पर लगभग अठारह हजार श्लोक-परिमाण की 'अमोघवृत्ति' नाम से रचना उपलब्ध है। यह वृत्ति सब टीका-ग्रन्थों में प्राचीन और विस्तारयुक्त है। राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष को लक्ष्य करके इसका 'अमोघवृत्ति' नाम रखा गया प्रतीत होता है। रचना-समय वि० ९ वीं शती है।

वर्धमानसूरि ने अपने 'गणरत्नमहोदधि' (पृ० ८२, ९०) में शाकटायन के नाम से जो उल्लेख किये हैं वे सब 'अमोघवृत्ति' में मिलते हैं।

आचार्य मलयगिरि ने 'नंदिसूत्र' की टीका में 'श्रीरमवृत्तं ज्योतिः' इस मङ्गलाचरण-पद्य को शाकटायन की स्वोपज्ञवृत्ति का बताया है, जो 'अमोघवृत्ति' में मिलता है।

यक्षवर्मा ने शाकटायनव्याकरण की 'चिन्तामणि-टीका' के मंगलाचरण में शाकटायन-पाल्यकीर्ति के विषय में आदर व्यक्त करते हुए 'अमोघवृत्ति' के 'स्वस्याविमहती वृत्तिम्' इस उल्लेख से स्वोपज्ञ होने की सूचना दी है यह प्रतीत होता है। सर्वानन्द ने 'अमरटीकासर्वस्व' में अमोघवृत्ति से पाल्यकीर्ति के नाम के साथ उद्धरण दिया है।

इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि 'अमोघवृत्ति' के कर्ता शाकटायनाचार्य पाल्यकीर्ति स्वयं हैं।

यक्षवर्मा ने इस वृत्ति की विशेषता बताते हुए कहा है :

'गण-धातुपाठयोगेन धातून् लिङ्गानुशासने लिङ्गगतम्।
औणादिकानुणादौ शेषं निःशेषमत्र वृत्तौ विद्यात्॥ ११॥'

अर्थात् गणपाठ, धातुपाठ, लिङ्गानुशासन और उणादि के सिवाय इस वृत्ति में सब विषय वर्णित हैं।

इससे इस वृत्ति की कितनी उपयोगिता है, इसका अनुमान हो सकता है। यह वृत्ति अभी तक अप्रकाशित है।

इस व्याकरण-ग्रन्थ में गणपाठ, धातुपाठ, लिंगानुशासन, उणादि वगैरह निःशेष प्रकरण हैं। इस निःशेष विशेषण द्वारा सम्भवतः अनेकशेष जैनेन्द्र-व्याकरण की अपूर्णता की ओर संकेत किया हो ऐसा लगता है।

वृत्ति में 'अदहदमोघवर्षोऽरातीन्' ऐसा उदाहरण है, जो अमोघवर्ष राजा का ही निर्देश करता है। अमोघवर्ष का राज्यकाल शक सं० ७३६ से ७८९ है, इसी के मध्य इसकी रचना हुई है।

चिन्तामणि-शाकटायनव्याकरण-वृत्ति :

यक्षवर्मा नामक विद्वान् ने 'अमोघवृत्ति' के आधार पर ६००० श्लोक-परिमाण की एक छोटी-सी वृत्ति की रचना की है। वे साधु थे या गृहस्थ और वे कब हुए इस सम्बन्ध में तथा उनके अन्य ग्रन्थों के विषय में भी कुछ जानने को नहीं मिलता। उन्होंने अपनी वृत्ति के विषय में कहा है :

'तस्यातिमहतीं वृत्तिं संहृत्येयं लघीयसी।
संपूर्णलक्षणा वृत्तिर्वक्ष्यते यक्षवर्मणा॥
बालाऽबलाजनोऽप्यस्या वृत्तेरभ्यासवृत्तितः।
समस्तं वाङ्मयं वेत्ति वर्षेणैकेन निश्चयात्॥'

अर्थात् अमोघवृत्ति नामक बड़ी वृत्ति में से संक्षेप करके यह छोटी-सी परन्तु संपूर्ण लक्षणों से युक्त वृत्ति यक्षवर्मा कहता है। बालक और स्त्री-जन भी इस वृत्ति के अभ्यास से एक वर्ष में निश्चय ही समस्त वाङ्मय के जानकार बनते हैं।

यह वृत्ति कैसी है इसका अनुमान इससे हो जाता है।

समन्तभद्र ने इस टीका के विषम पदों पर टिप्पण लिखा है, जिसका उल्लेख 'माधवीय-धातुवृत्ति' में आता है।

मणिप्रकाशिका (शाकटायनव्याकरणवृत्ति-चिन्तामणि-टीका) :

'मणि' याने चिन्तामणिटीका, जो यक्षवर्मा ने रची है, उस पर अजितसेनाचार्य ने वृत्ति की रचना की है। अजितसेन नाम के बहुत से विद्वान् हो गये हैं। यह रचना कौन-से अजितसेन ने किस समय में की है इस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञातव्य प्राप्त नहीं हुआ है।

प्रक्रियासंग्रह :

पाणिनीय व्याकरण को 'सिद्धान्तकौमुदी' के रचयिता ने जिस प्रकार प्रक्रिया में रखने का प्रयत्न किया उसी प्रकार अभयचन्द्र नामक आचार्य ने 'शाकटायन-

व्याकरण' को प्रक्रियाबद्ध[1] किया है। अभयचन्द्र के समय, गुरु-शिष्य-आदि परंपरा और उनकी अन्य रचनाओं के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

शाकटायन-टीका :

यह ग्रन्थ प्रक्रियाबद्ध है, जिसके कर्ता 'वादिपर्वतवज्र' इस उपनाम से विख्यात भावसेन त्रैविद्य हैं। इन्होंने कातन्त्ररूपमाला-टीका और विश्वतत्त्वप्रकाश ग्रन्थ लिखे हैं।

रूपसिद्धि (शाकटायनव्याकरण-टीका) :

द्रविडसंघ के आचार्य मुनि दयापाल ने 'शाकटायन-व्याकरण' पर एक छोटी-सी टीका बनायी है। श्रवणबेल्गोल के ५४ वें शिलालेख में इनके विषय में इस प्रकार कहा गया है :

'हितैषिणां यस्य नृणामुदात्तवाचा निबद्धा हितरूपसिद्धिः।
वन्द्यो दयापालमुनिः स वाचा, सिद्धः सतां मूर्द्धनि यः प्रभावैः ॥१५॥'

दयापाल मुनि के गुरु का नाम मतिसागर था। वे 'न्यायविनिश्चय' और 'पार्श्वनाथचरित' के कर्ता वादिराज के सधर्मा थे। 'पार्श्वनाथचरित' की रचना शक सं० ९४७ (वि० सं० १०८२) में हुई थी। इससे दयापाल मुनि का समय भी इसी के आस-पास मानना चाहिए।

यह टीका-ग्रंथ प्रकाशित है। मुनि दयापाल के अन्य ग्रंथों के विषय में कु भी ज्ञात नहीं है।

गणरत्नमहोदधि :

श्वेतांबराचार्य गोविन्दसूरि के शिष्य वर्धमानसूरि ने 'शाकटायनव्याकरण' में जो गण आते हैं उनका संग्रह कर 'गणरत्नमहोदधि'[2] नामक ४२०० श्लोक-परिमाण स्वोपज्ञ टीकायुक्त उपयोगी ग्रन्थ की वि० सं० ११९७ में रचना की है। इसमें नामों के गणों को श्लोकबद्ध करके गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण दिये हैं। इसमें अनेक वैयाकरणों के मतों का उल्लेख किया गया है

१. यह कृति गुस्टव आपर्ट ने सन् १८९३ में प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने शाकटायन को 'प्राचीन शाकटायन' मानने की भूल की है। सन् १९०७ में बम्बई के जेठाराम मुकुन्दजी ने इसका प्रकाशन किया है।

२. यह ग्रंथ सन् १८७९–८१ में प्रकाशित हुआ है।

परन्तु समकालीन आचार्य हेमचन्द्रसूरि का उल्लेख नहीं है। वैसे आचार्य हेमचन्द्र-सूरि ने भी इनका कहीं उल्लेख नहीं किया है। कई कवियों के नाम और कई स्थलों में कर्ता के नाम के बिना कृतियों के नाम का उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थ से कई नवीन तथ्य जानने को मिलते हैं। जैसे—'भट्टिकाव्य' और 'द्वयाश्रयमहाकाव्य' की तरह मालवा के परमार राजाओं संबंधी कोई काव्य था, जिसका नाम उन्होंने नहीं दिया परन्तु उस काव्य के कई श्लोक उद्धृत किये हैं।

आचार्य सागरचन्द्रसूरिकृत सिद्धराजसम्बन्धी कई श्लोक भी इसमें उद्धृत किये हैं, इससे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने सिद्धराज-सम्बन्धी कोई काव्य-रचना की थी, जो आज तक उपलब्ध नहीं हुई है।

स्वयं वर्धमानसूरि ने अपने 'सिद्धराजवर्णन' नामक ग्रन्थ का 'ममैव सिद्धराजवर्णने' ऐसा लिखकर उल्लेख किया है। इससे मालूम होता है कि उनका 'सिद्धराजवर्णन' नामक कोई ग्रंथ था जो आज मिलता नहीं है।

लिंगानुशासन :

आचार्य पाल्यकीर्ति-शाकटायनाचार्य ने 'लिंगानुशासन' नाम की कृति की रचना की है। इसकी हस्तलिखित प्रति मिलती है। यह आर्या छन्द में रचित ७० पद्यों में हैं। रचना-समय ९ वीं शती है।

धातुपाठ :

आचार्य पाल्यकीर्ति-शाकटायनाचार्य ने 'धातुपाठ' की रचना की है। पं० गौरीलाल जैन ने वीर-संवत् २४३७ में इसे छपाया है। यह भी ९ वीं शती का ग्रन्थ है।

मंगलाचरण में 'जिन' को नमस्कार करके 'एधि वृद्धौ स्पर्धि संघर्षे' से प्रारम्भ किया है। इसमें १३१७ (१२८०+३७) धातु अर्थसहित दिये हैं। अन्त में दिये गये सौत्रकण्डवादि ३७ धातुओं को छोड़ कर ११ गणों में विभक्त किये हैं। ३६ धातुओं का 'विकल्पणिजन्त' और चुरादि वगैरह का 'नित्यणि-जन्त' धातु से परिचय करवाया है।

पञ्चग्रन्थी या बुद्धिसागर-व्याकरण :

'पञ्चग्रन्थी-व्याकरण' का दूसरा नाम है 'बुद्धिसागर-व्याकरण' और 'शब्द-लक्ष्म'। इस व्याकरण की रचना श्वेतांबराचार्य बुद्धिसागरसूरि ने वि० सं० १०८० में की है।[1] ये आचार्य वर्धमानसूरि के शिष्य थे।

ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ की रचना करने का कारण बताते हुए कहा है कि 'जब ब्राह्मणों ने आक्षेप करते हुए कहा कि जैनों में शब्दलक्ष्म और प्रमालक्ष्म है ही कहाँ! वे तो परग्रंथोपजीवी हैं।'[2] तब बुद्धिसागरसूरि ने इस आक्षेप का जवाब देने के लिये ही इस ग्रंथ की रचना की।

श्वेतांबर आचार्यों में उपलब्ध सर्वप्रथम व्याकरणग्रन्थ की रचना करनेवाले यही आचार्य हैं। इन्होंने गद्य और पद्यमय ७००० श्लोक-प्रमाण इस ग्रंथ की रचना की है।[3]

इस व्याकरण का उल्लेख सं० १०९५ में धनेश्वरसूरिरचित सुरसुन्दरीकथा की प्रशस्ति में आता है। इसके सिवाय सं० ११२० में अभयदेवसूरिकृत पञ्चाशक-वृत्ति (प्रशस्ति श्लो० ३) में, सं० ११३९ में गुणचन्द्ररचित महावीरचरित्र (प्राकृत-प्रस्ताव ८, श्लो० ५३) में, जिनदत्तसूरिरचित गणधरसार्धशतक (पद्य ६९) में, पद्मप्रभकृत कुन्थुनाथचरित और प्रभावकचरित (अभयदेवसूरि-चरित) में भी इस ग्रंथ का नामोल्लेख आता है।

---

१. श्रीविक्रमादित्यनरेन्द्रकालात् साशीतिके याति समासहस्रे ।
सश्रीकजावालिपुरे तदाद्यं दृब्धं मया सप्तसहस्रकल्पम् ॥
—व्याकरणप्रान्तप्रशस्तिः ।

२. तैरधीरिति यत् तु प्रवृत्तिरावयोरिह ।
तत्र दुर्जनवाक्यानि प्रवृत्तेः सन्निबन्धनम् ॥ ४०३ ॥
शब्दलक्ष्म-प्रमालक्ष्म यदेतेषां न विद्यते ।
नादिमन्तस्ततो ह्येते परलक्ष्मोपजीविनः ॥ ४०४ ॥
—प्रमालक्ष्मप्रान्ते ।

३. इस व्याकरण की हस्तलिखित प्रति जैसलमेर-भंडार में है। प्रति अत्यन्त अशुद्ध है।

इसकी रचना अनेक व्याकरण-ग्रंथों के आधार पर की गई है। धातुपाठ, सूत्रपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र पद्यबद्ध हैं।[1]

दीपकव्याकरण :

श्वेतांबर जैनाचार्य भद्रेश्वरसूरिरचित 'दीपकव्याकरण' का उल्लेख 'गणरत्न-महोदधि' में वर्धमानसूरि ने इस प्रकार किया है—'मेधाविनः प्रवरदीपककर्तृयुक्ताः।' उसकी व्याख्या में वे लिखते हैं :

'दीपककर्ता भद्रेश्वरसूरिः। प्रवरश्चासौ दीपककर्ता च प्रवरदीपककर्ता। प्राधान्यं चास्याधुनिकवैयाकरणापेक्षया।'

दूसरा उल्लेख इस प्रकार है :

'भद्रेश्वराचार्यस्तु'—

'किञ्च स्वा दुर्भगा कान्ता रक्षान्ता निश्चिता समा।
सचिवा चपला भक्तिर्बाल्येति स्वादयो दश॥
इति स्वादौ वेत्यनेन विकल्पेन पुंवद्भावं मन्यन्ते॥'

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि उन्होंने 'लिङ्गानुशासन' की भी रचना की थी। सायणरचित 'धातुवृत्ति' में श्रीभद्र के नाम से व्याकरण-विषयक मत के अनेक उल्लेख हैं, संभवतः वे भद्रेश्वरसूरि के 'दीपकव्याकरण' के होंगे। श्रीभद्र (भद्रेश्वरसूरि) ने अपने 'धातुपाठ' पर वृत्ति की रचना भी की है ऐसा सायण के उल्लेख से मालूम पड़ता है।

'कहावली' के कर्ता भद्रेश्वरसूरि ने यदि 'दीपकव्याकरण' की रचना की हो तो वे १२ वीं शताब्दी में हुए थे ऐसा निर्णय कर सकते हैं और दूसरे भद्रेश्वरसूरि जो बालचन्द्रसूरि की गुरुपरंपरा में हुए वे १२ वीं शताब्दी में हुए थे।

शब्दानुशासन (मुष्टिव्याकरण) :

आचार्य मलयगिरिसूरि ने संख्याबद्ध आगम, प्रकरण और ग्रन्थों पर व्याख्याओं की रचना करके आगमिक और दार्शनिक सैद्धान्तिक तौर पर ख्याति प्राप्त की है परन्तु उनका यदि कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ हो तो वह सिर्फ स्वोपज्ञ वृत्ति-

---

१. श्री बुद्धिसागराचार्यैः पाणिनि-चन्द्र-जैनेन्द्र-विश्रान्त-दुर्गटीकामवलोक्य -वृत्तबन्धैः (?)। धातुसूत्र-गणोणादिवृत्तबन्धैः कृतं व्याकरणं संस्कृतशब्द-प्राकृतशब्दसिद्धये॥—प्रमालक्ष्मप्रांते।

युक्त 'शब्दानुशासन' व्याकरण ग्रन्थ है। इसे 'मुष्टिव्याकरण' भी कहते हैं। स्वोपज्ञ टीका के साथ यह ४३०० श्लोक-परिमाण है।

विक्रमीय १३ वीं शताब्दी में विद्यमान आचार्य मलयगिरि हेमचन्द्रसूरि के सहचर थे। इतना ही नहीं, 'आवश्यक-वृत्ति' पृ० ११ में 'तथा चाहुः स्तुतिषु गुरवः' इस प्रकार निर्देश कर गुरु के तौर पर उनका सम्मान किया है। आचार्य हेमचन्द्रसूरि के व्याकरण की रचना होने के तुरन्त बाद में ही उन्होंने अपने व्याकरण की रचना की ऐसा प्रतीत होता है और 'शाकटायन' एवं 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' को ही केन्द्रबिन्दु बनाकर अपनी रचना की है, क्योंकि 'शाकटायन' और 'सिद्धहेम' के साथ उसका सूत्र साम्य है। मलयगिरि ने अपने व्याख्या-ग्रन्थों में अपने ही व्याकरण के सूत्रों से शब्द-प्रयोगों की सिद्धि बताई है।

मलयगिरि ने अपने व्याकरण की रचना कुमारपाल के राज्यकाल में की है ऐसा उसकी कृदृवृत्ति के पा० ३ में 'ख्याते दृश्ये' (२२) इस सूत्र के *उदाहरण में 'अदहदरातीन् कुमारपालः' ऐसा लिखा है इससे भी अनुमान होता है।*

आचार्य क्षेमकीर्तिसूरि ने 'बृहत्कल्प' की टीका की उत्थानिका में 'शब्दानुशासनादिविश्वविद्यामयज्योतिःपुञ्जपरमाणुघटितमूर्तिभिः' ऐसा उल्लेख मलयगिरि के व्याकरण के सम्बन्ध में किया है, इससे प्रतीत होता है कि विद्वानों में इस व्याकरण का उचित समादर था।

'जैन ग्रन्थावली' पृ० २९८ में, इस पर 'विषमपद-विवरण' टीका भी है जो अहमदाबाद के किसी भंडार में थी, ऐसा उल्लेख है।

इस व्याकरण की जो हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं वे पूर्ण नहीं हैं। इन प्रतियों में चतुष्कवृत्ति, आख्यातवृत्ति और कृदृवृत्ति इस प्रकार सब मिलाकर १२ अध्यायों में ३० पादों का समावेश है परन्तु तद्धितवृत्ति, जो १८ पादों में है, नहीं मिलती।[1]

---

1. यह व्याकरण-ग्रन्थ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर की ओर से प्राध्यापक पं० बेचरदास दोशी के संपादन में प्रकाशित हो गया है।

शब्दार्णवव्याकरण :

खरतरगच्छीय वाचक रत्नसार के शिष्य सहजकीर्तिगणि ने 'शब्दार्णव-व्याकरण' की स्वतंत्ररूप से रचना वि० सं० १६८० के आसपास की है। इस व्याकरण में १. संज्ञा, २. श्लेष (सन्धि), ३. शब्द (स्यादि), ४. षत्व-णत्व, ५. कारकसंग्रह, ६. समास, ७. स्त्री-प्रत्यय, ८. तद्धित, ९. कृत् और १०. धातु—ये दस अधिकार हैं।[1] अनेक व्याकरण-ग्रंथों को देखकर उन्होंने अपना व्याकरण सरल शैली में निर्माण किया है।

साहित्यक्षेत्र में अपने ग्रन्थ का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने अपनी लघुता का परिचय प्रशस्ति में इस प्रकार दिया है :

'शब्दानुशासन की रचना कष्टसाध्य है। इस रचना में नवीनता नहीं है'—ऐसा मात्सर्यवचन प्रमोदशील और गुणी वैयाकरणों को अपने मुख से नहीं कहना चाहिए। ऐसे शास्त्रों में जिन विद्वानों ने परिश्रम किया है वे ही मेरे श्रम को समझ सकेंगे। मैं कोई विद्वान् नहीं हूं, मेरी चर्चा में विशेषता नहीं है, मुझ में ऐसी बुद्धि भी नहीं, फिर भी पार्श्वनाथ भगवान् के प्रभाव से ही इस ग्रंथ का निर्माण किया है।[2]

---

१. संज्ञा श्लेषः शब्दाः षत्व-णत्वे कारकसंग्रहः।
समासः स्त्रीप्रत्ययश्च तद्धिताः कृच्च धातवः॥
दशाधिकारा एतेऽत्र व्याकरणे यथाक्रमम्।
साङ्गाः सर्वत्र विज्ञेयाः यथाशास्त्रं प्रकाशिताः॥

२. कष्टाऽस्माभिरियं रीतिः प्रायः शब्दानुशासने॥
नवीनं न किमप्यत्र कृतं मात्सर्यवागियम्।
अमत्सरैः शब्दविद्भिः न वाच्या गुणसंग्रहैः॥
एतादृशानां शास्त्राणां विधाने यः परिश्रमः।
स एव हि जानाति यः करोति सुधीः स्वयम्॥
नाहं कृती नो विवादे आधिक्यं मम मतिर्न च।
केवलः पार्श्वनाथस्य प्रभावोऽयं प्रकाशते॥

ग्रन्थकर्ता ने अपने पूर्व के व्याकरणों में रही हुई त्रुटियाँ, विशृङ्खलता, क्लिष्टता, विस्तार, दूरान्वय, वैदिक प्रयोग आदि से रहित, निर्दोष और सरल व्याकरण की रचना की है। इसमें सात अध्याय संस्कृत भाषा के लिये हैं तथा आठवाँ अध्याय प्राकृत भाषा के लिये है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। कुल मिलाकर ४६८५ सूत्र हैं। उणादिगण के १००६ सूत्र मिलाते हुए सूत्रों की कुल संख्या ५६९१ है। संस्कृत भाषा से सम्बन्धित ३५६६ और प्राकृत भाषा से सम्बन्धित १११९ सूत्र हैं।

इस व्याकरण के सूत्रों में लाघव, इसकी लघुवृत्ति में उपयुक्त-सूचन, बृहद्-वृत्ति में विषय-विस्तार और बृहन्न्यास में चर्चाबाहुल्य की मर्यादाओं से यह व्याकरणग्रन्थ अलंकृत है। इन सब प्रकार की टीकाओं और पंचांगी से सर्वांग-पूर्ण व्याकरणग्रन्थ श्री हेमचन्द्रसूरि के सिवाय और किसी एक ही ग्रन्थकार ने निर्माण किया हो ऐसा समग्र भारतीय साहित्य में देखने में नहीं आता। इस व्याकरण की रचना इतनी आकर्षक है कि इस पर लगभग ६२–६३ टीकाएँ, संक्षिप्त तथा सहायक ग्रन्थ एवं स्वतन्त्र रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

श्री हेमचन्द्राचार्य की सूत्र-संकलना दूसरे व्याकरणों से सरल और विशिष्ट प्रकार की है। उन्होंने संज्ञा, संधि, स्यादि, कारक, षत्व-णत्व, स्त्री-प्रत्यय, समास, आख्यात, कृदन्त और तद्धित—इस प्रकार विषयक्रम से रचना की है और संज्ञाएँ सरल बनाई हैं।

श्री हेमचन्द्राचार्य का दृष्टिकोण शैक्षणिक था, इससे उन्होंने पूर्वाचार्यों की रचनाओं का इस सूत्र-संयोजना में सुन्दरता से उपयोग किया है। वे विशेषरूप से शाकटायन के ऋणी हैं। जहाँ उनके सूत्रों से काम चला वहाँ वे ही सूत्र कायम रखे, पर जहाँ कहीं त्रुटि देखने में आई वहाँ उन्हें बदल दिया और उन सूत्रों को सर्वग्राही बनाने की भरसक कोशिश की। इसीलिये तो उन्होंने आत्मविश्वास से कहा है कि—'आकुमारं यशः शाकटायनस्य'—अर्थात् शाकटायन का यश कुमारपाल तक ही रहा, चूँकि तब तक 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' न रचा गया था और न प्रचार में आया था।

श्री हेमचन्द्राचार्यविरचित अनेक विषयों से सम्बद्ध ग्रन्थ निम्नलिखित हैं :

व्याकरण और उसके अंग

नाम

१. सिद्धहेम-लघुवृत्ति
२. सिद्धहेम-बृहद्वृत्ति (तत्त्वप्रकाशिका)

३. सिद्धहेम-बृहन्न्यास (शब्दमहार्णवन्यास) (अपूर्ण)	८४०००
४. सिद्धहेम-प्राकृतवृत्ति	२२००
५. लिङ्गानुशासन-सटीक	३६८४
६. उणादिगण-विवरण	३२५०
७. धातुपारायण-विवरण	५६००

कोश

८. अभिधानचिन्तामणि-स्वोपज्ञ टीकासहित	१००००
९. अभिधानचिन्तामणि-परिशिष्ट	२०४
१०. अनेकार्थकोश	१८२८
११. निघण्टुशेष (वनस्पतिविषयक)	३९६
१२. देशीनाममाला–स्वोपज्ञ टीकासहित	३५००

साहित्य-अलंकार

१३. काव्यानुशासन–स्वोपज्ञ अलंकारचूडामणि और विवेक-वृत्तिसहित	६८००

छन्द

१४. छन्दोनुशासन–छन्दश्चूडामणि टीकासहित	३०००

दर्शन

१५. प्रमाणमीमांसा–स्वोपज्ञवृत्तिसहित (अपूर्ण)	२५००
१६. वेदांकुश (द्विजवदनचपेटा)	१०००

इतिहासकाव्य–व्याकरणसहित

१७. संस्कृत द्वयाश्रयमहाकाव्य	२८२८
१८. प्राकृत द्वयाश्रयमहाकाव्य	१५००

इतिहासकाव्य और उपदेश

१९. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (महाकाव्य–दशपर्व)	३२०००
२०. परिशिष्टपर्व	३५००

योग

२१. योगशास्त्र–स्वोपज्ञ टीकासहित	१२५७०

स्तुति-स्तोत्र

अन्य कृतियाँ

मध्यमवृत्ति (सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन की टीका)
रहस्यवृत्ति " " "
अर्हन्नामसमुच्चय
अर्हन्नीति
नाभेय-नेमिद्विसंधानकाव्य
न्यायबलाबलसूत्र
बलाबलसूत्र-बृहद्वृत्ति
बालभाषाव्याकरणसूत्रवृत्ति

इनमें से कुछ कृतियों के विषय में संदेह है।

स्वोपज्ञ लघुवृत्ति :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' की विशद किन्तु संक्षेप में स्पष्टीकरण करनेवाली यह टीका स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने रची है, जिसको 'लघुवृत्ति' कहते हैं। अध्याय १ से ७ तक की इस वृत्ति का श्लोक-परिमाण ६००० है, इसलिये उसको 'छः हजारी' भी कहते हैं। ८ वें अध्याय पर लघुवृत्ति नहीं है। इसमें गणपाठ, उणादि आदि नहीं हैं।

स्वोपज्ञ मध्यमवृत्ति (लघुवृत्ति-अवचूरिपरिष्कार) :

अध्याय प्रथम से अध्याय सप्तम तक ८००० श्लोक-परिमाण 'मध्यमवृत्ति'[1] की स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने रचना की है ऐसा कुछ विद्वानों का मन्तव्य है।

रहस्यवृत्ति :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' पर 'रहस्यवृत्ति' भी स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने रची है, ऐसा माना जाता है। इसमें सब सूत्र नहीं हैं। प्रायः २५००

---

१. 'श्री लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला' छाणी की ओर से इसकी चतुष्कवृत्ति (पृ० १–२४८ तक) प्रकाशित हुई है।

श्लोकात्मक इस वृत्ति में दो स्थलों में 'स्वोपज्ञ' शब्द का उल्लेख होने से यह वृत्ति स्वोपज्ञ मानी जाती है।[1]

बृहद्वृत्ति (तत्त्वप्रकाशिका) :

'सि० श०' पर 'तत्त्वप्रकाशिका' नाम की बृहद्वृत्ति का स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने निर्माण किया है। यह १८००० श्लोकपरिमाण है इसलिये इसको 'अठारह हजारी' भी कहते हैं। यह १ अध्याय से ८ अध्याय तक है। कई विद्वान् ८ वें अध्याय की वृत्ति को 'लघुवृत्ति' के अन्तर्गत गिनते हैं। इस विषय में ग्रन्थकार ने कोई स्पष्टीकरण नहीं किया है। इस वृत्ति में 'अमोघवृत्ति' का भी आधार लिया गया है। गणपाठ, उणादि वगैरह इसमें हैं।[2]

बृहन्न्यास (शब्दमहार्णवन्यास) :

'सि० श०' की बृहद्वृत्ति पर 'शब्दमहार्णवन्यास' नाम से बृहन्न्यास की रचना ८४००० श्लोक-परिमाण में स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने की है। वाद और प्रतिवाद उपस्थित करके अपने विधान को स्थिर करना, उसे यहाँ 'न्यास' कहते हैं। इसमें कई प्राचीन वैयाकरणों के मतों का उल्लेख किया गया है। पतञ्जलि का 'शेषं निःशेषकर्तारम्' इस वाक्य से बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। दुर्भाग्यवश यह न्यास पूरा नहीं मिलता। केवल २० श्लोक-प्रमाण यह ग्रन्थ इस रूप में मिलता है : पहले अध्याय के प्रथम पाद के ४२ सूत्रों में से ३८ सूत्र, तीसरा व चतुर्थ पाद; दूसरे अध्याय के चारों पाद, तीसरे अध्याय का चतुर्थ पाद और सातवें अध्याय का तीसरा पाद इन पर न्यास मिलता है। जिन अध्यायों के पादों पर न्यास नहीं मिलता उनपर आचार्य विजयलावण्यसूरि ने 'न्यासानुसंधान' नाम से न्यास की रचना की है।[3]

न्याससारसमुद्धार (बृहन्न्यासदुर्गपदव्याख्या) :

'सि० श०' पर चन्द्रगच्छीय आचार्य देवेन्द्रसूरि के शिष्य कनकप्रभसूरि ने हेमचन्द्रसूरि के 'बृहन्न्यास' के संक्षिप्त रूप 'न्याससारसमुद्धार' अपर नाम 'बृहन्न्यासदुर्गपदव्याख्या' के नाम से न्यास[4] ग्रन्थ की १३ वीं सदी में रचना की है।

---

१. जैन श्रेयस्कर मण्डल, मेहसाना की ओर से यह ग्रन्थ छपा है।

२. यह वृत्ति जैन ग्रन्थ-प्रकाशक सभा, अहमदाबाद की ओर से छपी है।

३. ५ अध्याय तक लावण्यसूरि ग्रन्थमाला, बोटाद की ओर से छप चुका है।

४. यह न्यास मनसुखभाई भगुभाई, अहमदाबाद की ओर से छपा है।

हैं। आख्यात में ६ पाद हैं, कृत् में चार पाद हैं, तद्धित में ८ पाद हैं। इस प्रकार यहाँ चार प्रकरण गिनाये हैं उनको प्रकरण नहीं अपितु वृत्ति कहते हैं।

बृहद्वृत्ति-ढुंढिका :

मुनि सौभाग्यसागर ने वि० सं० १५९१ में 'सि० श०' पर ८००० श्लोक-प्रमाण 'बृहद्वृत्ति-ढुंढिका' की रचना की है। यह चतुष्क, आख्यात, कृत् और तद्धित प्रकरणों पर ही है।

बृहद्वृत्ति-दीपिका :

'सि० श०' पर विजयचन्द्रसूरि और हरिभद्रसूरि के शिष्य मानभद्र के शिष्य विद्याकर ने 'दीपिका' की रचना की है।

कक्षापट-वृत्ति :

'सि० श०' की स्वोपज्ञ बृहद्वृत्ति पर 'कक्षापटवृत्ति' नाम से ४८१८ श्लोक-प्रमाण वृत्ति की रचना मिलती है। 'जैन ग्रन्थावली' पृ० २९९ में इस टीका को 'कक्षापट' और 'बृहद्वृत्ति-विषमपदव्याख्या'—ये दो नाम दिये गये हैं।

बृहद्वृत्ति-टिप्पन :

वि० सं० १६४६ में किसी अज्ञात नामा विद्वान् ने 'सि० श०' पर 'बृहद्वृत्ति-टिप्पन' की रचना की है।

हैमोदाहरण-वृत्ति :

यह 'सि० श०' की बृहद्वृत्ति के उदाहरणों का स्पष्टीकरण हो ऐसा मालूम होता है। जैन ग्रन्थावली, पृ० ३०१ में इसका उल्लेख है।

परिभाषा-वृत्ति :

यह 'सि० श०' की परिभाषाओं पर वृत्तिस्वरूप ४००० श्लोक-प्रमाण ग्रन्थ है। 'बृहट्टिप्पणिका' में इसका उल्लेख है।

हैमदशपादविशेष और हैमदशपादविशेषार्थ :

'सि० श०' पर इन दो टीका-ग्रन्थों का उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृ० २९९ में मिलता है।

बलाबलसूत्रवृत्ति :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि-निर्मित 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' व्याकरण की स्वोपज्ञ बृहद्वृत्ति में से संक्षेप करके किसी अज्ञात आचार्य ने 'बलाबलसूत्रवृत्ति' रची है।

डी० सूचीपत्र में इस वृत्ति के कर्ता आचार्य हेमचन्द्रसूरि बताये गये हैं; जबकि दूसरे स्थल में इसी का 'परिभाषावृत्ति' के नाम से दुर्गसिंह की कृति के रूप में उल्लेख हुआ है।

क्रियारत्नसमुच्चय :

तपागच्छीय आचार्य सोमसुन्दरसूरि के सहाध्यायी आचार्य गुणरत्नसूरि ने वि० सं० १४६६ में 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के धातुओं के दसगण और सन्नन्तादि प्रक्रिया के रूपों की साधनिका तत्तत् सूत्रों के निर्देशपूर्वक की है। सौत्र धातुओं के सब रूपाख्यानों को विस्तार से समझा दिया है। किस काल का किस प्रसंग में प्रयोग करना चाहिये उसका बोध कराया है। कर्ता को जहाँ कहीं कठिन स्थलविशेष मालूम पड़ा वहीं उन्होने तत्कालीन गुजराती भाषा से समझाने का प्रयत्न किया है। अंत में ६६ श्लोकों की विस्तृत प्रशस्ति दी है। उसमें रचना-संवत्, प्रेरक, कर्ता का नाम, अपनी लघुता, ग्रन्थों का परिमाण निम्नोक्त प्रकार से दिया है :

> काले षड्-रस-पूर्व (१४६६) वत्सरमिते श्रीविक्रमार्काद् गते,
> गुर्वादेश विमृश्य च सदा स्वान्योपकारं परम्।
> ग्रन्थं श्रीगुणरत्नसूरिरतनोत् प्रज्ञाविहीनोऽप्यमुं,
> निर्हेतुप्रकृतिप्रधानजननैः शोध्यस्त्वयं धीधनैः ॥ ६३ ॥
> प्रत्यक्षरं गणनया ग्रन्थमानं विनिश्चितम्।
> षट्पञ्चाशतान्येकषष्ट्याऽ(५६६१)धिकान्यनुष्टुभाम् ॥ ६४ ॥

न्यायसंग्रह (न्यायार्थमञ्जूषा-टीका) :

'सि० श०' के सातवें अध्याय की 'बृहद्वृत्ति' के अन्त में ५७ न्यायों का संग्रह है। उसपर हेमचन्द्रसूरि की कोई व्याख्या हो ऐसा प्रतीत नहीं होता।

ये ५७ न्याय और अन्य ८४ न्यायों का संग्रह करके तपागच्छीय रत्नशेखर-सूरि के शिष्य चारित्ररत्नगणि के शिष्य हेमहंसगणि ने उनपर 'न्यायार्थमञ्जूषा' नाम की टीका की रचना वि० सं० १५१६ में की है। इसमें इन्होंने कहा है कि उपर्युक्त ५७ न्यायों पर प्रज्ञापना नाम की वृत्ति थी।

५७ और दूसरे ८४ मिलाकर १४१ न्यायों के संग्रह को हेमहंसगणि ने 'न्यायसंग्रहसूत्र' नाम दिया है। दोनों न्यायों की वृत्ति का नाम न्यायार्थ-मंजूषा है।

स्यादिशब्दसमुच्चय :

वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि के शिष्य और गूर्जरनरेश विशलदेव राजा की राजसभा के सम्मान्य महाकवि आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने १३ वीं शताब्दी में 'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओं पर वृत्तिस्वरूप 'सि० श०' के सूत्रों से नाम के विभक्ति रूपों की साधनिका की है। यह ग्रन्थ 'सि० श०' के अध्येताओं के लिए बड़ा उपयोगी है।[1]

स्यादिव्याकरण :

'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओं पर उपकेशगच्छीय उपाध्याय मतिसागर के शिष्य विनयभूषण ने 'स्यादिशब्दसमुच्चय' को ध्यान में रखकर ४२२५ श्लोकबद्ध टीका की भावडारगच्छीय सोमदेव मुनि के लिये रचना की है। इसमें चार उल्लास हैं। इसकी ९२ पत्रों की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है। उसकी पुष्पिका में इस ग्रंथ की रचना और कारण के विषय में इस प्रकार उल्लेख है :

इति श्रीमदुपकेशगच्छे महोपाध्याय श्रीमतिसागरशिष्याणुना विनयभूषणेन श्रीमदमरयुक्त्या सविस्तरं प्ररूपितः । संख्याशब्दोल्लासस्तुर्यः ॥

श्रीभावडारगच्छेऽस्ति सोमदेवाभिधो मुनिः ।
तदभ्यर्थनतः स्यादिर्विनयेन निर्मिता ॥

संवत् १५३६ वर्षे ज्येष्ठ सुदि पञ्चम्यां लिखितेयम् ।

स्यादिशब्ददीपिका :

'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओं पर आचार्य जयानन्दसूरि ने १०५० श्लोक-परिमाण 'अवचूरि' रची है उसका 'दीपिका' नाम दिया है। इसमें शब्दों की प्रक्रिया 'सि० श०' के अनुसार दी गई है। शब्दों के रूप 'सि० श०' के सूत्रों के आधार पर सिद्ध किये गये हैं।

हैमविभ्रम-टीका :

मूल ग्रंथ २१ कारिकाओं में है। कारिकाओं की रचना किसने की यह ज्ञात नहीं; परंतु व्याकरण से उपलक्षित कई भ्रमात्मक प्रयोग सूचित किये गये हैं। उन कारिकाओं पर भिन्न-भिन्न व्याकरण के सूत्रों से उन भ्रमात्मक प्रयोगों को

1. जैन ग्रन्थमाला में यह ग्रंथ छप गया है।

सही बताकर सिद्धि की गई है। इससे कातंत्रविभ्रम, सारस्वतविभ्रम, हेमविभ्रम इन नामों से अलग-अलग रचनाएँ मिलती हैं।

आचार्य गुणचन्द्रसूरि द्वारा इन २१ कारिकाओं पर रची हुई 'हेमविभ्रम-टीका' का नाम है 'तत्त्वप्रकाशिका'। 'सि० श०' व्याकरण के अभ्यासियों के लिये यह ग्रंथ अति उपयोगी है।

इस 'हेमविभ्रम-टीका'[1] के रचयिता आचार्य गुणचंद्रसूरि वादी आचार्य देवसूरि के शिष्य थे। ग्रंथ के अंत में वे इस प्रकार उल्लेख करते हैं:

'अकारि गुणचन्द्रेण वृत्तिः स्व-परहेतवे।
देवसूरिक्रमाम्भोजचञ्चरीकेण सर्वदा॥'

संभवतः ये गुणचन्द्रसूरि वे ही हो सकते हैं जिन्होंने आचार्य हेमचन्द्रसूरि के शिष्य आचार्य रामचन्द्रसूरि के साथ 'द्रव्यालंकार-टिप्पन' और 'नाट्यदर्पण' की रचना की है।

कविकल्पद्रुम:

तपागच्छीय कुलचरणगणि के शिष्य हर्षकुलगणि ने 'सि० श०' में निर्दिष्ट धातुओं की पद्यबद्ध विचारात्मक रचना वि० सं० १५७७ में की है।

वोपदेव के 'कविकल्पद्रुम' के समान यह भी पद्यात्मक रचना है। ११ पल्लवों में यह ग्रंथ विभक्त है। प्रथम पल्लव में सब धातुओं के अनुबंध दिये हैं और 'सि० श०' के कई सूत्र भी इसमें जोड़ दिये गये हैं। पल्लव २ से १० में क्रमशः भ्वादि से लेकर चुरादि तक नव गण और ११ वें पल्लव में सौत्रादि धातुओं का विचार किया है।

'कविकल्पद्रुम' की रचना हेमविमलसूरि के काल में हुई है। उस पर 'धातुचिन्तामणि' नाम की स्वोपज्ञ टीका है; परंतु समग्र टीका उपलब्ध नहीं हुई है। सिर्फ ११ वें पल्लव की टीका मूल पद्यों के साथ छपी है।

कविकल्पद्रुम-टीका:

किसी अज्ञातकर्तृक 'कविकल्पद्रुम' नाम की कृति पर मुनि विजयविमल ने टीका रची है।

---

१. यह ग्रंथ भावनगर की यशोविजय ग्रंथमाला से छपा है।

स्यादिशब्दसमुच्चय :

वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि के शिष्य और गूर्जरनरेश विशलदेव राजा की राजसभा के सम्मान्य महाकवि आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने १३ वीं शताब्दी में 'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओं पर वृत्तिस्वरूप 'सि० श०' के सूत्रों से नाम के विभक्ति रूपों की साधनिका की है। यह ग्रन्थ 'सि० श०' के अध्येताओं के लिए बड़ा उपयोगी है।[1]

स्यादिव्याकरण :

'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओं पर उपकेशगच्छीय उपाध्याय मतिसागर के शिष्य विनयभूषण ने 'स्यादिशब्दसमुच्चय' को ध्यान में रखकर ४२२५ श्लोकबद्ध टीका की भावडारगच्छीय सोमदेव मुनि के लिये रचना की है। इसमें चार उल्लास हैं। इसकी ९२ पत्रों की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है। उसकी पुष्पिका में इस ग्रंथ की रचना और कारण के विषय में इस प्रकार उल्लेख है :

इति श्रीमदुपकेशगच्छे महोपाध्याय श्रीमतिसागरशिष्याणुना विनयभूषणेन श्रीमदमरयुक्त्या सविस्तरं प्ररूपितः। संख्याशब्दोल्लासस्तुर्यः ॥

श्रीभावडारगच्छेऽस्ति सोमदेवाभिधो मुनिः।
तदभ्यर्थनतः स्यादिर्विनयेन निर्मिता ॥
संवत् १५३६ वर्षे ज्येष्ठ सुदि पञ्चम्यां लिखितेयम्।

स्यादिशब्ददीपिका :

'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओं पर आचार्य जयानन्दसूरि ने १०५० श्लोक-परिमाण 'अवचूरि' रची है उसका 'दीपिका' नाम दिया है। इसमें शब्दों की प्रक्रिया 'सि० श०' के अनुसार दी गई है। शब्दों के रूप 'सि० श०' के सूत्रों के आधार पर सिद्ध किये गये हैं।

हेमविभ्रम-टीका :

मूल ग्रंथ २१ कारिकाओं में है। कारिकाओं की रचना किसने की यह ज्ञात नहीं; परंतु व्याकरण से उपलक्षित कई भ्रमात्मक प्रयोग सूचित किये गये हैं। उन कारिकाओं पर भिन्न-भिन्न व्याकरण के सूत्रों से उन भ्रमात्मक प्रयोगों को

---

१. भावनगर की यशोविजय जैन ग्रन्थमाला से यह ग्रंथ छप गया है।

सही बताकर सिद्धि की गई है। इससे कातंत्रविभ्रम, सारस्वतविभ्रम, हेमविभ्रम इन नामों से अलग-अलग रचनाएँ मिलती हैं।

आचार्य गुणचन्द्रसूरि द्वारा इन २१ कारिकाओं पर रची हुई 'हेमविभ्रम-टीका' का नाम है 'तत्त्वप्रकाशिका'। 'सि० श०' व्याकरण के अभ्यासियों के लिये यह ग्रंथ अति उपयोगी है।

इस 'हेमविभ्रम-टीका'[1] के रचयिता आचार्य गुणचंद्रसूरि वादी आचार्य देवसूरि के शिष्य थे। ग्रंथ के अंत में वे इस प्रकार उल्लेख करते हैं :

'अकारि गुणचन्द्रेण वृत्तिः स्व-परहेतवे।
देवसूरिक्रमाम्भोजचञ्चरीकेण सर्वदा॥'

संभवतः ये गुणचन्द्रसूरि वे ही हो सकते हैं जिन्होंने आचार्य हेमचन्द्रसूरि के शिष्य आचार्य रामचन्द्रसूरि के साथ 'द्रव्यालंकार-टिप्पन' और 'नाट्यदर्पण' की रचना की है।

कविकल्पद्रुम :

तपागच्छीय कुलचरणगणि के शिष्य हर्षकुलगणि ने 'सि० श०' में निर्दिष्ट धातुओं की पद्यबद्ध विचारात्मक रचना वि० सं० १५७७ में की है।

बोपदेव के 'कविकल्पद्रुम' के समान यह भी पद्यात्मक रचना है। ११ पल्लवों में यह ग्रंथ विभक्त है। प्रथम पल्लव में सब धातुओं के अनुबंध दिये हैं और 'सि० श०' के कई सूत्र भी इसमें जोड़ दिये गये हैं। पल्लव २ से १० में क्रमशः भ्वादि से लेकर चुरादि तक नव गण और ११ वें पल्लव में सौत्रादि धातुओं का विचार किया है।

'कविकल्पद्रुम' की रचना हेमविमलसूरि के काल में हुई है। उस पर 'धातुचिन्तामणि' नाम की स्वोपज्ञ टीका है; परंतु समग्र टीका उपलब्ध नहीं हुई है। सिर्फ ११ वें पल्लव की टीका मूल पद्यों के साथ छपी है।

कविकल्पद्रुम-टीका :

किसी अज्ञातकर्तृक 'कविकल्पद्रुम' नाम की कृति पर मुनि विजयविमल ने टीका रची है।

---

1. यह ग्रंथ भावनगर की यशोविजय ग्रंथमाला से छपा है।

तिङन्वयोक्ति :

न्यायाचार्य यशोविजयजी उपाध्याय ने 'तिङन्वयोक्ति' नामक व्याकरण-संबंधी ग्रंथ की रचना की है। कई विद्वान् इसको 'तिङन्तान्वयोक्ति' भी कहते हैं। इस कृति का आदि पद्य इस प्रकार है :

ऐन्द्रव्रजाभ्यर्चितपादपद्मं सुमेरुधीरं प्रणिपत्य वीरम्।
वदामि नैयायिकशाब्दिकानां मनोविनोदाय तिङन्वयोक्तिम्॥

हैमधातुपारायण :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'हैम-धातुपारायण' नामक ग्रंथ की रचना की है। 'धातुपाठ' शब्दशास्त्र का अत्यन्त उपयोगी अंग है इसीलिये यह ग्रंथ 'सिद्ध-हेमचन्द्रशब्दानुशासन' के परिशिष्ट के रूप में बनाया गया है।

'धातु' क्रिया का वाचक है, अर्थात् क्रिया के अर्थ को धारण करनेवाला 'धातु' कहा जाता है। इन धातुओं से ही शब्दों की उत्पत्ति हुई है ऐसा माना जाता है। इन धातुओं का निरूपण करनेवाला यह 'धातुपारायण' नामक ग्रंथ है। 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' में निम्न वर्गों में धातुओं का वर्गीकरण किया गया है :

भ्वादि, अदादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि—इस प्रकार नव गण हैं। अतः इसे 'नवगणी' भी कहते हैं।

इन गणों के सूचक अनुबंध भ्वादि गण का कोई अनुबंध नहीं है। दूसरे गणों के क्रमशः क्, च्, ट्, त्, प्, य्, श् और ण् अनुबंधों का निर्देश है। फिर; इसमें स्वरान्त और व्यञ्जनांत शैली से धातुओं का क्रम दिया गया है। इसमें परस्मैपद, आत्मनेपद और उभयपद के अनुबंध इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ, ग्, ङ् और अनुस्वार बताये गये हैं।

इकार अनुबंध से आत्मनेपद, ई अनुबंध से उभयपद का निर्देश है। 'वेट्' धातुओं का सूचक अनुबन्ध औ है और 'अनिट्' धातुओं को बताने के लिये अनुस्वार का उपयोग किया गया है। इस प्रकार अनुबंधों के साथ धातुओं के अर्थ का निर्देश किया गया है।

इस ग्रंथ में कौशिक, द्रमिल, कण्व, भगवद्गीता, माघ, कालिदास आदि ग्रन्थकारों और ग्रन्थों का उल्लेख भी किया गया है।

इसमें कई अवतरण पद्य में हैं, बाकी विभाग गद्य में है। कई अवतरण (पद्य) शृंगारिक भी हैं।

हैमधातुपारायण-वृत्ति :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'हैमधातुपारायण' पर वृत्ति की रचना की है।[1]

हेम-लिंगानुशासन :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने नामों के लिंगों को बताने के लिये 'लिंगानुशासन' की रचना की है। संस्कृत भाषा में नामों के लिंगों को याद रखना ही चाहिए। इसमें आठ प्रकरण इस प्रकार हैं : १. पुंलिंग, पद्य १७; २. स्त्रीलिंग ३३; ३. नपुंसकलिंग ३४, ४. पुं-स्त्रीलिंग १२; ५. पुं-नपुंसकलिंग ३६; ६. स्त्री-नपुंसकलिंग ६; ७. स्वतः स्त्रीलिंग ६; ८. परलिंग ४। इस प्रकार इसमें १३९ पद्य विविध छंदों में हैं।

शाकटायन के लिंगानुशासन से यह ग्रंथ बड़ा है। शब्दों के लिंगों के लिए यह प्रमाणभूत और अंतिम माना जाता है।

हेम-लिंगानुशासन-वृत्ति :

हेमचन्द्रसूरि ने अपने 'लिंगानुशासन' पर स्वोपज्ञवृत्ति की रचना की है। यह वृत्ति-ग्रंथ ४००० श्लोक-प्रमाण है। इसमें ५७ ग्रंथों और पूर्वाचार्यों के मतों का उल्लेख किया है।[2]

दुर्गपदप्रबोध-वृत्ति :

पाठक वल्लभ मुनि ने हेमचन्द्रसूरि के 'लिंगानुशासन' पर वि० सं० १६६१ में २००० श्लोक-परिमाण 'दुर्गपदप्रबोध' नामक वृत्ति की रचना की है।

हेम-लिंगानुशासन-अवचूरि :

पं० केसरविजयजी ने आचार्य हेमचन्द्रसूरि के लिंगानुशासन पर 'अवचूरि'[3] की रचना की है। आचार्य हेमचन्द्रसूरि की स्वोपज्ञ वृत्ति के आधार पर यह छोटी-सी वृत्ति बनाई गई है।

---

१. इस वृत्ति ग्रंथ का मूलसहित संपादन वीएना के जे० कीर्स्ट ने किया है और बम्बई से सन् १९०१ में प्रकाशित हुआ है। संपादक ने इस ग्रंथ में प्रयुक्त धातुओं का और शब्दों का अलग-अलग कोश दिया है।

२. यह ग्रंथ 'अमी-सोम जैन ग्रंथमाला' बम्बई से वि० सं० १९९६ में प्रकाशित हुआ है।

३. यह 'अवचूरि' यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर से प्रकाशित है।

गणपाठ :

कई शब्द-समूहों में एक ही प्रकार का व्याकरणसंबंधी नियम लागू होता हो तब व्याकरणसूत्र में प्रथम शब्द के उल्लेख के साथ ही आदि शब्द लगा कर गण का निर्देश किया जाता है। इस प्रकार 'सिद्धहेमचन्द्र शब्दानुशासन' की बृहद्‌वृत्ति में ऐसे शब्दसमूह का उल्लेख किया गया है। इसलिये गणपाठ व्याकरण का अति महत्त्व का अंग है।

पं० मयाशंकर गिरजाशंकर शास्त्री ने 'सिद्धहेम-बृहत्प्रक्रिया' नाम से ग्रंथ की संकलना की है उसमें गणपाठ पृ० ९५७ से ९९१ में अलग से भी दिये गये हैं।

गणविवेक :

'सि० श०' की बृहद्‌वृत्ति में निर्दिष्ट गणों को पं० साधुराज के शिष्य पं० नन्दिरत्न ने वि० १७ वीं शती में पद्यों में निबद्ध किया है। इसका ग्रन्थाग्र ६०७ है। इसकी ८ पत्र की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में (सं० ५९०७) है। इसके आदि में ग्रंथ का हेतु वगैरह इस प्रकार दिया है :

अर्हन्तः सिद्धिदाः सिद्धाचार्योपाध्याय-साधवः।
गुरुः श्रीसाधुराजश्च बुद्धिं विदधतां मम ॥ १ ॥
श्रीहेमचन्द्रसूरीन्द्रः पाणिनिः शाकटायनः।
श्रीभोजश्चन्द्रगोमी [च] जयन्त्यन्येऽपि शाब्दिकाः ॥ २ ॥
श्रीसिद्धहेमचन्द्र[क]व्याकरणोदितैर्गणैः ।
ग्रन्थो गणविवेकाख्यः स्वान्यस्मृत्यै विधीयते ॥ ३ ॥

गणदर्पण :

गूर्जर-नरेश महाराजा कुमारपाल ने 'गणदर्पण'[1] नामक व्याकरणसंबंधी ग्रंथ की रचना की है। कुमारपाल का राज्यकाल वि० सं० ११९९ से १२३० है इसलिए उसी के दरमियान में इसकी रचना हुई है। यह ग्रंथ दण्डनायक वोसरी और प्रतिहार भोजदेव के लिये निर्माण किया गया था ऐसा उल्लेख इसकी

१. इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति जोधपुर के श्री केशरिया मंदिरस्थित खरतरगच्छीय ज्ञानभंडार में है। इसमें कुल २१ पत्र हैं, प्रारंभ के २ पत्र नहीं हैं; एवं बीच-बीच में पाठ भी छूट गया है।

पुष्पिका में है। भाषा संस्कृत है और चार-चार पादवाले तीन अध्याय पद्यों में हैं। कहीं-कहीं गद्य भी है। यह ग्रंथ शायद 'सि० श०' के गणों का निर्देश करता हो। इसका ९०० ग्रंथाग्र है। कुमारपाल ने 'नम्राखिल०' से आरंभ करके 'साधारणजिनस्तवन' नामक संस्कृत स्तोत्र की रचना की है।

इस 'गणदर्पण' की प्रति ५०० वर्ष प्राचीन है जो वि० सं० १५१८ (शाके १३८३) में देवगिरि में देवडागोत्रीय ओसवाल वीनपाल ने लिखवाई है। प्रति खरतरगच्छीय मुनि समयभक्त को दी गई है। इनके शिष्य पुण्यनन्दि द्वारा रचित सुप्रसिद्ध 'रूपकमाला' की प्रशस्ति के अनुसार ये आचार्य सागरचन्द्रसूरि के शिष्य रत्नकीर्ति के शिष्य थे।

प्रक्रियाग्रन्थ :

व्याकरण-ग्रन्थों में दो प्रकार के क्रम देखने में आते हैं : १ अध्यायक्रम (अष्टाध्यायी) और २ प्रक्रियाक्रम। अध्यायक्रम में सूत्रों का विषयक्रम, उनका बलाबल, अनुवृत्ति, व्यावृत्ति, उत्सर्ग, अपवाद, प्रत्यपवाद, सूत्ररचना का प्रयोजन आदि बातें दृष्टि में रखकर सूत्ररचना होती है। मूल सूत्रकार अध्यायक्रम से ही रचना करते हैं। बाद में होनेवाले रचनाकार उन सूत्रों को प्रक्रियाक्रम में रखते हैं।

सिद्धहेम-शब्दानुशासन पर भी ऐसे कई प्रक्रियाग्रंथ हैं, जिनका ब्यौरेवार निर्देश हम यहां करते हैं।

हैमलघुप्रक्रिया :

तपागच्छीय उपाध्याय विनयविजयगणि ने सिद्धहेमशब्दानुशासन के अध्यायक्रम को प्रक्रियाक्रम में परिवर्तित करके वि० सं० १७१० में 'हैमलघु-प्रक्रिया' नामक ग्रंथ की रचना की है। यह प्रक्रिया १. नाम, २. आख्यान और ३. कृदन्त—इन तीन वृत्तियों में विभक्त है। विषय की दृष्टि से संज्ञा, संधि, लिङ्ग, युष्मदस्मद, अव्यय, स्त्रीलिङ्ग, कारक, समास और तद्धित—इन प्रकरणों में ग्रन्थ-रचना की है। अंत में प्रशस्ति है।

हैमबृहत्प्रक्रिया :

उपाध्याय विनयविजयजीरचित 'हैमलघुप्रक्रिया' के क्रम को ध्यान में रखकर आधुनिक विद्वान् मयाशंकर गिरजाशंकर ने उस पर बृहद्वृत्ति की रचना करके उसको 'हैमबृहत्प्रक्रिया' नाम दिया है। यह ग्रन्थ छपा है। इसका रचना-काल वि० २० वीं शती है।

हैमप्रकाश (हैमप्रक्रिया-बृहन्न्यास) :

तपागच्छीय उपाध्याय विनयविजयजी ने जो 'हैमलघुप्रक्रिया' ग्रंथ की रचना की है उस पर उन्होंने ३४००० श्लोक-परिणाम स्वोपज्ञ 'हैमप्रकाश' अपरनाम 'हैमप्रक्रिया-बृहन्न्यास'[1] की रचना वि० सं० १७९७ में की है। 'सिद्ध-हेमशब्दानुशासन' के सूत्र 'समानानां तेन दीर्घः' (१. २. १) के हैमप्रकाश में कनकप्रभसूरिकृत 'न्याससारसमुद्धार' से भिन्न मत प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार बहुत स्थलों में उन्होंने पूर्व वैयाकरणों से भिन्न मत का प्रदर्शन कर अपनी व्याकरण-विषयक प्रतिभा का परिचय दिया है।

चन्द्रप्रभा (हेमकौमुदी) :

तपागच्छीय उपाध्याय मेघविजयजी ने 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के सूत्रों पर भट्टोजीदीक्षितरचित सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार प्रक्रियाक्रम से 'चंद्रप्रभा' अपरनाम 'हेमकौमुदी'[2] नामक व्याकरणग्रंथ की वि० सं० १७५७ में आगरे में रचना की है। पुष्पिका में इसको 'बृहत्प्रक्रिया' भी कहा है। इसका ९००० श्लोक-परिमाण है। कर्ता ने अपने शिष्य भानुविजय के लिये इसे बनाया और सौभाग्यविजय एवं मेरुविजय ने दीपावली के दिन इसका संशोधन किया था।

यह ग्रंथ प्रथमा वृत्ति और द्वितीया वृत्ति इन दो विभागों में विभक्त है। 'टादौ स्वरे वा' (१.४.३२) पृ० ४० में 'कीः', 'किरौ' इत्यादि रूपों की साधनिका में पाणिनीय व्याकरण का आधार लिया गया है, सिद्धहेमशब्दानुशासन का नहीं; यह एक दोष माना गया है।

हेमशब्दप्रक्रिया :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर यह छोटा-सा ३५०० श्लोक-परिमाण मध्यम प्रक्रिया-व्याकरणग्रंथ उपाध्याय मेघविजयगणि ने वि० सं० १७५७ के आसपास में बनाया है। इसकी हस्तलिखित प्रति भांडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना में है।

हेमशब्दचन्द्रिका :

उपाध्याय मेघविजयगणि ने सिद्धहेमशब्दानुशासन के आधार पर ६०० श्लोक-प्रमाण यह छोटा-सा ग्रंथ विद्यार्थियों के प्राथमिक प्रवेश के लिए तीन प्रकाशों में अति संक्षेप में बनाया है। यह ग्रंथ मुनि चतुरविजयजी ने संपादित करके

---

१. यह ग्रन्थ दो भागों में बंबई से प्रकाशित हुआ है।

२. जैन श्रेयस्कर मंडल, मेहसाना से यह ग्रंथ छप गया है।

प्रकाशित किया है। भांडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना में इसकी सं० १७५५ में लिखित प्रति है।

उपाध्याय मेघविजयगणि ने भिन्न-भिन्न विषयों पर अनेकों ग्रंथ लिखे हैं :

१ दिग्विजय महाकाव्य (काव्य)
२ सप्तसंधान महाकाव्य ,,
३ लघु-त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र ,,
४ भविष्यदत्त कथा ,,
५ पञ्चाख्यान ,,
६ चित्रकोश (विज्ञप्तिपत्र) ,,
७ वृत्तमौक्तिक (छन्द)
८ मणिपरीक्षा (न्याय)
९ युक्तिप्रबोध (शास्त्रीय आलोचना)
१० धर्ममञ्जूषा ,,
११ वर्षप्रबोध (मेघमहोदय) (ज्योतिष)
१२ उदयदीपिका ,,
१३ प्रश्नसुन्दरी ,,
१४ हस्तसंजीवन (सामुद्रिक)
१५ रमलशास्त्र (रमल)
१६ बीशयंत्रविधि (यंत्र)
१७ मातृकाप्रसाद (अध्यात्म)
१८ अर्हद्गीता ,,
१९ ब्रह्मबोध ,,
२० तपागच्छपट्टावली
२१ पञ्चतीर्थस्तुति
२२ शिवपुरी-शंखेश्वर पार्श्वनाथस्तोत्र
२३ भक्तामरस्तोत्रटीका
२४ शान्तिनाथचरित्र (नैषधीय समस्यापूर्ति-काव्य)
२५ देवानन्द महाकाव्य (माघ समस्यापूर्ति काव्य)
२६ किरात-समस्या-पूर्ति
२७ मेघदूत-समस्या-लेख
२८-२९ पाणिनीय द्व्याश्रयविज्ञप्तिलेख
३० विजयदेवमाहात्म्य-विवरण
३१ विजयदेव-निर्वाणरास
३२ पार्श्वनाथ-नाममाला
३३ थावच्चाकुमारसज्झाय
३४ सीमन्धरस्वामीस्तवन
३५ चौबीसी (भाषा)
३६ दशमतस्तवन
३७ कुमतिनिवारणहुंडी

हैमप्रक्रिया :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर महेन्द्रसुत वीरसेन ने प्रक्रिया-ग्रंथ की रचना की है।

हैमप्रक्रियाशब्दसमुच्चय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर १५०० श्लोक-प्रमाण एक कृति का उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृ. ३०३ में मिलता है

हेमशब्दसमुच्चय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर 'हेमशब्दसमुच्चय' नामक ४९२ श्लोक-प्रमाण कृति का उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० ४६३ में है।

विभक्ति-विचार :

'विभक्ति-विचार' नामक आंशिक व्याकरणग्रंथ की १६ पत्रों की प्रति जैसलमेर के भंडार में विद्यमान है। प्रति में यह ग्रंथ वि० सं० १२०६ में आचार्य जिनचंद्रसूरि के शिष्य जिनमतसाधु द्वारा लिखा गया, ऐसा उल्लेख है। इसके कर्ता के विषय में पं० हीरालाल हंसराज के सूची-पत्र में आचार्य जिनपतिसूरि का उल्लेख है परन्तु इतिहास से पता लगता है कि आचार्य जिनपतिसूरि का जन्म वि० सं० १२१० में हुआ था इसलिए इसके कर्ता ये ही आचार्य हों यह संभव नहीं है।

धातुरत्नाकर :

खरतरगच्छीय साधुसुंदरगणि ने वि० सं० १६८० में 'धातुरत्नाकर' नामक २१०० श्लोक-प्रमाण ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में संस्कृत के प्रायः सब धातुओं का संग्रह किया गया है।

इस ग्रंथ के कर्ता के उक्तिरत्नाकर, शब्दरत्नाकर और जैसलमेर के किले में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ तीर्थंकर की स्तुति भी जो वि० सं० १६८३ में रची हुई है, उपलब्ध होते हैं।

धातुरत्नाकर-वृत्ति :

'धातुरत्नाकर' जो २१०० श्लोक-प्रमाण है, उस पर साधुसुन्दरगणि ने सं० १६८० में 'क्रियाकल्पलता' नाम की स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है।

रचनाकार ने लिखा है :

> तच्छिष्योऽस्ति च साधुसुन्दर इति ख्यातोऽद्वितीयो भुवि
> तेनैषा विवृतिः कृता मतिमता प्रीतिप्रदा सादरम्।
> स्वोपज्ञोत्तमधातुपाठविलसत्सद्धातुरत्नाकरः
> ग्रन्थस्यास्य विशिष्टशाब्दिकमतान्यालोक्य संक्षेपतः॥

इसमें धातुओं के रूपाख्यानों का विशद आलेखन है। इसका ग्रंथ-परिमाण २१-२२ हजार श्लोक-प्रमाण है।[1]

---

१. इसकी ५४२ पत्रों की हस्तलिखित प्रति कलकत्ता की गुलाबकुमारी लायब्रेरी में मंडल सं० १८, प्रति सं० १७१ में है।

क्रियाकलाप :

भावडारगच्छीय आचार्य जिनदेवसूरि ने पाणिनीय व्याकरण के धातुओं पर 'क्रियाकलाप' नामक एक कृति की रचना की है। वे आचार्य भावदेवसूरि के गुरु थे, जिन्होंने वि० सं० १४१२ में 'पार्श्वनाथचरित्र' की रचना की है, अतः आचार्य जिनदेवसूरि ने वि० सं० १४१२ के पूर्व या आस-पास के समय में इस कृति की रचना की होगी ऐसा अनुमान होता है।

इस ग्रंथ में 'भ्वादि' धातुओं से लेकर 'चुरादि' गण तक के धातुओं की साधनिका के संबंध में विवेचन किया गया है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं है।[1]

अनिट्कारिका :

व्याकरण के धातुओं संबंधी यह ग्रंथ अज्ञातकर्तृक है। इसकी प्रति लींबडी के भंडार में विद्यमान है।

अनिट्कारिका-टीका :

'अनिट्कारिका' पर किसी अज्ञात विद्वान् ने टीका लिखी है, जिसकी प्रति लींबडी के भंडार में मौजूद है।

अनिट्कारिका-विवरण :

खरतरगच्छीय क्षमाकल्याण मुनि ने अनिट्कारिका पर 'विवरण' की रचना की है। इसका उल्लेख पिटर्सन की रिपोर्ट सं० ४, प्रति सं० ४७८ में है।

उणादिनाममाला :

मुनि शुभशीलगणि ने 'उणादिनाममाला' नामक ग्रंथ की रचना १७ वीं शती में की है। इसमें उणादि प्रत्ययों से बने शब्दों का संग्रह है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

समासप्रकरण :

आचार्य जयानन्दसूरि ने 'समासप्रकरण' नामक एक कृति बनाई है। इसमें समासों का विवेचन है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

---

१. इसकी वि० सं० १५२० में लिखित ८१ पत्रों की प्रति (सं० १९२१) लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में है।

पट्कारकविवरण :

पं० अमरचन्द्र नामक मुनि ने 'पट्कारकविवरण' नामक कृति की रचना की है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

शब्दार्थचन्द्रिकोद्धार :

मुनि हर्षविजयगणि ने 'शब्दार्थचन्द्रिकोद्धार' नामक व्याकरण-विषयक ग्रंथ की रचना की है, जिसकी ६ पत्रों की प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में प्राप्त है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

रुचादिगणविवरण :

मुनि सुमतिकल्लोल ने 'रुचादिगणविवरण' नामक ग्रंथ रुचादिगण के धातुओं के बारे में रचा है। इसकी ५ पत्रों की प्रति मिलती है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

उणादिगणसूत्र :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने व्याकरण के परिशिष्टस्वरूप 'उणादिगणसूत्र'[1] की रचना वि० १३ वीं शताब्दी में की है। मूल प्रकृति (धातु) में उणादि प्रत्यय लगाकर नाम (शब्द) बनाने का विधान इसमें बताया गया है। इसमें कुल १००६ सूत्र हैं।

कई शब्द प्राकृत और देश्य भाषाओं से सीधे संस्कृत बनाये गये हैं।

उणादिगणसूत्र-वृत्ति :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने 'उणादिगणसूत्र' पर स्वोपज्ञ वृत्ति रची है।

विश्रान्तविद्याधरन्यास :

वामन नामक जैनेतर विद्वान् ने 'विश्रान्तविद्याधर' व्याकरण की रचना की है, जो आज उपलब्ध नहीं है; परंतु उसका उल्लेख वर्धमानसूरि-रचित 'गणरत्नमहोदधि' (पृ० ७२, ९२) में, और आचार्य हेमचन्द्रसूरिकृत 'सिद्धहेमचंद्रशब्दानुशासन' (१. ४. ५२) के स्वोपज्ञ न्यास में मिलता है।

---

१. यह ग्रंथ 'सिद्धहेमचन्द्रव्याकरण-बृहद्वृत्ति', जो सेठ मनसुखभाई भगुभाई, अहमदाबाद की ओर से छपी है, में संमिलित है। प्रो० जे० कीर्स्ट ने इसका संपादन कर अलग से वृत्ति के साथ प्रकाशित किया है।

इस व्याकरण पर मल्लवादी नामक श्वेतांबर जैनाचार्य ने न्यास ग्रंथ की रचना की ऐसा उल्लेख प्रभावकचरितकार ने किया है।[1] आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' की स्वोपज्ञ टीका में उस न्यास में से उद्धरण दिये हैं,[2] और 'गणरत्नमहोदधि' (पृ० ७१, ९२) में भी 'विश्रान्तविद्याधरन्यास' का उल्लेख मिलता है।

श्वेतांबर जैनसंघ में मल्लवादी नाम के दो आचार्य हुए हैं : एक पांचवीं सदी में और दूसरे दसवीं सदी में। इन दो में से किस मल्लवादी ने 'न्यास' की रचना की यह शोधनीय है। यह न्यास-ग्रंथ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है इसलिये इसके विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

पांचवीं सदी में हुए मल्लवादी ने अगर इसकी रचना की हो तो उनका दूसरा दार्शनिक ग्रंथ है 'द्वादशारनयचक्र'। यह ग्रंथ वि० सं० ४१४ में बनाया गया।

पदव्यवस्थासूत्रकारिका :

विमलकीर्ति नामक जैन मुनि ने पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के अनुसार संस्कृत धातुओं के पद जानने के लिये 'पदव्यवस्थाकारिका' नाम से सूत्रों को पद्यरूप में ग्रथित किया है। इसके कर्ता ने खुदको विद्वान् बताया है। इसकी टीका वि० सं० १६८१ में रची गई इसलिये उसके पहिले इस ग्रंथ की रचना हुई है।

पदव्यवस्थाकारिका-टीका :

'पदव्यवस्थासूत्रकारिका' पर मुनि उदयकीर्ति ने ३३०० श्लोक-प्रमाण टीका की रचना की है। मुनि उदयकीर्ति खरतरगच्छीय साधुकीर्ति के शिष्य थे। उन्होंने बालजनों के बोध के लिये वि० सं० १६८१ में इस टीका-ग्रंथ की रचना की है।

भांडारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, पूना के हस्तलिखित संग्रह की सूची, भा० २, खण्ड १, पृ० १९२–१९३ में दिये हुए परिचय के मुताबिक इस ग्रंथ की मूलकारिकासहित प्रति वि० सं० १७१३ में सुखसागरगणि के शिष्य मुनि समयहर्ष के लिये लिखी गई थी ऐसा अन्तिम पुष्पिका से ज्ञात होता है।

कर्ता के अन्य ग्रंथों के बारे में कुछ जानने में नहीं आया।

---

१. शब्दशास्त्रे च विश्रान्तविद्याधरवराभिदे।
न्यासं चक्रेऽल्पधीवृन्दबोधनाय स्फुटार्थकम् ॥—मल्लवादिचरित।

२. संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास, भा० १, पृ० ४३२.

कातन्त्रव्याकरण :

'कातन्त्रव्याकरण' की भी एक परम्परा है। इसकी रचना में अनेक विशेषताएँ हैं और परिभाषाएँ भी पाणिनि से बहुत कुछ स्वतंत्र हैं। यह 'कातन्त्र व्याकरण' पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इस प्रकार दो भागों में रचा गया है। तद्धित तक का भाग पूर्वार्ध और कृदन्त प्रकरणरूप भाग उत्तरार्ध है। पूर्वभाग के कर्ता सर्ववर्मन् थे ऐसा विद्वानों का मन्तव्य है; वस्तुतः सर्ववर्मन् उसकी बृहद्वृत्ति के कर्ता थे। अनुश्रुतियों के अनुसार तो 'कातंत्र' की रचना महाराजा सातवाहन के समय में हुई थी।[1] परंतु यह व्याकरण उससे भी प्राचीन है ऐसा युधिष्ठिर मीमांसक का मंतव्य है।[2] 'कातन्त्र-वृत्ति' के कर्ता दुर्गसिंह के कथनानुसार कृदन्त भाग के कर्ता कात्यायन थे।

सोमदेव के 'कथासरित्सागर' के अनुसार सर्ववर्मन् अजैन सिद्ध होते हैं परंतु भावसेन त्रैविद्य 'रूपमाला' में इनको जैन बताते हैं। इस विषय में शोध करना आवश्यक है।

इस व्याकरण में ८८५ सूत्र हैं, कृदन्त के सूत्रों के साथ कुल १४०० सूत्र हैं। ग्रन्थ का प्रयोजन बताते हुए इस प्रकार कहा गया है :

> 'छान्दसः स्वल्पमतयः शब्दान्तररताश्च ये।
> ईश्वरा व्याधिनिरतास्तथाऽऽलस्ययुताश्च ये॥
> वणिक्-सस्यादिसंसक्ता लोकयात्रादिषु स्थिताः।
> तेषां क्षिप्रप्रबोधार्थ........................॥

यह प्रतिज्ञा यथार्थ मालूम होती है। इतना छोटा, सरल और जल्दी से कंठस्थ हो सके ऐसा व्याकरण लोकप्रिय बने इसमें आश्चर्य नहीं है। बौद्ध साधुओं ने इसका खूब उपयोग किया, इससे इसका प्रचार भारत के बाहर भी हुआ। 'कातंत्र' का धातुपाठ तिब्बती भाषा में आज भी सुलभ है।

आजकल इसका पठन-पाठन बंगाल तक ही सीमित है। इसका अपर नाम 'कलाप' और 'कौमार' भी है। 'अग्निपुराण' और 'गरुडपुराण' में इसे कुमार—

---

१. Katantra must have been written during the close of the Andhras in 3rd century A. D.—Muthic Journal, Jan. 1928.

२. 'कल्याण' हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ६५९.

स्कन्द-प्रोक्त कहा है। इसकी सबसे प्राचीन टीका दुर्गसिंह की मिलती है। 'काशिका' वृत्ति से यह प्राचीन है, चूँकि काशिका में 'दुर्गवृत्ति' का खंडन किया है। इस व्याकरण पर अनेक वैयाकरणों ने टीकाएँ लिखी हैं। जैनाचार्यों ने भी बहुत-सी वृत्तियों का निर्माण किया है।

दुर्गपदप्रबोध-टीका :

'कातन्त्रव्याकरण' पर आचार्य जिनप्रबोधसूरि ने वि० सं० १३२८ में 'दुर्गपद-प्रबोध' नामक टीकाग्रंथ की रचना की है। जैसलमेर और पाटन के भंडार में इस ग्रन्थ की प्रतियाँ हैं।

'खरतरगच्छपट्टावली' से ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ के कर्ता का जन्म वि० सं० १२८५, दीक्षा सं० १२९६, सूरिपद सं० १३३१ (३३), स्वर्गगमन सं० १३४१ में हुआ था। वे आचार्य जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे।

दीक्षा के समय उनका नाम प्रबोधमूर्ति रखा गया था, इसलिये ग्रन्थ के रचना-समय का प्रबोधमूर्ति नाम उल्लिखित है परंतु आचार्य होने के बाद जिन-प्रबोधसूरि नाम रखा गया था। पाटन की प्रति के अन्त में इसका स्पष्टीकरण किया गया है।[1] वि० सं० १३३३ के गिरनार के शिलालेख में जिनप्रबोधसूरि नाम है। वि० सं० १३३४ में विवेकसमुद्रगणि-रचित 'पुण्यसारकथा' का आचार्य जिन-प्रबोधसूरि ने संशोधन किया था। वि० सं० १३५१ में प्रह्लादनपुर में प्रतिष्ठित की हुई इस आचार्य की प्रतिमा स्तंभतीर्थ में है।

दौर्गसिंही-वृत्ति :

'कातन्त्र-व्याकरण' पर रची गई दुर्गसिंह की वृत्ति पर आचार्य प्रद्युम्नसूरि ने ३००० श्लोक-प्रमाण 'दौर्गसिंही-वृत्ति' की रचना वि० सं० १३६९ में की है। इसकी प्रति बीकानेर के भंडार में है।

कातन्त्रोत्तरव्याकरण :

कातन्त्र-व्याकरण की महत्ता बढ़ाने के लिये विजयानन्द नामक विद्वान् ने 'कातन्त्रोत्तरव्याकरण' की रचना की है, जिसका दूसरा नाम है विद्यानन्द।[2] इसकी रचना वि० सं० १२०८ से पूर्व हुई है।

---

१. सामान्यावस्थायां प्रबोधमूर्तिगणिनामधेयैः श्रीजिनेश्वरसूरिपट्टालङ्कारैः श्री-जिनप्रबोधसूरिभिर्विरचितो दुर्गपदप्रबोधः संपूर्णः।

२. देखिए—संस्कृत व्याकरण-साहित्य का इतिहास, भा० १; पृ० ४०६.

'जिनरत्नकोश' (पृ० ८४) में कातन्त्रोत्तर के सिद्धानन्द, विजयानन्द और विद्यानन्द—ये तीन नाम दिये गये हैं। इसके कर्ता विजयानन्द अपर नाम विद्यानन्दसूरि का उल्लेख है। यह व्याकरण समास-प्रकरण तक ही मिलता है। पिटर्सन की चौथी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इस व्याकरण की ताड़पत्रीय प्रतियां जैसलमेर-भंडार में हैं।

'जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह' (पृ० १०६) में इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार है : इति विजयानन्दविरचिते कातन्त्रोत्तरे विद्यानन्दापरनाम्नि तद्धित-प्रकरणं समाप्तम्, सं० १२०८।

कातन्त्रविस्तर :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर रचे गये 'कातन्त्रविस्तर' ग्रन्थ के कर्ता वर्धमान हैं। आरा के विद्याभवन में इसकी अपूर्ण हस्तलिखित प्रति है, जो मूडबिद्री के जैनमठ के ग्रंथ-भंडार की एकमात्र तालपत्रीय प्रति से नकल की गई है। इसकी रचना वि० सं० १४५८ से पूर्व मानी जाती है।

स्व० बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर ने 'जैन सिद्धांत-भास्कर' भा० २ में 'धार्मिक उदारता' शीर्षक अपने लेख में इन वर्धमान को श्वेतांबर बताया है। यह किस आधार से लिखा है, इसका निर्देश उन्होंने नहीं किया।

गुजरात के राजा कर्णदेव के पुरोहित के एक शिष्य का नाम वर्धमान था, जिन्होंने केदार भट्ट के 'वृत्तरत्नाकर' पर टीका ग्रन्थ की रचना की थी। ग्रन्थ की समाप्ति में इस प्रकार लिखा है : 'इति श्रीमत्कर्णदेवोपाध्यायश्रीवर्धमान-विरचिते कातन्त्रविस्तरे……'।

चुरु के यति ऋद्धिकरणजी के भंडार में इसकी प्रति है।

बालबोध-व्याकरण :

'जैन ग्रन्थावली' (पृ० २९७) के अनुसार अञ्चलगच्छीय मेरुतुंगसूरि ने कातन्त्र-सूत्रों पर इस 'बालबोधव्याकरण' की रचना वि० सं० १४४४ में ८ अध्यायों में २७५ श्लोक-प्रमाण की है। इसमें कहा गया है कि वि० १५ वीं शती में विद्यमान मेरुतुंग ने ४८० और ५७९ श्लोक-प्रमाण एक-एक वृत्ति की रचना की है। उनमें प्रथम वृत्ति छः पादात्मक है। उन्होंने २११८ श्लोक-प्रमाण 'चतुष्क-टिप्पण' और ७६७ श्लोक-प्रमाण 'कृद्वृत्ति-टिप्पण' की रचना भी की है। तदुपरांत १७३४ श्लोक-प्रमाण 'आख्यातवृत्ति-ढुंढिका' और २२९ श्लोक-प्रमाण 'प्राकृत-वृत्ति' की रचना की है। इन सातों ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियां पाटन के भंडार में विद्यमान हैं।

कातन्त्रदीपक-वृत्ति :

'कातन्त्रव्याकरण' पर मुनीश्वरसूरि के शिष्य हर्षचन्द्र ने 'कातन्त्रदीपक' नाम से वृत्ति की रचना की है। मंगलाचरण जैन है, कर्ता हर्षचन्द्र है या अन्य कोई यह निश्चित रूप से जानने में नहीं आया। इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर स्टेट लायब्रेरी में है।

कातन्त्रभूषण :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर आचार्य धर्मघोषसूरि ने २४००० श्लोक-प्रमाण 'कातन्त्रभूषण' नामक व्याकरणग्रन्थ की रचना की है, ऐसा 'बृहट्टिप्पणिका' में उल्लेख है।

वृत्तित्रयनिबंध :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर आचार्य राजशेखरसूरि ने 'वृत्तित्रयनिबंध' नामक ग्रन्थ की रचना की है, ऐसा उल्लेख 'बृहट्टिप्पणिका' में है।

कातन्त्रवृत्ति-पञ्जिका :

'कातन्त्रव्याकरण' की 'कातन्त्रवृत्ति' पर आचार्य जिनेश्वरसूरि के शिष्य सोमकीर्ति ने पञ्जिका की रचना की है। इसकी प्रति जैसलमेर के भंडार में है।

कातन्त्ररूपमाला :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर दिगम्बर भावसेन त्रैविद्य ने 'कातन्त्र-रूपमाला' की रचना की है।[1]

कातन्त्ररूपमाला-लघुवृत्ति :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर रची गई 'कातन्त्र-रूपमाला' पर 'लघु-वृत्ति' की रचना किसी दिगंबर मुनि ने की है। इसका उल्लेख 'दिगंबर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' पृ० ३० में है।

पृथ्वीचंद्रसूरि नामक किसी जैनाचार्य ने भी इस पर टीका का निर्माण किया है। इनके बारे में अधिक ज्ञात नहीं हुआ है।

१. कातन्त्रविभ्रम-टीका :

'हैमविभ्रम' में छपी हुई मूल २१ कारिकाओं पर आचार्य जिनप्रभसूरि ने योगिनीपुर (देहली) में कायस्थ खेतल की विनती से इस टीका की रचना वि० सं० १३५२ में की है।

---

१. यह ग्रंथ जैन सिद्धांतभवन, आरा से प्रकाशित है।

मूल कारिका के कर्ता कौन थे, यह ज्ञात नहीं हुआ है। कारिकाओं में व्याकरण के विषय में भ्रम उत्पन्न करने वाले कई प्रयोगों को निबद्ध किया गया है। टीकाकार आचार्य जिनप्रभसूरि ने 'कातंत्र' के सूत्रों द्वारा प्रयोगों को सिद्ध करके भ्रम निरास करने का प्रयत्न किया है।

आचार्य जिनप्रभसूरि लघुखरतरगच्छ के प्रवर्तक आचार्य जिनसिंहसूरि के शिष्य थे। वे असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान् थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की है। उनका यह अभिग्रह था कि प्रतिदिन एक स्तोत्र की रचना करके ही निरवद्य आहार ग्रहण करूँगा। इनके यमक, श्लेष, चित्र, छन्दविशेष आदि नई-नई रचनाशैली से रचे हुए कई स्तोत्र प्राप्त हैं। इन्होंने इस प्रकार ७०० स्तोत्र तपागच्छीय आचार्य सोमतिलकसूरि को भेंट किये थे। इनके रचे हुए ग्रंथों और कुछ स्तोत्रों के नाम इस प्रकार हैं :

गौतमस्तोत्र,
चतुर्विंशतिजिनस्तुति,
चतुर्विंशतिजिनस्तव,
जिनराजस्तव
द्वयक्षरनेमिस्तव,
पञ्चपरमेष्ठिस्तव,
पार्श्वस्तव,
वीरस्तव,
शारदास्तोत्र,
सर्वज्ञभक्तिस्तव,
सिद्धान्तस्तव,
ज्ञानप्रकाश,
धर्माधर्मविचार,
परमसुखद्वात्रिंशिका
प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंशकुलक
चतुर्विधभावनाकुलक
चैत्यपरिपाटी,
तपोटमतकुट्टन,
नर्मदासुन्दरीसंधि,
नेमिनाथजन्माभिषेक,
मुनिसुव्रतजन्माभिषेक,
षट्पञ्चाशद्दिक्कुमारिकाभिषेक
नेमिनाथरास,
प्रायश्चित्तविधान,
युगादिजिनचरित्रकुलक,
स्थूलभद्रफाग,
अनेक-प्रबन्ध-अनुयोग-चतुष्कोपेतगाथा,
विविधतीर्थकल्प (सं० १३२७ से १३८९ तक),
आवश्यकसूत्रावचूरि (षडावश्यकटीका),
सूरिमन्त्रप्रदेशविवरण,
द्वयाश्रयमहाकाव्य (श्रेणिकचरित) (सं० १३५६),
विधिप्रपा (सामाचारी) (सं० १३६३),
संदेहविषौषधि (कल्पसूत्रवृत्ति) (सं० १३६४),
साधुप्रतिक्रमणसूत्र-वृत्ति,

अजितशान्ति-उपसर्गहरस्तोत्र, भयहरस्तोत्र आदि सतरमरण-टीका (सं० १३६५) ।

अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका की स्याद्वादमञ्जरी नामक टीका-ग्रन्थ की रचना में आचार्य जिनप्रभसूरि ने सहायता की थी। सं० १४०५ में 'प्रबन्धकोश' के कर्ता राजशेखरसूरि की 'न्यायकन्दली' में और रुद्रपल्लीय संघतिलकसूरि की सं० १४२२ में रचित 'सम्यक्त्वसप्तति-वृत्ति' में भी सहायता की थी।

दिल्ली का साहिमहम्मद आचार्य जिनप्रभसूरि को गुरु मानता था।

२. कातन्त्रविभ्रम-टीका :

दूसरी 'कातन्त्रविभ्रम-टीका' चारित्रसिंह नामक मुनि ने वि० सं० १६३५ में रची है। इसकी प्रति जैसलमेर-भंडार में है। कर्ता के विषय में कुछ ज्ञात नहीं हुआ है।

कातन्त्रव्याकरण पर इनके अलावा त्रिलोचनदासकृत 'वृत्तिविवरणपञ्जिका', गाल्हणकृत 'चतुष्कवृत्ति', मोक्षेश्वरकृत 'आख्यातवृत्ति' आदि टीकाएँ भी प्राप्त हैं। 'कालापकविशेषव्याख्यान' भी मिलता है। एक 'कौमारसमुच्चय' नाम की ३१०० श्लोकप्रमाण पद्यात्मक टीका भी मिलती है।

सारस्वत-व्याकरण :

'*सारस्वत-व्याकरण*' के रचयिता का नाम है अनुभूतिस्वरूपाचार्य। वे कब हुए यह निश्चित नहीं है। अनुमान है कि वे करीब १५ वीं शताब्दी में हुए थे। जैनेतर होने पर भी जैनों में इस व्याकरण का पठन-पाठन विशेष होता रहा है, यही इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। इसमें कुल ७०० सूत्र हैं। रचना सरल और सहजगम्य है। इस पर कई जैन विद्वानों ने टीका-ग्रंथों की रचना की है। यहां २३ जैन विद्वानों की टीकाओं का परिचय दिया जा रहा है।

सारस्वतमण्डन :

श्रीमालज्ञातीय मंत्री मंडन ने भिन्न-भिन्न विषयों पर मंडनान्तसंज्ञक कई ग्रंथों की रचना की है। इनमें 'सारस्वतमण्डन' नाम से 'सारस्वत-व्याकरण' पर एक टीका की रचना १५ वीं शताब्दी में की है।[1]

---

१. इस ग्रंथ की प्रतियां बीकानेर, बालोतरा और पाटन के भंडारों में हैं।

यशोनन्दिनी :

'सारस्वतव्याकरण' पर दिगंबर मुनि धर्मभूषण के शिष्य यशोनन्दी नामक मुनि ने अपने नाम से ही 'यशोनन्दिनी'[1] नामक टीका की रचना की है। रचना-समय ज्ञात नहीं है। कर्ता ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

राजद्राजविराजमानचरणश्रीधर्मसद्भूषण- ।
स्तत्पट्टोदयभूधरद्युमणिना श्रीमद्यशोनन्दिना ॥

विद्वच्चिन्तामणि :

'सारस्वतव्याकरण' पर अंचलगच्छीय कल्याणसागर के शिष्य मुनि विनयसागरसूरि ने 'विद्वच्चिन्तामणि' नामक पद्यबद्ध टीका-ग्रन्थ की रचना की है। इसमें कर्ता ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

श्रीविधिपक्षगच्छेशाः सूरिकल्याणसागराः ।
तेषां शिष्यैर्वराचार्यैः सूरिविनयसागरैः ॥ २४ ॥
सारस्वतस्य सूत्राणां पद्यबन्धैर्विनिर्मितः ।
विद्वच्चिन्तामणिग्रन्थः कण्ठपाठस्य हेतवे ॥ २५ ॥

अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में इसकी वि. सं. १८३७ में लिखित ५ पत्रों की प्रति है।

दीपिका (सारस्वतव्याकरण-टीका) :

'सारस्वतव्याकरण' पर विनयसुन्दर के शिष्य मेघरत्न ने वि० सं० १५३६ में 'दीपिका' नामक वृत्ति की रचना की है, इसे कहीं 'मेघीवृत्ति' भी कहा है। इन्होंने अपना नाम इस प्रकार बताया है :

नत्वा पार्श्वं गुरुमपि तथा मेघरत्नाभिधोऽहम् ।
टीकां कुर्वे विमलमनसं भारतीप्रक्रियां ताम् ॥

इस ग्रन्थ की वि० सं० १८८६ में लिखित १६२ पत्रों की प्रति (सं० ५९७८) और १७ वीं सदी में लिखी हुई ६८ पत्रों की प्रति (सं० ५९७९) अहमदाबाद-स्थित लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

---

१. इसकी वि० सं० १६९५ में लिखित ३० पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के भंडार में है।

सारस्वतरूपमाला :

'सारस्वतव्याकरण' पर पद्मसुन्दरगणि ने 'सारस्वतरूपमाला' नामक कृति बनाई है। इसमें धातुओं के रूप बताये हैं। इस विषय में ग्रन्थकार ने स्वयं लिखा है :

सारस्वतक्रियारूपमाला श्रीपद्मसुन्दरैः।
संदृब्धाऽलंकरोत्वेषा सुधिया कण्ठकन्दली ॥

अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में इसकी वि० सं० १७४० में लिखित ५ पत्रों की प्रति है।

क्रियाचन्द्रिका :

'सारस्वतव्याकरण' पर खरतरगच्छीय गुणरत्न ने वि० सं० १६४१ में 'क्रियाचन्द्रिका' नामक वृत्ति की रचना की है, जिसकी प्रति बीकानेर के भवन-भक्ति भंडार में है।

रूपरत्नमाला :

'सारस्वतव्याकरण' पर तपागच्छीय भानुमेरु के शिष्य मुनि नयसुन्दर ने वि० सं० १७७६ में 'रूपरत्नमाला' नामक प्रयोगों की साधनिकारूप रचना १४००० श्लोक-प्रमाण की है। इसकी एक प्रति बीकानेर के कृपाचन्द्रसूरि ज्ञान-भंडार में है। दूसरी प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है। इसके अन्त में ४० श्लोकों की प्रशस्ति है। उसमें उन्होंने इस प्रकार निर्देश किया है :

प्रथिता नयसुन्दर इति नाम्ना वाचकवरेण च तस्याम्।
सारस्वतस्थितानां सूत्राणां वार्तिकं त्वलिखत् ॥ ३७ ॥
श्रीसिद्धहेम-पाणिनिसम्मतिमाधाय सार्थकाः लिखिताः।
ये साधवः प्रयोगास्ते शिशुहितहेतवे सन्तु ॥ ३८ ॥
गुहवक्त्र-हयर्ष्विन्दु (१७७६) प्रमितेऽब्दे शुक्लतिथिराकायाम्।
सद्रूपरत्नमाला समर्थिता शुद्धपुष्यार्के ॥ ३९ ॥

धातुपाठ-धातुतरङ्गिणी :

'सारस्वतव्याकरण' संबंधी 'धातुपाठ' की रचना नागोरीतपागच्छीय आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने की है और उसपर 'धातुतरंगिणी' नाम से स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना भी उन्होंने की है। ग्रन्थकार ने लिखा है :

न्यायरत्नावली :

'सारस्वत-व्याकरण' पर खरतरगच्छीय आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य दयारत्न मुनि ने इसमें प्रयुक्त न्यायों पर 'न्यायरत्नावली' नामक विवरण वि. सं. १६२६ में लिखा है जिसकी वि० सं० १७३७ में लिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

पंचसंधिटीका :

'सारस्वत-व्याकरण' पर सोमशील नामक मुनि ने 'पंचसंधि-टीका' की रचना की है। समय ज्ञात नहीं है। इसकी प्रति पाटन के भंडार में है।

टीका :

'सारस्वत-व्याकरण' पर सत्यप्रबोध मुनि ने एक टीका ग्रन्थ की रचना की है। इसका समय ज्ञात नहीं है। इसकी प्रतियां पाटन और लींबड़ी के भंडारों में हैं।

शब्दप्रक्रियासाधनी-सरलाभाषाटीका :

'सारस्वतव्याकरण' पर आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि ने २० वीं शताब्दी में 'शब्दप्रक्रियासाधनीसरलाभाषाटीका' नामक टीकाग्रन्थ की रचना की है, जिसका उल्लेख उनके चरितलेखों में प्राप्त होता है।

सिद्धान्तचन्द्रिका-व्याकरण :

'सिद्धान्तचन्द्रिका-व्याकरण' के मूल रचयिता रामचन्द्राश्रम हैं। वे कब हुए, यह अज्ञात है। जैनेतरकृत व्याकरण होने पर भी कई जैन विद्वानों ने इस पर वृत्तियाँ रची हैं।

सिद्धान्तचन्द्रिका-टीका :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' व्याकरण पर आचार्य जिनरत्नसूरि ने टीका की रचना की है। यह टीका छप चुकी है।

वृत्ति :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' व्याकरण पर खरतरगच्छीय कीर्तिसूरि शाखा के सदानन्द मुनि ने वि० सं० १७९८ में वृत्ति की रचना की है जो छप चुकी है।

सुबोधिनी :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' पर खरतरगच्छीय रूपचन्द्रजी ने १८ वीं शती में 'सुबोधिनी-टीका' (३४९४ श्लोकात्मक) की रचना की है, जिसकी प्रति बीकानेर के एक भंडार में है।

वृत्ति :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' व्याकरण पर खरतरगच्छीय मुनि विजयवर्धन के शिष्य ज्ञानतिलक ने १८ वीं शताब्दी में वृत्ति की रचना की है, जिसकी प्रतियाँ बीकानेर के महिमाभक्ति भंडार और अबीरजी के भंडार में हैं।

अनिट्कारिका-अवचूरि :

श्री क्षमामाणिक्य मुनि ने 'अनिट्कारिका' पर १८ वीं शताब्दी में 'अवचूरि' की रचना की है। इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर के श्रीपूज्यजी के भंडार में है।

अनिट्कारिका-स्वोपज्ञवृत्ति :

नागपुरीय तपागच्छ के हर्षकीर्तिसूरि ने १७ वीं शताब्दी में 'अनिट्कारिका' नामक ग्रंथ की रचना वि० सं० १६६२ में की है और उस पर वृत्ति की रचना सं० १६६९ में की है। उसकी प्रति बीकानेर के दानसागर भंडार में है।

भूधातु-वृत्ति :

खरतरगच्छीय क्षमाकल्याण मुनि ने वि० सं० १८२८ में 'भूधातु-वृत्ति' की रचना की है। उसकी हस्तलिखित प्रति राजनगर के महिमाभक्ति भंडार में है।

मुग्धावबोध-औक्तिक :

तपागच्छीय आचार्य देवसुन्दरसूरि के शिष्य कुलमण्डनसूरि ने 'मुग्धावबोध-औक्तिक' नामक कृति की रचना १५ वीं शताब्दी में की है। कुलमण्डनसूरि का जन्म वि० सं० १४०९ में और स्वर्गवास सं० १४५५ में हुआ था। उसी के दरमियान इस ग्रंथ की रचना हुई है।

गुजराती भाषा द्वारा संस्कृत का शिक्षण देने का प्रयास जिसमें हो वैसी रचनाएँ 'औक्तिक' नाम से कही जाती हैं।

इस औक्तिक में ६ प्रकरण केवल संस्कृत में हैं। प्रथम, द्वितीय, सातवें और आठवें प्रकरणों में सूत्र और कारिकाएँ संस्कृत में हैं और विवेचन प्राकृत याने जूनी गुजराती में। तीसरा, चौथा, पाँचवां, छठा और नवां प्रकरण जूनी गुजराती

में है। नाम की विभक्तियों के उदाहरणार्थ जयानंदमुनिरचित 'सर्वजिनसाधारण-स्तोत्र' दिया गया है।

संस्कृत उक्ति याने बोलने की रीति के नियम इस व्याकरण में दिये गये हैं। कर्ता, कर्म और भावी उक्तियों का इसमें मुख्यतया विवेचन किया गया है इसलिये इसे औक्तिक नाम दिया गया है।

'मुग्धावबोध-औक्तिक' में विभक्तिविचार, कृदंतविचार, उक्तिभेद और शब्दों का संग्रह है। 'प्राचीन गुजराती गद्यसंदर्भ' पृ० १७२–२०४ में यह छपा है।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं:

१. विचारामृतसंग्रह (रचना वि० सं० १४४३)
२. सिद्धान्तालापकोद्धार
३. कायस्थितिस्तोत्र
४. 'विश्वश्रीद्ध' स्तव (इसमें अष्टादशचक्रविभूषित वीरस्तव है।)
५. 'गरीयोगुण' स्तव (इसको पंचजिनहारबंधस्तव भी कहते हैं।)
६. पर्युषणाकल्प-अवचूर्णि
७. प्रतिक्रमणसूत्र-अवचूर्णि
८. प्रज्ञापना-तृतीयपदसंग्रहणी

बालशिक्षा :

श्रीमाल ठक्कुर कूरसिंह के पुत्र संग्रामसिंह ने 'कातन्त्रव्याकरण' का बोध कराने के हेतु 'बालशिक्षा' नामक औक्तिक की रचना वि० सं० १३३६ में की थी।[1]

वाक्यप्रकाश :

बृहत्तपागच्छीय रत्नसिंहसूरि के शिष्य उदयधर्म ने वि० सं० १५०७ में 'वाक्यप्रकाश' नामक औक्तिक की रचना सिद्धपुर में की है। इसमें १२८ पद्य हैं।

इसका उद्देश्य गुजराती द्वारा संस्कृत भाषा का व्याकरण सिखाने का है। इसलिए यहाँ कई पद्य गुजराती में देकर उसके साथ संस्कृत में अनुवाद

---

१. इस ग्रंथ का कुछ संदर्भ 'पुरातत्त्व' (पु० ३, अंक १, पृ० ४०-५२) में पं० लालचन्द्र गांधी के लेख में छपा है। यह ग्रंथ अभी अप्रकाशित है।

दिया गया है। कृति का आरंभ 'प्राध्वर' और 'वक्र' इन उक्ति के दो प्रकारों और उपप्रकारों से किया गया है। कर्तरि और कर्मणि को गिनाकर उदाहरण दिये गए हैं। इसके बाद गणज, नामज और सौत्र (कण्डवादि)—ये तीन प्रकार धातु के बताये हैं। परस्मैपदी धातु के तीन भेदों का निर्देश है। 'वर्तमान' वगैरह १० विभक्तियों, तद्धित प्रत्यय और समास की जानकारी दी गई है।

इन्होंने 'सन्नमन्निदश' से प्रारम्भ होनेवाले द्वात्रिंशद्दलकमलबंध-महावीरस्तव की रचना की है।[1]

(क) इस 'वाक्यप्रकाश' पर सोमविमल (हेमविमल) सूरि के शिष्य हर्षकुल ने टीका की रचना वि० सं० १५८३ के आसपास की है।

(ख) कीर्तिविजय के शिष्य जिनविजय ने सं० १६९४ में इस पर टीका रची है।

(ग) रत्नसूरि ने पर इस टीका लिखी है, ऐसा 'जैन ग्रंथावली' पृ० ३०७ में उल्लेख है।

(घ) किसी अज्ञात मुनि ने 'श्रीमज्जिनेन्द्रमानम्य' से प्रारंभ होनेवाली टीका की रचना की है।

उक्तिरत्नाकर :

पाठक साधुकीर्ति के शिष्य साधुसुन्दरगणि ने वि० सं० १६८० के आसपास में 'उक्तिरत्नाकर' नामक औक्तिक ग्रंथ की रचना की है। अपनी देशभाषा में प्रचलित देश्य रूपवाले शब्दों के संस्कृत प्रतिरूपों का ज्ञान कराने के हेतु इस ग्रंथ का संकलन किया है।

इसमें षट्कारक विषय का निरूपण है। विद्यार्थियों को विभक्ति-ज्ञान के साथ-साथ कारक के अर्थों का ज्ञान भी इससे हो जाता है। इसमें २४०० देश्य शब्द और उनके संस्कृत प्रतिरूप दिये गये हैं।

साधुसुन्दरगणि ने १. धातुरत्नाकर, २. शब्दरत्नाकर और ३. (जैसलमेर के किले में प्रतिष्ठित) पार्श्वनाथस्तुति की रचना की है।

---

१. जैन स्तोत्र-समुच्चय, पृ० २६५–६६ में यह स्तोत्र छपा है।

उक्तिप्रत्यय :

मुनि धीरसुन्दर ने 'उक्तिप्रत्यय' नामक औक्तिक व्याकरण की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित प्रति सूरत के भंडार में है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

उक्तिव्याकरण :

'उक्तिव्याकरण' नामक ग्रंथ की रचना किसी अज्ञात विद्वान् ने की है। उसकी हस्तलिखित प्रति सूरत के भंडार में है।

प्राकृत-व्याकरण :

स्वाभाविक बोल-चाल की भाषा को 'प्राकृत' कहते हैं।[1] प्रदेशों की अपेक्षा से प्राकृत के अनेक भेद हैं। प्राकृत व्याकरणों से और नाटक तथा साहित्य के ग्रन्थों से उन-उन भेदों का पता लगता है।

भगवान् महावीर और बुद्ध ने बाल, स्त्री, मन्द और मूर्ख लोगों के उपकारार्थ धर्मज्ञान का उपदेश प्राकृत भाषा में ही दिया था। उनके दिये गये उपदेश आगम और त्रिपिटक आदि धर्मग्रन्थों में संग्रहीत हैं।[2] संस्कृत के नाट्य-साहित्य में भी स्त्रियों और सामान्य पात्रों के संवाद प्राकृत भाषा में ही निबद्ध हैं। जैन और बौद्ध साहित्य समझने के लिये और प्रान्तीय भाषाओं का विकास जानने के लिये प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के ज्ञान की नितांत आवश्यकता है। उस आवश्यकता को पूरी करने के लिये प्राचीन आचार्यों ने संस्कृत भाषा में ही प्राकृत भाषा के अनेक ग्रन्थ निर्मित किये हैं। प्राकृत भाषा में कोई व्याकरण-ग्रंथ प्राप्त नहीं है।

प्राकृत भाषा के वैयाकरणों ने अपने पूर्व के वैयाकरणों की शैली को अपनाकर और अपने अनुभूत प्रयोगों को बढ़ाकर व्याकरणों की रचना की है। इन्होंने अपने-अपने प्रदेश की प्राकृत भाषा को महत्त्व देकर जिन व्याकरणग्रन्थों की रचना की है वे आज उपलब्ध हैं।

---

१. सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृतिः, तत्र भवं सैव वा प्राकृतम्।

२. बाल-स्त्री-मूढ-मूर्खाणां नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः॥

जिन जैन विद्वानों ने प्राकृत व्याकरणग्रन्थ निर्माणकर भारतीय साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना अमूल्य योग प्रदान किया है उनके संबंध में यहाँ विचार करेंगे।

प्राकृत भाषा के साथ-साथ अपभ्रंश भाषा का विचार भी यहां आवश्यक जान पड़ता है। प्राकृत का अन्त्य स्वरूप और प्राचीन देशी भाषाओं से सीधा संबंध रखनेवाली भाषा ही अपभ्रंश है। इस भाषा का व्याकरणस्वरूप छठी-सातवीं शताब्दी से ही निश्चित हो चुका था। महाकवि स्वयंभू ने अपभ्रंश भाषा के 'स्वयंभू-व्याकरण' की रचना ८ वीं शताब्दी में की थी जो आज उपलब्ध नहीं है। इस समय से ही अपभ्रंश भाषा में स्वतन्त्र साहित्य का व्यवस्थित निर्माण होते-होते वह विस्तृत और विपुल बनता गया और यह भाषा साहित्यिक भाषा का स्थान प्राप्त कर सकी। इस साहित्य को देखते हुए पुरानी गुजराती, राजस्थानी आदि देशी भाषाओं का इसके साथ निकटतम सम्बन्ध है, ऐसा निःसंशय कह सकते हैं। गुजरात, मारवाड़, मालवा, मेवाड़ आदि प्रदेशों के लोग अपभ्रंश भाषा में ही रुचि रखते थे।[१]

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने समय के प्रवाह को देखकर करीब १२० सूत्रों में 'अपभ्रंश-व्याकरण' की रचना की है, जो उपलब्ध व्याकरणों में विस्तृत और उत्कृष्ट माना गया है।

---

१. गौडोद्याः प्रकृतस्थाः परिचितरुचयः प्राकृते लाटदेश्याः,
सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमरुभुवष्टक्क-भादानकाश्च।
आवन्त्याः पारियात्राः सहदशपुरजैर्भूतभाषां भजन्ते,
यो मध्ये मध्यदेशं निवसति स कविः सर्वभाषानिषण्णः॥

राजशेखर—काव्यमीमांसा, अध्याय ९-१०, पृ० ४८-५१.

पठन्ति लटभं लाटा प्राकृतं संस्कृतद्विषः।
अपभ्रंशेन तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गूर्जराः॥

भोजदेव—सरस्वतीकण्ठाभरण, २-१३.

सुराष्ट्र-त्रवणाद्याश्च पठन्त्यर्पितसौष्ठवम्।
अपभ्रंशवदंशानि ते संस्कृतवचांस्यपि॥

राजशेखर—काव्यमीमांसा, पृ० ३४.

अनुपलब्ध प्राकृत-व्याकरण :

१. दिगंबर आचार्य समन्तभद्र ने 'प्राकृतव्याकरण' की रचना की थी ऐसा उल्लेख मिलता है[1] परन्तु उनका व्याकरण उपलब्ध नहीं हुआ है।

२. धवलाकार दिगंबराचार्य वीरसेन ने अज्ञातकर्तृक पद्यात्मक 'प्राकृत-व्याकरण' के सूत्रों का उल्लेख किया है परन्तु यह व्याकरण भी प्राप्त नहीं हुआ है।

३. श्वेतांबराचार्य देवसुन्दरसूरि ने 'प्राकृत-युक्ति' नामक प्राकृत-व्याकरण की रचना की थी, जिसका उल्लेख 'जैन ग्रंथावली' पृ० ३०७ पर है। यह व्याकरण भी देखने में नहीं आया।

प्राकृतलक्षण :

चण्ड नामक विद्वान् ने 'प्राकृतलक्षण' नाम से तीन और दूसरे मत से चार अध्यायों में प्राकृतव्याकरण की रचना की है, जो उपलब्ध व्याकरणों में संक्षिप्ततम और प्राचीन है। इसमें सब मिलाकर ९९ और दूसरे मत से १०३ सूत्रों में प्राकृत भाषा का विवेचन किया गया है।

आदि में भगवान् वीर को नमस्कार करने से और 'अर्हन्त' (२४, ४६), 'जिनवर' (४८) का उल्लेख होने से चण्ड का जैन होना सिद्ध होता है। चण्ड ने अपने समय के वृद्धमतों का निरीक्षण करके अपने व्याकरण की रचना की है।

प्राकृत शब्दों के तीन रूप—१. तद्भव, २. तत्सम और ३. देश्य सूचित कर लिङ्ग और विभक्तियों का विधान संस्कृतवत् बताया है। चौथे सूत्र में व्यत्यय का निर्देश करके प्रथम पाद के ५ वें सूत्र से ३५ सूत्रों तक संज्ञा और विभक्तियों के रूप बताये हैं। 'अहम्' का 'हउं' आदेश, जो अपभ्रंश का विशिष्ट रूप है, उस समय में प्रचलित था, ऐसा मान सकते हैं। द्वितीय पाद के २९ सूत्रों में स्वरपरिवर्तन, शब्दादेश और अव्ययों का विधान है। तीसरे पाद के ३५ सूत्रों में व्यंजनों के परिवर्तनों का विधान है।

इन तीन पादों में सूत्रसंख्या ९९ होती है जिनमें व्याकरण समाप्त किया गया है। कई प्रतियों में चतुर्थ पाद भी मिलता है, जो चार सूत्रों में है। उसमें

1. A. N. Upadhye: A Prakrit Grammar Attributed to Samantabhadra—Indian Historical Quarterly, Vol. XVII, 1942, pp. 511-516.

अपभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसेनी में होनेवाले वर्णादेशों का विधान इस प्रकार किया है : १. अपभ्रंश में अधोरेफ का लोप नहीं होता है। २. पैशाची में 'र्' और 'स्' के स्थान में 'ल्' और 'न्' का आदेश होता है। ३. मागधी में 'र्' और 'स्' के स्थान में 'ल्' और 'श्' का आदेश होता है। ४. शौरसेनी में 'त्' के स्थान में विकल्प से 'द्' आदेश होता है।

इस प्रकार इस व्याकरण की रचनाशैली का ही बाद के वररुचि, हेमचन्द्राचार्य आदि वैयाकरणों ने अनुसरण किया है। इससे चण्ड को प्राकृत-व्याकरण के रचयिताओं में प्रथम और आदर्श मान सकते हैं।

इस 'प्राकृतलक्षण' के रचना-काल से सम्बन्धित कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है तथापि अन्तःपरीक्षण करते हुए डा० हीरालालजी जैन रचना-काल के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखते हैं :

"प्राकृत सामान्य का जो निरूपण यहाँ पाया जाता है वह अशोक की धर्मलिपियों की भाषा और वररुचि द्वारा 'प्राकृतप्रकाश' में वर्णित प्राकृत के बीच का प्रतीत होता है। वह अधिकांश अश्वघोष व अल्पांश भास के नाटकों में प्रयुक्त प्राकृतों से मिलता हुआ पाया जाता है, क्योंकि इसमें मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यञ्जनों की बहुलता से रक्षा की गई है, और उनमें से प्रथम वर्णों में केवल 'क', 'व', तृतीय वर्णों में 'ग' के लोप का एक सूत्र में विधान किया गया है और इस प्रकार च, ट, त, प वर्णों की शब्द के मध्य में भी रक्षा की प्रवृत्ति सूचित की गई है। इस आधार पर 'प्राकृतलक्षण' का रचना-काल ईसा की दूसरी-तीसरी शती अनुमान करना अनुचित नहीं है।"

प्राकृतलक्षण-वृत्ति :

'प्राकृतलक्षण' पर सूत्रकार चण्ड ने स्वयं वृत्ति की रचना की है। यह ग्रंथ एकाधिक स्थलों से प्रकाशित हुआ है।[1]

---

१. (क) बिब्लिओथेका इण्डिका, कलकत्ता, सन् १८८०.
(ख) रेवतीकान्त भट्टाचार्य, कलकत्ता, सन् १९२३.
(ग) मुनि दर्शनविजयजी त्रिपुटी द्वारा संपादित—चारित्र ग्रंथमाला, अहमदाबाद.

स्वयंभू-व्याकरण :

दिगम्बर महाकवि स्वयंभू ने किसी अपभ्रंश व्याकरण की रचना की थी, यह उनके रचे हुए 'पउमचरिय' महाकाव्य के निम्नोक्त उल्लेख से मालूम होता है :

तावच्चिय सच्छंदो भमइ अवब्भंस-मत्त-मायंगो।
जाव ण सयंभु-वायरण-अंकुसो पडइ॥

यह 'स्वयंभूव्याकरण' उपलब्ध नहीं है। इसका नाम क्या था यह भी मालूम नहीं।

सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन-प्राकृतव्याकरण :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि (सन् १०८८ से ११७२) ने व्याकरण, साहित्य, अलंकार, छन्द, कोश आदि कई शास्त्रों का निर्माण किया है। इनकी विविध विषयों के सर्वांगपूर्ण शास्त्रों के निर्माता के रूप में प्रसिद्धि है। इसीलिये तो इनके समस्त साहित्य का अभ्यास-परिशीलन करनेवाला सर्वशास्त्रवेत्ता होने की योग्यता प्राप्त कर सकता है। इनका 'प्राकृतव्याकरण'[1] 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' का आठवाँ अध्याय है। सिद्धराज को अर्पित करने से और हेमचन्द्ररचित होने से इसे 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' कहा गया है।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने प्राचीन प्राकृत व्याकरणवाङ्मय का अवलोकन करके और देशी धातु प्रयोगों का धात्वादेशों में संग्रह करके प्राकृत भाषाओं के अति विस्तृत और सर्वोत्कृष्ट व्याकरण की रचना की है। यह रचना अपने युग के

१. (क) डा० आर. पिशल—Hemachandra's Gramatik der Prakrit Sprachen (Siddha Hemachandra Adhyaya VIII,) Halle 1877, and Theil (uber Setzung and Erlauterungen), Halle, 1880 (in Roman script).
   (ख) कुमारपाल-चरित के परिशिष्ट के रूप में—B. S. P. S. (XX), बंबई, सन् १९००.
   (ग) पूना, सन् १९२८, १९३६.
   (घ) दलीचंद पीतांबरदास, भीयागाम, वि० सं० १९६१ (गुजराती अनुवादसहित).
   (ङ) हिन्दी व्याख्यासहित—जैन दिवाकर दिव्यज्योति कार्यालय, ब्यावर, वि० सं० २०२०.

प्राकृत भाषा के व्याकरण और साहित्यिक प्रवाह को लक्ष्य में रखकर ही की है। आचार्य ने 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए बताया है कि जिसकी प्रकृति संस्कृत है उससे उत्पन्न व आगत प्राकृत है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि संस्कृत में से प्राकृत का अवतार हुआ। यहाँ आचार्य का अभिप्राय यह है कि संस्कृत के रूपों को आदर्श मानकर प्राकृत शब्दों का अनुशासन किया गया है। तात्पर्य यह है कि संस्कृत की अनुकूलता के लिये प्रकृति को लेकर प्राकृत भाषा के आदेशों की सिद्धि की गई है।

प्राकृत वैयाकरणों की पाश्चात्य और पौरस्त्य इन दो शाखाओं में आचार्य हेमचन्द्र पाश्चात्य शाखा के गणमान्य विद्वान् हैं। इस शाखा के प्राचीन वैयाकरण चण्ड आदि की परंपरा का अनुसरण करते हुए आचार्य हेमचंद्रसूरि के 'प्राकृतव्याकरण' में चार पाद हैं। प्रथम पाद के २७१ सूत्रों में संधि, व्यञ्जनान्त शब्द, अनुस्वार, लिंग, विसर्ग, स्वरव्यत्यय और व्यञ्जनव्यत्यय–इनका क्रमशः निरूपण किया गया है। द्वितीय पाद के २१८ सूत्रों में संयुक्त व्यञ्जनों के विपरिवर्तन, समीकरण, स्वरभक्ति, वर्णविपर्यय, शब्दादेश, तद्धित, निपात और अव्ययों का वर्णन है। तृतीय पाद के १८२ सूत्रों में कारक-विभक्तियों तथा क्रिया-रचना से संबंधित नियम बताये गये हैं। चौथे पाद में ४४८ सूत्र हैं, जिनमें से प्रथम २५९ सूत्रों में धात्वादेश और शेष सूत्रों में क्रमशः शौरसेनी के २६० से २८६ सूत्र, मागधी के २८७ से ३०२, पैशाची के ३०३ से ३२४, चूलिका-पैशाची के ३२५ से ३२८ और फिर अपभ्रंश के ३२९ से ४४६ सूत्र हैं। अंत के समाप्ति-सूचक दो सूत्रों (४४७ और ४४८) में यह कहा गया है कि प्राकृतों में उक्त लक्षणों का व्यत्यय भी पाया जाता है तथा जो बात यहाँ नहीं बताई गई है वह 'संस्कृतवत्' सिद्ध समझनी चाहिये।

आचार्य हेमचंद्रसूरि ने आगम आदि (जो अर्धमागधी भाषा में लिखे गये हैं) साहित्य को लक्ष्य में रखकर तृतीय सूत्र व अन्य अनेक सूत्रों की वृत्ति में 'आर्ष प्राकृत' का उल्लेख किया है और उसके उदाहरण भी दिये हैं किन्तु वे बहुत ही अल्प प्रमाण में हैं। कश्चित्, केचित्, अन्ये आदि शब्दप्रयोगों से मालूम होता है कि अपने से पहले के व्याकरणों से भी सामग्री ली है। मागधी का विवेचन करते हुए कहा है कि अर्धमागधी में पुंल्लिग कर्ता के लिये एक वचन में 'अ' के स्थान में 'ए' कार हो जाता है। (वस्तुतः यह नियम मागधी भाषा के लिये लागू होता है।) अपभ्रंश भाषा का यहाँ विस्तृत विवेचन है। ऐसा विवेचन इतनी पूर्णता से कोई भी नहीं कर पाया है। अपभ्रंश के अनेक अज्ञात

ग्रन्थों से शृंगार, वैराग्य और नीतिविषयक पूरे पद्य उद्धृत किये गये हैं जिनसे उस काल तक के अपभ्रंश साहित्य का अनुमान किया जा सकता है।

आचार्य हेमचंद्र के बाद में होनेवाले त्रिविक्रम, श्रुतसागर, शुभचंद्र आदि वैयाकरणों के प्राकृत व्याकरण मिलते हैं, परंतु ये सब रचना-शैली व विषय की अपेक्षा से हेमचंद्र से आगे नहीं बढ़ सके।

डा० पिशल ने वर्षों तक प्राकृत भाषा का अध्ययन कर और प्राकृत भाषा के तत्तद्विषयक सैकड़ों ग्रन्थों का अवलोकन, अध्ययन व परिशीलन करके प्राकृत भाषाओं का व्याकरण तैयार किया है। श्रीमती डोल्ची नित्ति ने 'Les Grammairiens Prakrits' में प्राकृत भाषाओं का पर्याप्त परिशीलन करके आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा है। आज की वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसी आलोचनाएँ अनिवार्य एवं अत्यन्त उपयोगी हैं परंतु वैयाकरणों ने अपने समय की अल्प सामग्री की मर्यादा में अपने युग की दृष्टि को ध्यान में रखकर अनेक शब्द-प्रयोगों का संग्रह करके व्याकरणों का निर्माण किया है, यह नहीं भूलना चाहिये।

सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन (प्राकृतव्याकरण)-वृत्ति :

आचार्य हेमचंद्रसूरि ने अपने 'प्राकृतव्याकरण' पर 'तत्त्वप्रकाशिका' नामक सुबोध वृत्ति (बृहद्वृत्ति) की रचना की है। इसमें अनेक ग्रन्थों से उदाहरण दिये गये हैं। यह वृत्ति मूल के साथ प्रकाशित हुई है।

हैमदीपिका (प्राकृतवृत्ति-दीपिका) :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय पर १५०० श्लोक-प्रमाण 'हैमदीपिका' अपर नाम 'प्राकृतवृत्ति-दीपिका' की रचना द्वितीय हरिभद्रसूरि ने की है। यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है।

दीपिका :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय पर जिनसागरसूरि ने ६७५० श्लोकात्मक 'दीपिका' नामक वृत्ति की रचना की है।

प्राकृतदीपिका :

आचार्य हरिप्रभसूरि ने 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' व्याकरण के अष्टमाध्याय में आये हुए उदाहरणों की व्युत्पत्ति सूत्रों के निर्देशपूर्वक बताई है। इसकी २७

पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर के संग्रह में विद्यमान है।

आचार्य हरिप्रभसूरि के समय और गुरु के विषय में कुछ जानने में नहीं आया। इन्होंने अन्त में शान्तिप्रभसूरि के संप्रदाय में होने का उल्लेख इस प्रकार किया है :

इति श्रीहरिप्रभसूरिविरचितायां प्राकृतदीपिकायां चतुर्थः पादः समाप्तः।

मन्दमतिविनेयबोधहेतोः श्रीशान्तिप्रभसूरिसंप्रदायात्।
अस्यां बहुरूपसिद्धौ विदधे सूरिहरिप्रभः प्रयत्नम्॥

हैमप्राकृतढुंढिका :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय पर आचार्य सौभाग्यसागर के शिष्य उदयसौभाग्यगणि ने 'हैमप्राकृतढुंढिका' अपरनाम 'व्युत्पत्ति-दीपिका' नामक वृत्ति की रचना वि० सं० १५९१ में की है।[1]

प्राकृतप्रबोध (प्राकृतवृत्तिढुंढिका) :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय पर मलधारी उपाध्याय नरचन्द्रसूरि ने अवचूरिरूप ग्रन्थ की रचना की है। इसके अन्त में इन्होंने ग्रन्थ-निर्माण का हेतु इस प्रकार बतलाया है :

नानाविधैर्विधुरितां विबुधैः सबुद्ध्या
तां रूपसिद्धिमखिलामवलोक्य शिष्यैः।
अभ्यर्थितो मुनिरनुज्झितसंप्रदाय—
मारम्भमेनमकरोन्नरचन्द्रनामा॥

इस ग्रन्थ में 'तत्त्वप्रकाशिका' (बृहद्वृत्ति) में निर्दिष्ट उदाहरणों की सूत्रपूर्वक साधनिका की गई है। 'न्यायकंदली' की टीका में राजशेखरसूरि ने इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में हैं।

प्राकृतव्याकृति (पद्यविवृति) :

आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि ने आचार्य हेमचन्द्र के सूत्रों की स्वोपज्ञ सोदाहरण वृत्ति को पद्य में ग्रथित कर उसका 'प्राकृतव्याकृति' नाम रखा है।

---

१. यह वृत्ति भीमसिंह माणेक, बम्बई से प्रकाशित हुई है।

यह 'प्राकृतव्याकृति' आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि-निर्मित महाकाय सप्त-भागात्मक 'अभिधानराजेन्द्र' नामक कोश के प्रथम भाग[1] के प्रारम्भ में प्रकाशित है।

दोधकवृत्ति :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय के चतुर्थ पाद में जो 'अपभ्रंश-व्याकरण' विभाग है उसके सूत्रों की बृहद्वृत्ति में उदाहरणरूप जो 'दोधक-दोधक-दूहे' दिये गये हैं उस पर यह वृत्ति है।[2]

हैमदोधकार्थ :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय के 'अपभ्रंश-व्याकरण' के सूत्रों की 'बृहद्वृत्ति' में जो 'दूहे' रूप उदाहरण दिये गये हैं उनके अर्थों का स्पष्टीकरण इस ग्रन्थ में है। 'जैन ग्रन्थावली' पृ० ३०१ में इसकी १३ पत्रों की हस्तलिखित प्रति होने का उल्लेख है।

प्राकृत-शब्दानुशासन :

'प्राकृतशब्दानुशासन' के कर्ता त्रिविक्रम नामक विद्वान् हैं। इन्होंने मंगलाचरण में वीर को नमस्कार किया है और 'धवला' के कर्ता वीरसेन और जिनसेन आदि आचार्यों का स्मरण किया है, इससे मालूम होता है कि ये दिगंबर जैन थे। इन्होंने त्रैविद्य अर्हनन्दि के पास बैठकर जैन शास्त्रों का अध्ययन किया था। इन्होंने खुद को सुकविरूप में उल्लिखित किया है परन्तु इनके किसी काव्यग्रन्थ का अभी तक पता नहीं लगा है। हाँ, इस 'प्राकृतव्याकरण' के सूत्रों को इन्होंने पद्यों में ग्रथित किया है जिससे इनके कवित्व की सूचना मिलती है।

विद्वानों ने त्रिविक्रम का समय ईसा की १३ वीं शताब्दी माना है। इन्होंने साधारणतया आचार्य हेमचन्द्र के 'प्राकृतव्याकरण' का ही अनुसरण किया है। इन्होंने भी आचार्य हेमचन्द्र के समान आर्ष प्राकृत का उल्लेख किया है परन्तु आर्ष और देश्य रूढ़ होने के कारण स्वतंत्र हैं, इसलिये उनके व्याकरण की जरूरत नहीं है, साहित्य में व्यवहृत प्रयोगों द्वारा ही उनका ज्ञान हो

---

१. यह भाग जैन श्वेतांबर समस्तसंघ, रतलाम से वि० सं० १९७० में प्रकाशित हुआ है।

२. यह हेमचन्द्राचार्य जैन सभा, पाटन से प्रकाशित है।

सकता है। जो शब्द साध्यमान और सिद्ध संस्कृत हैं उनके विषय में ही इस व्याकरण में प्राकृत के नियम दिये गये हैं।

प्रस्तुत व्याकरण में तीन अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के चार-चार पाद हैं। प्रथम अध्याय, द्वितीय अध्याय और तृतीय अध्याय के प्रथम पाद में प्राकृत का विवेचन है। तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद में शौरसेनी (सूत्र १ से २६), मागधी (२७ से ४२), पैशाची (४३ से ६३) और चूलिका-पैशाची (६४ से ६७) के नियम बताये गये हैं। तीसरे और चौथे पाद मे अपभ्रंश का विवेचन है। अपभ्रंश के उदाहरणों की अपेक्षा से आचार्य हेमचंद्रसूरि से इसमें कुछ मौलिकता दिखाई देती है।

प्राकृतशब्दानुशासन-वृत्ति :

त्रिविक्रम ने अपने 'प्राकृतशब्दानुशासन' पर स्वोपज्ञ वृत्ति[1] की रचना की है। प्राकृत रूपों के विवेचन में इन्होंने आचार्य हेमचन्द्र का आधार लिया है।

प्राकृत-पद्यव्याकरण :

प्रस्तुत ग्रन्थ का वास्तविक नाम और कर्ता का नाम अज्ञात है। यह अपूर्ण रूप में उपलब्ध है, जिसमें केवल ४२७ श्लोक हैं। इस ग्रंथ[2] का आरंभ इस प्रकार है:

संस्कृतस्य विपर्यस्तं संस्कारगुणवर्जितम्।
विज्ञेयं प्राकृतं तत् तु [यद्] नानावस्थान्तरम्॥ १॥
समानशब्दं विभ्रष्टं देशीगतमिति त्रिधा।
सौरसेन्यं च मागध्यं पैशाच्यं चापभ्रंशिकम्॥ २॥
देशीगतं चतुर्धेति तदग्रे कथयिष्यते।
....

औदार्यचिन्तामणि :

'औदार्यचिन्तामणि' नामक प्राकृत व्याकरण के कर्ता का नाम है श्रुतसागर। ये दिगंबर जैन मुनि थे जो मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण में हुए।

---

१. जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर से सन् १९५४ में यह ग्रंथ सुसंपादित होकर प्रकाशित हुआ है।

२. इस ग्रंथकी ६ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के संग्रह में है जो लगभग १७ वीं शताब्दी में लिखी गई है।

इनके गुरु का नाम विद्यानन्दी था और मल्लिभूषण नामक मुनि इनके गुरुभाई थे। ये कट्टर दिगंबर थे, ऐसा इनके ग्रंथों के विवेचन से फलित होता है। इन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है। इनकी रचित 'षट्प्राभृत-टीका' और 'यशस्तिलक-चन्द्रिका' में इन्होंने स्वयं का परिचय 'उभयभाषाचक्रवर्ती, कलिकालगौतम, कलिकालसर्वज्ञ, तार्किकशिरोमणि, नवनवतिवादिविजेता, परागमप्रवीण, व्याकरण-कमलमार्तण्ड' विशेषणों से दिया है।

औदार्यचिन्तामणि व्याकरण की रचना इन्होंने वि० सं० १५७५ में की है। इसमें प्राकृतभाषाविषयक छः अध्याय हैं। यह आचार्य हेमचन्द्र के 'प्राकृत-व्याकरण' और त्रिविक्रम के 'प्राकृतशब्दानुशासन' से बड़ा है। इन्होंने आचार्य हेमचंद्र के व्याकरण का ही अनुसरण किया है।

इस व्याकरण की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है वह अपूर्ण है।[1] इसलिये इसके विषय में विशेष कहा नहीं जा सकता।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

१. व्रतकथाकोश, २. श्रुतस्कंधपूजा, ३. जिनसहस्रनामटीका, ४. तत्त्वत्रय-प्रकाशिका, ५. तत्त्वार्थसूत्र-वृत्ति, ६. महाभिषेक-टीका, ७. यशस्तिलकचन्द्रिका।

चिन्तामणि-व्याकरण :

'चिन्तामणि-व्याकरण' के कर्ता शुभचंद्रसूरि दिगम्बरीय मूलसंघ, सरस्वती-गच्छ और बलात्कारगण के भट्टारक थे। वे विजयकीर्ति के शिष्य थे। इनको त्रैविद्यविद्याधर और षड्भाषाचक्रवर्ती की पदवियाँ प्राप्त थीं। इन्होंने साहित्य के विविध विषयों का अध्ययन किया था।

इनके रचित 'चिन्तामणिव्याकरण' में प्राकृत-भाषाविषयक चार-चार पादयुक्त तीन अध्याय हैं। कुल मिलाकर १२२४ सूत्र हैं। यह व्याकरण आचार्य हेमचंद्र के 'प्राकृतव्याकरण' का अनुसरण करता है। इसकी रचना वि० सं० १६०५ में हुई है। 'पाण्डवपुराण' की प्रशस्ति में इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार है :

योऽकृत सद्व्याकरणं चिन्तामणिनामधेयम्।

---

१. यह ग्रंथ तीन अध्यायों में विजागापट्टम् से प्रकाशित हुआ है : देखिए— Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. XIII, pp. 52-53.

चिन्तामणि-व्याकरणवृत्ति :

'चिन्तामणिव्याकरण'[1] पर आचार्य शुभचंद्र ने स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है।

इस व्याकरण-ग्रन्थ के अलावा इन्होंने अन्य अनेक ग्रंथों की भी रचना की है।

अर्धमागधी-व्याकरण :

'अर्धमागधी-व्याकरण'[2] की सूत्रबद्ध रचना वि० सं० १९९५ के आसपास शतावधानी मुनि रत्नचन्द्रजी (स्थानकवासी) ने की है। मुनि श्री ने इस पर स्वोपज्ञ वृत्ति भी बनाई है।

प्राकृत-पाठमाला :

उपर्युक्त मुनि रत्नचन्द्रजी ने 'प्राकृत-पाठमाला' नामक ग्रंथ की रचना प्राकृत भाषा के विद्यार्थियों के लिये की है। यह कृति भी छप चुकी है।

कर्णाटक-शब्दानुशासन :

दिगम्बर जैन मुनि अकलंक ने 'कर्णाटकशब्दानुशासन' नामक कन्नड़ भाषा के व्याकरण की रचना शक सं० १५२६ (वि० सं० १६६१) में संस्कृत में की है। इस व्याकरण में ५९२ सूत्र हैं।[3]

नागवर्म ने जिस 'कर्णाटकभूषण' व्याकरण की रचना की है उससे यह व्याकरण बड़ा है और 'शब्दमणिदर्पण' नामक व्याकरण से इसमें अधिक विषय हैं। इसलिए यह सर्वोत्तम व्याकरण माना जाता है।

मुनि अकलंक ने इसमें अपने गुरु का परिचय दिया है। इसमें इन्होंने चारुकीर्ति के लिये अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है। 'कर्णाटक-शब्दानुशासन' पर किसी ने 'भाषामञ्जरी' नामक वृत्ति लिखी है तथा 'मञ्जरीमकरन्द' नामक विवरण भी लिखा है।

---

१. विशेष परिचय के लिए देखिए—डा० ए० एन० उपाध्ये का लेख : A. B. O. R. I., Vol. XIII, pp. 46-52.

२. यह ग्रन्थ मेहरचन्द लछमणदास ने लाहोर से सन् १९३८ में प्रकाशित किया है।

३. 'अनेकान्त' वर्ष १, किरण ६-७, पृ० ३३५.

धन्वन्तरि का 'निघण्टु' आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई कोश-ग्रंथ अप्राप्य हैं।

उपलब्ध कोशों में अमरसिंह के 'अमर-कोश' ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। इसके बाद आचार्य हेमचंद्र आदि के कोशों का ठीक-ठीक प्रचार हुआ, ऐसा काव्यग्रंथों की टीकाओं से मालूम पड़ता है।

प्रस्तुत प्रकरण में जैन ग्रंथकारों के रचे हुए कोश-ग्रंथों के विषय में विचार किया जा रहा है।

पाइयलच्छीनाममाला :

'पाइयलच्छीनाममाला'[1] नामक एकमात्र उपलब्ध प्राकृत-कोश की रचना करनेवाले पं० धनपाल जैन गृहस्थ विद्वानों में अग्रणी हैं। इन्होंने अपनी छोटी बहन सुन्दरी के लिये इस कोश-ग्रंथ की रचना वि० सं० १०२९ में की है। इसमें २७९ गाथाएँ आर्या छंद में हैं। यह कोश एकार्थक शब्दों का बोध कराता है। इसमें ९९८ प्राकृत शब्दों के पर्याय दिये गये हैं।

पं० धनपाल जन्म से ब्राह्मण थे। इन्होंने अपने छोटे भाई शोभन मुनि के उपदेश से जैन तत्त्वों का अध्ययन किया तथा जैन दर्शन में श्रद्धा उत्पन्न होने से जैनत्व अंगीकार किया। एक पक्के जैन की श्रद्धा से और महाकवि की हैसियत से इन्होंने कई ग्रंथों का प्रणयन किया है।

धनपाल धाराधीश मुञ्जराज की राजसभा के सम्मान्य विद्वद्रत्न थे। वे उनको 'सरस्वती' कहते थे। भोजराज ने इनको राजसभा में 'कूर्चालसरस्वती' और 'सिद्धसारस्वतकवीश्वर' की पदवियाँ देकर सम्मानित किया था। बाद में 'तिलकमञ्जरी' की रचना को बदलने के आदेश से तथा ग्रंथ को जला देने के कारण भोजराज के साथ उनका वैमनस्य हुआ। तब वे साचोर जाकर रहे। इसका निर्देशन उनके 'सत्यपुरीयमंडन-महावीरोत्साह' में है।

आचार्य हेमचन्द्र ने 'अभिधानचिन्तामणि' कोश के प्रारंभ में 'व्युत्पत्तिर्धनपालतः' ऐसा उल्लेख कर धनपाल के कोशग्रंथ को प्रमाणभूत बताया

1. (अ) बुह्लर द्वारा संपादित होकर सन् १८७९ में प्रकाशित।
   (आ) भावनगर से गुलाबचंद लल्लुभाई द्वारा वि० सं० १९७३ में प्रकाशित।
   (इ) पं० बेचरदास द्वारा संशोधित होकर बंबई से प्रकाशित।

है। हेमचंद्ररचित 'देशीनाममाला' (रयणावली) में भी धनपाल का उल्लेख है। 'शार्ङ्गधर-पद्धति' में धनपाल के कोशविषयक पद्यों के उद्धरण मिलते हैं और एक टिप्पणी में धनपालरचित 'नाममाला' के १८०० श्लोक-परिमाण होने का उल्लेख किया गया है। इन सब प्रमाणों से मालूम होता है कि धनपाल ने संस्कृत और देशी शब्दकोश-ग्रंथों की रचना की होगी, जो आज उपलब्ध नहीं हैं।

इनके रचित अन्य ग्रंथ इस प्रकार हैं :

१. तिलकमञ्जरी (संस्कृत गद्य), २. श्रावकविधि (प्राकृत पद्य), ३. ऋषभपञ्चाशिका (प्राकृत पद्य), ४. महावीरस्तुति (प्राकृत पद्य), ५. सत्यपुरीयमंडन-महावीरोत्साह (अपभ्रंश पद्य), ६. शोभनस्तुति-टीका (संस्कृत गद्य)।

धनञ्जयनाममाला :

धनंजय नामक दिगंबर गृहस्थ विद्वान् ने अपने नाम से 'धनञ्जयनाममाला'[1] नामक एक छोटे से संस्कृतकोश की रचना की है।

माना जाता है कि कर्ता ने २०० अनुष्टुप् श्लोक ही रचे हैं। किसी आवृत्ति में २०३ श्लोक हैं तो कहीं २०५ श्लोक हैं।

धनञ्जय कवि ने इस कोश में एक शब्द से शब्दांतर बनाने की विशिष्ट पद्धति बताई है। जैसे, 'पृथ्वी' वाचक शब्द के आगे 'धर' शब्द जोड़ देने से पर्वतवाची नाम बनता है, 'मनुष्य' वाचक शब्द के आगे 'पति' शब्द जोड़ देने से नृपवाची नाम बनता है और 'वृक्ष' वाचक शब्द के आगे 'चर' शब्द जोड़ देने से वानरवाची नाम बनता है।

इस कोश में २०१ वां श्लोक इस प्रकार है :

> प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
> द्विसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्॥

इस श्लोक में 'द्विसन्धान' कार धनञ्जय कवि की प्रशंसा है, इसलिए यह श्लोक मूल ग्रंथकार का नहीं होगा, ऐसा कुछ विद्वान् मानते हैं। पं० महेन्द्र-

---

१. धनञ्जयनाममाला, अनेकार्थनाममाला के साथ हिंदी अनुवादसहित, चतुर्थ आवृत्ति, हरप्रसाद जैन, वि. सं. १९९९.

हेमचंद्र ने व्याकरण-ज्ञान को सक्रिय बनाने के लिये और विद्यार्थियों को भाषा का ज्ञान सुलभ करने के लिये संस्कृत और देश्य भाषा के कोशों की रचना इस प्रकार की है : १. अभिधानचिंतामणि सटीक, २. अनेकार्थसंग्रह, ३. निघण्टु-संग्रह और ४. देशीनाममाला (रयणावली) ।[1]

आचार्य हेमचंद्र ने कोश की उपयोगिता बताते हुए कहा है कि बुधजन वक्तृत्व और कवित्व को विद्वत्ता का फल बताते हैं, परन्तु ये दोनों शब्दज्ञान के बिना सिद्ध नहीं हो सकते ।[2]

'अभिधानचिंतामणि' की रचना सामान्यतः 'अमरकोश' के अनुसार ही की गई है। यह कोश रूढ, यौगिक और मिश्र एकार्थक शब्दों का संग्रह है। इसमें छः कांडों की योजना इस प्रकार की गई है :

प्रथम देवाधिदेवकांड में ८६ श्लोक हैं, जिनमें चौबीस तीर्थंकर, उनके अतिशय आदि के नाम दिये गये हैं।

द्वितीय देवकांड में २५० श्लोक हैं। इसमें देवों, उनकी वस्तुओं और नगरों के नाम हैं।

तृतीय मर्त्यकांड में ५९७ श्लोक हैं। इसमें मनुष्यों और उनके व्यवहार में आनेवाले पदार्थों के नाम हैं।

चतुर्थ तिर्यक्कांड में ४२३ श्लोक हैं। इसमें पशु, पक्षी, जंतु, वनस्पति, खनिज आदि के नाम हैं।

पञ्चम नारककांड में ७ श्लोक हैं। इसमें नरकवासियों के नाम हैं।

छठे साधारणकांड में १७८ श्लोक हैं, जिनमें ध्वनि, सुगंध और सामान्य पदार्थों के नाम हैं।

ग्रन्थ में कुल मिलाकर १५४१ श्लोक हैं।

हेमचन्द्र ने इस कोश की रचना में वाचस्पति, हलायुध, अमर, यादवप्रकाश, वैजयन्ती के श्लोक और काव्य का प्रमाण दिया है। 'अमर-कोश' के कई श्लोक इसमें ग्रथित हैं।

---

१. एकार्थानेकार्था देश्या निर्घण्ट इति च चत्वारः ।
विहिताश्च नामकोशा भुवि कवितानट्युपाध्यायाः ॥
—प्रभावक-चरित, हेमचन्द्रसूरि-प्रबन्ध, श्लोक ८३३.

२. वक्तृत्वं च कवित्वं च विद्वत्तायाः फलं विदुः ।
शब्दज्ञानादृते तन्न द्वयमप्युपपद्यते ॥

हेमचन्द्र ने शब्दों के तीन विभाग बताये हैं : १. रूढ़, २. यौगिक और ३. मिश्र। रूढ़ की व्युत्पत्ति नहीं होती। योग अर्थात् गुण, क्रिया और सम्बन्ध से जो सिद्ध हो सके। जो रूढ़ भी हो और यौगिक भी हो उसे मिश्र कहते हैं।

'अमर-कोश' से यह कोश शब्दसंख्या में डेढ़ा है। 'अमर-कोश' में शब्दों के साथ लिंग का निर्देश किया गया है परन्तु आचार्य हेमचन्द्र ने अपने कोश में लिंग का उल्लेख न करके स्वतन्त्र 'लिंगानुशासन' की रचना की है।

हेमचन्द्रसूरि ने इस कोश में मात्र पर्यायवाची शब्दों का ही संकलन नहीं किया, अपितु इसमें भाषासम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सामग्री भी संकलित है। इसमें अधिक से अधिक शब्द दिये हैं और नवीन तथा प्राचीन शब्दों का समन्वय भी किया है।

आचार्य ने समान शब्दयोग से अनेक पर्यायवाची शब्द बनाने का विधान भी किया है, परन्तु इस विधान के अनुसार उन्हीं शब्दों को ग्रहण किया है जो कवि-संप्रदाय द्वारा प्रचलित और प्रयुक्त हों। कवियों द्वारा अप्रयुक्त और अमान्य शब्दों के ग्रहण से अपनी कृति को बचा लिया है।

भाषा की दृष्टि से यह कृति बहुमूल्य है। इसमें प्राकृत, अपभ्रंश और देशी भाषाओं के शब्दों का पूर्णतः प्रभाव दिखाई देता है। इस दृष्टि से आचार्य ने कई नवीन शब्दों को अपना कर अपनी कृति को समृद्ध बनाया है।
ये विशेषताएँ अन्य कोशों में देखने में नहीं आतीं।

अभिधानचिन्तामणि-वृत्ति :

'अभिधानचिन्तामणि' कोश पर आचार्य हेमचन्द्र ने स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है, जिसको 'तत्त्वाभिधायिनी' कहा गया है। 'शेष' उल्लेख से अतिरिक्त शब्दों के संग्राहक श्लोक इस प्रकार हैं : १ कांड में १, २ कांड मे ८९, ३ कांड में ६३, ४ कांड में ४१, ५ कांड में २, और ६ कांड में ८— इस प्रकार कुल मिलाकर २०४ श्लोकों का परिशिष्ट-पत्र है। मूल १५४१ श्लोकों में २०४ मिलाने से पूरी संख्या १७४५ होती है। वृत्ति के साथ इस ग्रन्थ का श्लोक-परिमाण करीब साढ़े आठ हजार होता है।

व्याडि का कोई शब्दकोश आचार्य हेमचन्द्र के सामने था, जिसमें से उन्होंने कई प्रमाण उद्धृत किये हैं।

इस स्वोपज्ञ वृत्ति में ५६ ग्रन्थकारों और ३१ ग्रन्थों का उल्लेख है। जहाँ पूर्व के कोशकारों से उनका मतभेद है वहीं आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अन्य ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के नाम उद्‌धृत करके अपने मतभेद का स्पष्टीकरण किया है।

अभिधानचिंतामणि-टीका :

मुनि कुशलसागर ने 'अभिधानचिन्तामणि' कोश पर टीका की रचना की है।

अभिधानचिन्तामणि-सारोद्धार :

खरतरगच्छीय ज्ञानविमल के शिष्य वल्लभगणि ने वि० सं० १६६७ में 'अभिधानचिन्तामणि' पर 'सारोद्धार' नामक टीका की रचना की है। इसको शायद 'दुर्गपदप्रबोध' नाम भी दिया गया हो ऐसा मालूम होता है।

अभिधानचिन्तामणि-टीका :

अभिधानचिन्तामणि पर मुनि साधुरत्न ने भी एक टीका रची है।

अभिधानचिंतामणि-व्युत्पत्तिरत्नाकर :

अंचलगच्छीय विनयचंद्र वाचक के शिष्य मुनि देवसागर ने वि० सं० १६८६ में 'हैमीनाममाला' अर्थात् 'अभिधानचिन्तामणि' कोश पर 'व्युत्पत्तिरत्नाकर' नामक वृत्ति ग्रंथ की रचना की है, जिसकी १२ श्लोकों की अंतिम प्रशस्ति प्रकाशित है।[1]

मुनि देवसागर ने तथा आचार्य कल्याणसागरसूरि ने शत्रुंजय पर सं० १६७६ में तथा सं० १६८३ में प्रतिष्ठित किये गये श्री श्रेयांसजिनप्रासाद और श्री चन्द्रप्रभजिनप्रासाद की प्रशस्तियाँ रची हैं।[2] इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ जैसलमेर के ज्ञान-भंडार में हैं।

अभिधानचिन्तामणि-अवचूरि :

किसी अज्ञात नामा जैन मुनि ने अभिधान चिन्तामणि कोश पर ४९०० श्लोक-प्रमाण 'अवचूरि' की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित प्रति पाटन के भंडार में है। इसका उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृ० ३१० में है।

अभिधानचिन्तामणि-रत्नप्रभा :

पं० वासुदेवराव जनार्दन कशेलीकर ने अभिधानचिन्तामणि कोश पर

---

१. देखिए—'जैसलमेर-जैन-भाण्डागारीय-ग्रन्थानां सूचीपत्रम्' (बड़ोदा, सन् १९२३) पृ० ६१.

२. एपिग्राफिका इण्डिका, २, १७, ११, १८, ७१.

'रत्नप्रभा' नाम से टीका की रचना की है। इसमें कहीं-कहीं संस्कृत शब्दों के गुजराती अर्थ भी दिये हैं।

अभिधानचिन्तामणि-बीजक :

'अभिधानचिन्तामणिनाममाला-बीजक' नाम से तीन मुनियों की रचनाएँ[1] उपलब्ध होती हैं। बीजकों में कोश की विस्तृत विषय-सूची दी गई है।

अभिधानचिन्तामणिनाममाला-प्रतीकावली :

इस नाम की एक हस्तलिखित प्रति भांडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना में है। इसके कर्ता का नाम इसमें नहीं है।

अनेकार्थसंग्रह :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'अनेकार्थ-संग्रह' नामक कोशग्रन्थ की रचना विक्रमीय १३ वीं शताब्दी में की है। इस कोश में एक शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं।

इस ग्रंथ में सात कांड हैं। १. एकस्वरकांड में १६, २. द्विस्वरकांड में ५९१, ३. त्रिस्वरकांड में ७६६, ४. चतुःस्वरकांड में ३४३, ५. पञ्चस्वर-कांड में ४८, ६. षट्स्वरकांड में ५, ७. अव्ययकांड में ६०—इस प्रकार कुल मिलाकर १८२९ + ६० पद्य हैं। इसमें आरंभ में अकारादि क्रम से और अंत में क आदि के क्रम से योजना की गई है।

इस कोश में भी 'अभिधानचिंतामणि' के सदृश देश्य शब्द हैं। यह ग्रन्थ 'अभिधानचिंतामणि' के बाद ही रचा गया है, ऐसा इसके आद्य पद्य से ज्ञात होता है।[2]

अनेकार्थसंग्रह-टीका :

'अनेकार्थसंग्रह' पर 'अनेकार्थ-कैरवाकर-कौमुदी' नामक टीका आचार्य हेमचन्द्रसूरि के ही शिष्य आचार्य महेन्द्रसूरि ने रची है, ऐसा टीका के

---

१. (क) तपागच्छीय आचार्य हीरविजयसूरि के शिष्य शुभविजयजी ने वि० सं० १६६१ में रचा। (ख) श्री देवविमलगणि ने रचा। (ग) किसी अज्ञात नामा मुनि ने रचना की है।

२. यह कोश चौखंबा संस्कृतसिरीज, बनारस से प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व 'अभिधान-संग्रह' में शक-संवत् १८१८ में महावीर जैन सभा, खंभात से तथा विद्याकर मिश्र द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था।

प्रारंभ में उल्लेख मिलता है। यह कृति उन्होंने अपने गुरु के नाम पर चढ़ा दी, ऐसा दूसरे कांड की टीका के अंतिम पद्य से जाना जाता है। रचना-समय विक्रमीय १३ वीं शताब्दी है।

इस ग्रंथ की टीका[1] लिखने में निम्नलिखित ग्रंथों से सहायता ली गई, ऐसा उल्लेख प्रारंभ में ही है : विश्वप्रकाश, शाश्वत, रभस, अमरसिंह, मंख, हुग, व्याडि, धनपाल, भागुरि, वाचस्पति और यादव की कृतियाँ तथा धन्वंतरिकृत निघंटु और लिंगानुशासन।

निघण्टुशेष :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'निघण्टुशेष' नामक वनस्पति-कोश-ग्रन्थ की रचना की है। 'निघण्टु' का अर्थ है वैदिक शब्दों का समूह। वनस्पतियों के नामों के संग्रह को भी 'निघण्टु' कहने की परिपाटी प्राचीन है। धन्वन्तरि-निघण्टु, राजकोश-निघण्टु, सरस्वती-निघण्टु, हनुमन्निघण्टु आदि वनस्पति-कोशग्रन्थ प्राचीन काल में प्रचलित थे। 'धन्वन्तरि-निघण्टु' के सिवाय उपर्युक्त कोशग्रन्थ आज दुष्प्राप्य हैं। आचार्य हेमचन्द्रसूरि के सामने शायद 'धन्वन्तरि-निघण्टु' कोश था। अपने कोशग्रन्थ की रचना के विषय में आचार्य ने इस प्रकार लिखा है :

विहितैकार्थ-नानार्थ-देश्यशब्दसमुच्चयः ।
निघण्टुशेषं वक्ष्येऽहं नत्वाऽर्हत्पदपङ्कजम् ॥

अर्थात् एकार्थककोश (अभिधानचिन्तामणि), नानार्थकोश (अनेकार्थसंग्रह) और देश्यकोश (देशीनाममाला) की रचना करने के पश्चात् अर्हत्—तीर्थंकर के चरणकमल को नमस्कार करके 'निघण्टुशेष' नामक कोश कहूँगा।

इस 'निघण्टुशेष' में छः कांड इस प्रकार हैं : १. वृक्षकांड श्लोक १८१, २. गुल्मकांड १०५, ३. लताकांड ४४, ४. शाककांड ३४, ५. तृणकांड १७, ६. धान्यकांड १५—कुल मिलाकर ३९६ श्लोक हैं।

यह कोशग्रन्थ आयुर्वेदशास्त्र के लिए उपयोगी है।

'अभिधानचिंतामणि' में इन शब्दों को निबद्ध न करते हुए विद्यार्थियों की अनुकूलता के लिये ये 'निघण्टुशेष' नाम से अलग से संकलित किये गये हैं।[2]

---

१. यह टीकाग्रंथ मूल के साथ श्री जाधाजिया (बम्बई) ने सन् १८९६ में सम्पादित किया है।

२. यह ग्रन्थ सटीक लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से सन् १९६८ में प्रकाशित हुआ है।

निघण्टुशेष-टीका :

खरतरगच्छीय श्रीवल्लभगणि ने १७ वीं शती में 'निघण्टुशेष' पर टीका लिखी है।

देशीशब्दसंग्रह :

आचार्य हेमचंद्रसूरि ने 'देशीशब्द संग्रह'[1] नाम से देश्य शब्दों के संग्रहात्मक कोशग्रंथ की रचना की है। इसका दूसरा नाम 'देशीनाममाला' भी है। इसे रयणावली (रत्नावली) भी कहते हैं। देश्य शब्दों का ऐसा कोश अभी तक देखने में नहीं आया। इसमें कुल ७८३ गाथाएँ हैं, जो आठ वर्गों में विभक्त की गई हैं। इन वर्गों के नाम ये हैं : १. स्वरादि, २. कवर्गादि, ३. चवर्गादि, ४. टवर्गादि, ५. तवर्गादि, ६. पवर्गादि, ७. यकारादि और ८. सकारादि। सातवें वर्ग के आदि में कहा है कि इस प्रकार की नाम-व्यवस्था यद्यपि ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध है परंतु व्याकरण में नहीं है। इन वर्गों में भी शब्द उनकी अक्षरसंख्या के क्रम से रखे गये हैं और अक्षर-संख्या में भी अकारादि वर्णानुक्रम से शब्द बताये गये हैं। इस क्रम से एकार्थवाची शब्द देने के बाद अनेकार्थवाची शब्दों का आख्यान किया गया है।

इस कोश-ग्रन्थ की रचना करते समय ग्रन्थकार के सामने अनेक कोश-ग्रन्थ विद्यमान थे, ऐसा मालूम होता है। प्रारंभ की दूसरी गाथा में कोशकार ने कहा है कि पादलिप्ताचार्य आदि द्वारा विरचित देशी-शास्त्रों के होते हुए भी उन्होंने किस प्रयोजन से यह ग्रंथ लिखा। तीसरी गाथा में बताया गया है :

जे लक्खणे ण सिद्धा ण पसिद्धा सक्कयाहिहाणेसु।
ण य गउडलक्खणासत्तिसंभवा ते इह णिबद्धा ॥ ३ ॥

अर्थात् जो शब्द न तो उनके संस्कृत-प्राकृत व्याकरणों के नियमों द्वारा सिद्ध होते, न संस्कृत कोशों में मिलते और न अलंकारशास्त्रप्रसिद्ध गौडी लक्षणाशक्ति से अभीष्ट अर्थ प्रदान करते हैं उन्हें ही देशी मान कर इस कोश में निबद्ध किया गया है।

---

१. पिशल और बुह्लर द्वारा सम्पादित—बम्बई संस्कृत सिरीज, सन् १८८०; बनर्जी द्वारा सम्पादित—कलकत्ता, सन् १९३१; Studies in Hemacandra's Deśīnāmamālā by Bhayani—P. V. Research Institute, Varanasi, 1966.

इस कोश पर स्वोपज्ञ टीका है, जिसमें अभिमानचिह्न, अवन्तिसुन्दरी, गोपाल, देवराज, द्रोण, धनपाल, पाठोदूखल, पादलिप्ताचार्य, राहुलक, शाम्ब, शीलाङ्क और सातवाहन के नाम दिये गये हैं।

शिलोञ्छकोश :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि-रचित 'अभिधानचिन्तामणि' कोश के दूसरे परिशिष्ट के रूप में श्री जिनदेव मुनि ने 'शिलोंछ' नाम से १४० श्लोकों की रचना की है। कर्ता ने रचना का समय 'त्रि-वसु-इन्दु' (?) निर्देश किया है परंतु इसमें एक अंक का शब्द छूटता है। 'जिनरत्नकोश' पृ० ३८३ में वि० सं० १४३३ में इसकी रचना हुई, ऐसा निर्देश है। यह समय किस आधार से लिखा गया यह सूचित नहीं किया है। शिलोंछकोश छप गया है।

शिलोञ्छ-टीका :

इस 'शिलोञ्छ' पर ज्ञानविमलसूरि के शिष्य श्रीवल्लभ ने वि० सं० १६५४ में टीका की रचना की है। यह टीका छपी है।

नामकोश :

खरतरगच्छीय वाचक रत्नसार के शिष्य सहजकीर्ति ने छः काण्डों में लिंग निर्णय के साथ 'नामकोश' या 'नाममाला' नामक कोश-ग्रंथ की रचना की है। इस कोश का आदि श्लोक इस प्रकार है :

स्मृत्वा सर्वज्ञमात्मानं सिद्धशब्दार्णवान् जिनान्।
सल्लिङ्गनिर्णयं नामकोशं सिद्धं स्मृतिं नये॥

अन्त का पद्य इस प्रकार है :

कृतशब्दार्णवैः साङ्गः श्रीसहजादिकीर्तिभिः।
सामान्यकाण्डोऽयं षष्ठः स्मृतिमार्गमनीयत॥

सहजकीर्ति ने 'शतदलकमलालंकृतलोद्रपुरीयपार्श्वनाथस्तुति' (संस्कृत) की रचना वि० सं० १६८३ में की है। यह कोश भी इसी समय के आसपास में रचा गया होगा। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

३. कल्पसूत्र पर 'कल्पमञ्जरी' नामक टीका (अपने सतीर्थ्य श्रीसार मुनि के साथ, सं० १६८५),
४. अनेकशास्त्रसारसमुच्चय,
५. एकादिदशपर्यन्तशब्द-साधनिका,
६. सारस्वतवृत्ति,
७. शब्दार्णवव्याकरण (ग्रन्थाग्र, १७०००),
८. फलवर्द्धिपार्श्वनाथमाहात्म्यमहाकाव्य (२४ सर्गात्मक),
९. प्रीतिषट्त्रिंशिका (सं० १६८८)।

शब्दचन्द्रिका :

इस कोशग्रन्थ के कर्ता का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसकी १७ पत्रों की हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के संग्रह मे है। यह कृति शायद अपूर्ण है। इसका प्रारंभ इस प्रकार है :

ध्यायं ध्यायं महावीरं स्मारं स्मारं गुरोर्वचः।
शास्त्रं दृष्ट्वा वयं कुर्मः बालबोधाय पद्धतिम् ॥
पत्रलिखनस्याद्वादमतं ज्ञात्वा वरं किल।
मनोरमां वयं कुर्मः बालबोधाय पद्धतिम् ॥

इन श्लोकों के आधार पर इसका नाम 'बालबोधपद्धति' या 'मनोरमा-कोश' भी हो सकता है। हस्तलिखित प्रति के हाशिये में 'शब्द-चन्द्रिका' उल्लिखित है। इसी से यहां इस कोश का नाम 'शब्द-चन्द्रिका' दिया गया है। इसमें शब्द का उल्लेखकर पर्यायवाची नाम एक साथ गद्य मे दे दिये गये हैं। विद्यार्थियों के लिए यह कोश उपयोगी है। यह ग्रन्थ छपा नहीं है।

सुन्दरप्रकाश-शब्दार्णव :

नागोरी तपागच्छीय श्री पद्ममेरु के शिष्य पद्मसुन्दर ने पांच प्रकरणों में 'सुन्दरप्रकाश-शब्दार्णव' नामक कोश-ग्रंथ की रचना वि० सं० १६१९ में की है। इसकी हस्तलिखित प्रति उस समय की याने वि. सं. १६१९ की लिखी हुई प्राप्त होती है। इस कोश में २६६८ पद्य हैं। इसकी ८८ पत्रों की हस्तलिखित प्रति सुजानगढ़ में श्री पनेचंदजी सिंघी के संग्रह में है।

पं० पद्मसुन्दर उपाध्याय १७ वीं शती के विद्वान् थे। सम्राट् अकबर के साथ उनका घनिष्ठ संबंध था। अकबर के समक्ष एक ब्राह्मण पंडित को शास्त्रार्थ में पराजित करने के उपलक्ष में अकबर ने उन्हें सम्मानित किया था तथा

उनके लिये आगरा में एक धर्मस्थानक बनवा दिया था। उपाध्याय पद्मसुन्दर ज्योतिष, वैद्यक, साहित्य और तर्क आदि शास्त्रों के धुरंधर विद्वान् थे। उनके पास आगरा में विशाल शास्त्रसंग्रह था। उनका स्वर्गवास होने के बाद सम्राट् अकबर ने वह शास्त्र संग्रह आचार्य हीरविजयसूरि को समर्पित किया था।

शब्दभेदनाममाला :

महेश्वर नामक विद्वान् ने 'शब्दभेदनाममाला' की रचना की है। इसमें संभवतः थोड़े अन्तर वाले शब्द जैसे—अप्पा, आप्पा; अगार, आगार; अराति, आराति आदि एकार्थक शब्दों का संग्रह होगा।

शब्दभेदनाममाला-वृत्ति :

'शब्दभेदनाममाला' पर खरतरगच्छीय भानुमेरु के शिष्य ज्ञानविमलसूरि ने वि. सं. १६५४ में ३८०० श्लोक-प्रमाण वृत्तिग्रन्थ की रचना की है।

नामसंग्रह :

उपाध्याय भानुचन्द्रगणि ने 'नामसंग्रह' नामक कोश की रचना की है। इसे 'नाममाला-संग्रह' अथवा 'विविक्तनाम-संग्रह' भी कहते हैं। इस 'नाममाला' को कई विद्वान् 'भानुचन्द्र-नाममाला' के नाम से भी पहिचानते हैं।[1] इस कोश में 'अभिधान-चिन्तामणि' के अनुसार ही छः कांड हैं और कांडों के शीर्षक भी उसी प्रकार हैं। उपाध्याय भानुचन्द्र मुनि सूरचन्द्र के शिष्य थे। उनको वि. सं. १६४८ में लाहौर में उपाध्याय की पदवी दी गई। वे सम्राट् अकबर के सामने स्वरचित 'सूर्यसहस्रनाम' प्रत्येक रविवार को सुनाया करते थे। उनके रचे हुए अन्य ग्रंथ इस प्रकार हैं :

१. रत्नपालकथानक (वि. सं. १६६२), २. सूर्यसहस्रनाम, ३. कादम्बरी-वृत्ति, ४. वसन्तराजशाकुन-वृत्ति, ५. विवेकविलास वृत्ति, ६. सारस्वत-व्याकरण वृत्ति।

शारदीयनाममाला :

नागपुरीय तपागच्छ के आचार्य चंद्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्तिसूरि ने 'शारदीयनाममाला' या 'शारदीयाभिधानमाला' नामक कोश ग्रन्थ की रचना १७ वी शताब्दी में की है। [illegible] श्लोक हैं।

आचार्य हर्षकीर्तिसूरि व्याकरण और वैद्यक में निपुण थे। उनके निम्नोक्त ग्रन्थ हैं :

१. योगचिन्तामणि, २. वैद्यकसारोद्धार, ३. धातुपाठ, ४. सेट्-अनिट्-कारिका, ५. कल्याणमंदिरस्तोत्र-टीका, ६. बृहच्छांतिस्तोत्र-टीका, ७. सिन्दूर-प्रकर, ८. श्रुतबोध-टीका आदि।

शब्दरत्नाकर :

खरतरगच्छीय साधुसुन्दरगणि ने वि० सं० १६८० में 'शब्दरत्नाकर' नामक कोशग्रंथ की रचना की है। साधुसुंदर साधुकीर्ति के शिष्य थे।

शब्दरत्नाकर पद्यात्मक कृति है। इसमें छः कांड—१. अर्हत्, २. देव, ३. मानव, ४. तिर्यक्, ५. नारक और ६. सामान्य कांड—हैं।[1]

इस ग्रंथ के कर्ता ने 'उक्तिरत्नाकर' और क्रियाकलापवृत्तियुक्त 'धातुरत्नाकर' की रचना भी की है। इनका जैसलमेर के किले में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ-तीर्थंकर की स्तुतिरूप स्तोत्र भी प्राप्त होता है।

अव्ययैकाक्षरनाममाला :

मुनि सुधाकलशगणि ने 'अव्ययैकाक्षरनाममाला' नामक ग्रंथ १४ वीं शताब्दी में रचा है। इसकी १ पत्र की १७ वीं शती में लिखी गई प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में विद्यमान है।

शेषनाममाला

खरतरगच्छीय मुनि श्री साधुकीर्ति ने 'शेषनाममाला' या 'शेषसंग्रहनाममाला' नामक कोशग्रंथ की रचना की है। इन्हीं के शिष्यरत्न साधुसुन्दरगणि ने वि०सं० १६८० में 'क्रियाकलाप' नामक वृत्तियुक्त 'धातुरत्नाकर', 'शब्दरत्नाकर' और 'उक्तिरत्नाकर' नामक ग्रंथों की रचना की है।

मुनि साधुकीर्ति ने यवनपति बादशाह अकबर की सभा में अन्यान्य धर्मपंथों के पंडितों के साथ वाद-विवाद में खूब ख्याति प्राप्त की थी। इसलिये बादशाह

---

१. यह ग्रंथ यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर से वी० सं० २४३९ में प्रकाशित हुआ है।

उनके लिये आगरा में एक धर्मस्थानक बनवा दिया था। उपाध्याय पद्मसुन्दर ज्योतिष, वैद्यक, साहित्य और तर्क आदि शास्त्रों के धुरंधर विद्वान् थे। उनके पास आगरा में विशाल शास्त्रसंग्रह था। उनका स्वर्गवास होने के बाद सम्राट् अकबर ने वह शास्त्र संग्रह आचार्य हीरविजयसूरि को समर्पित किया था।

शब्दभेदनाममाला :

महेश्वर नामक विद्वान् ने 'शब्दभेदनाममाला' की रचना की है। इसमें संभवतः थोड़े अन्तर वाले शब्द जैसे—अप्पा, आप्पा; अगार, आगार; अराति, आराति आदि एकार्थक शब्दों का संग्रह होगा।

शब्दभेदनाममाला-वृत्ति :

'शब्दभेदनाममाला' पर खरतरगच्छीय भानुमेरु के शिष्य ज्ञानविमलसूरि ने वि. सं. १६५४ में ३८०० श्लोक-प्रमाण वृत्तिग्रन्थ की रचना की है।

नामसंग्रह :

उपाध्याय भानुचन्द्रगणि ने 'नामसंग्रह' नामक कोश की रचना की है। इसे 'नाममाला-संग्रह' अथवा 'विविक्तनाम-संग्रह' भी कहते हैं। इस 'नाममाला' को कई विद्वान् 'भानुचन्द्र-नाममाला' के नाम से भी पहिचानते हैं।[1] इस कोश में 'अभिधान-चिन्तामणि' के अनुसार ही छः कांड हैं और कांडों के शीर्षक भी उसी प्रकार हैं। उपाध्याय भानुचन्द्र मुनि सूरचन्द्र के शिष्य थे। उनको वि. सं. १६४८ में लाहौर में उपाध्याय की पदवी दी गई। वे सम्राट् अकबर के सामने स्वरचित 'सूर्यसहस्रनाम' प्रत्येक रविवार को सुनाया करते थे। उनके रचे हुए अन्य ग्रंथ इस प्रकार हैं :

१. रत्नपालकथानक (वि. सं. १६६२), २. सूर्यसहस्रनाम, ३. कादम्बरी-वृत्ति, ४. वसन्तराजशाकुन-वृत्ति, ५. विवेकविलास वृत्ति, ६. सारस्वत-व्याकरण-वृत्ति।

शारदीयनाममाला :

नागपुरीय तपागच्छ के आचार्य चंद्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्तिसूरि ने 'शारदीयनाममाला' या 'शारदीयाभिधानमाला' नामक कोश-ग्रन्थ की रचना १७ वीं शताब्दी में की है। इसमें करीब ३०० श्लोक हैं।

---

१. देखिए—जैन ग्रन्थावली, पृ. ३११.

आचार्य हर्षकीर्तिसूरि व्याकरण और वैद्यक में निपुण थे। उनके निम्नोक्त ग्रन्थ हैं :

१. योगचिन्तामणि, २. वैद्यकसारोद्धार, ३. धातुपाठ, ४. सेट्-अनिट्-कारिका, ५. कल्याणमंदिरस्तोत्र-टीका, ६. बृहच्छांतिस्तोत्र-टीका, ७. सिन्दूर-प्रकर, ८. श्रुतबोध-टीका आदि।

शब्दरत्नाकर :

खरतरगच्छीय साधुसुन्दरगणि ने वि० सं० १६८० में 'शब्दरत्नाकर' नामक कोशग्रंथ की रचना की है। साधुसुंदर साधुकीर्ति के शिष्य थे।

शब्दरत्नाकर पद्यात्मक कृति है। इसमें छः कांड—१. अर्हत्, २. देव, ३. मानव, ४. तिर्यक्, ५. नारक और ६. सामान्य कांड—हैं।[1]

इस ग्रंथ के कर्ता ने 'उक्तिरत्नाकर' और क्रियाकलापवृत्तियुक्त 'धातुरत्नाकर' की रचना भी की है। इनका जैसलमेर के किले में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ-तीर्थंकर की स्तुतिरूप स्तोत्र भी प्राप्त होता है।

अव्ययैकाक्षरनाममाला :

मुनि सुधाकलशगणि ने 'अव्ययैकाक्षरनाममाला' नामक ग्रंथ १४ वीं शताब्दी में रचा है। इसकी १ पत्र की १७ वीं शती में लिखी गई प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में विद्यमान है।

शेषनाममाला

खरतरगच्छीय मुनि श्री साधुकीर्ति ने 'शेषनाममाला' या 'शेषसंग्रहनाममाला' नामक कोशग्रंथ की रचना की है। इन्हीं के शिष्यरत्न साधुसुन्दरगणि ने वि०सं० १६८० में 'क्रियाकलाप' नामक वृत्तियुक्त 'धातुरत्नाकर', 'शब्दरत्नाकर' और 'उक्तिरत्नाकर' नामक ग्रंथों की रचना की है।

मुनि साधुकीर्ति ने यवनपति बादशाह अकबर की सभा में अन्यान्य धर्मपंथों के पंडितों के साथ वाद-विवाद में खूब ख्याति प्राप्त की थी। इसलिये बादशाह

---

१. यह ग्रंथ यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर से वी० सं० २४३९ में प्रकाशित हुआ है।

एकाक्षरी-नानार्थकाण्ड :

दिगम्बर धरसेनाचार्य ने 'एकाक्षरी-नानार्थकाण्ड' नामक कोश की भी रचना की है।[१] इसमें ३५ पद्य हैं। क से लेकर क्ष पर्यंत वर्णों का अर्थ-निर्देश प्रथम २८ पद्यों में है और स्वरों का अर्थ-निर्देश बाद के ७ पद्यों में है।

एकाक्षरनाममालिका :

अमरचन्द्रसूरि ने 'एकाक्षरनाममालिका' नामक कोश-ग्रंथ की रचना १३ वीं शताब्दी में की है। इस कोश के प्रथम पद्य में कर्ता ने अमर कवीन्द्र नाम दर्शाया है और सूचित किया है कि विश्वाभिधानकोशों का अवलोकन करके इस 'एकाक्षरनाममालिका' की रचना की है। इसमें २१ पद्य हैं।

अमरचन्द्रसूरि ने गुजरात के राजा विसलदेव की राजसभा को विभूषित किया था। इन्होंने अपनी शीघ्रकवित्वशक्ति से संस्कृत में काव्य-समस्यापूर्ति करके समकालीन कविसमाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया था।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार है :

१. बालभारत, २. काव्यकल्पलता (कविशिक्षा), ३. पद्मानन्द-महाकाव्य, ४. स्यादिशब्दसमुच्चय।

एकाक्षरकोश :

महाक्षपणक ने 'एकाक्षरकोश' नाम से ग्रंथ की रचना की है। कवि ने प्रारम्भ में ही आगमों, अभिधानों, धातुओं और शब्दशासन से यह एकाक्षर-नामाभिधान किया है। ४१ पद्यों में क से क्ष तक के व्यञ्जनों के अर्थप्रतिपादन के बाद स्वरों के अर्थों का दिग्दर्शन किया है।

एक प्रति में कर्ता के सम्बन्ध में इस प्रकार पाठ मिलता है : एकाक्षरार्थसंलापः स्मृतः क्षपणकादिभिः। इस प्रकार नाम के अलावा इस ग्रन्थकार के बारे में कोई परिचय प्राप्त नहीं होता। यह कोश-ग्रंथ प्रकाशित है।[२]

---

१. पं० नन्दलाल शर्मा की भाषा-टीका के साथ सन् १९१२ में आकलूज-निवासी नाथारंगजी गांधी द्वारा यह अनेकार्थकोश प्रकाशित किया गया है।

२. एकाक्षरनाम-कोषसंग्रह : संपादक—पं० मुनि श्री रमणीकविजयजी; प्रकाशक—राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, वि० सं० २०२१.

एकाक्षरनाममाला :

'एकाक्षरनाममाला'[1] में ५० पद्य हैं। विक्रम की १५ वीं शताब्दी में इसकी रचना सुधाकलश मुनि ने की है। कर्त्ता ने श्री वर्धमान तीर्थंकर को प्रणाम करके अन्तिम पद्य में अपना परिचय देते हुए अपने को मलधारिगच्छभर्त्ता गुरु राजशेखरसूरि का शिष्य बताया है।

राजशेखरसूरि ने वि० सं० १४०५ में 'प्रबन्धकोश' (चतुर्विंशतिप्रबन्ध) नामक ग्रंथ की रचना की है।

उपाध्याय समयसुन्दरगणि ने सं० १६४९ में रचित 'अष्टलक्षार्थी—अर्थरत्नावली' में इस कोश का नामनिर्देश किया है और अवतरण दिया है।

सुधाकलशगणिरचित 'संगीतोपनिषत्' (सं० १३८०) और उसका सार–सारोद्धार (सं० १४०६) प्राप्त होता है जो सन् १९६१ में डा० उमाकान्त प्रेमानंद शाह द्वारा संपादित होकर गायकवाड ओरियन्टल सिरीज, १३३, मे 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' नाम से प्रकाशित हुआ है।

आधुनिक प्राकृत-कोश :

आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि ने साढ़े चार लाख श्लोक-प्रमाण 'अभिधानराजेन्द्र' नामक प्राकृत कोश ग्रंथ की रचना का प्रारम्भ वि० सं० १९४६ मे सियाणा में किया था और सं० १९६० में सूरत में उसकी पूर्णाहुति की थी। यह कोश सात विशालकाय भागों में है। इसमें ६०००० प्राकृत शब्दों का मूल के साथ संस्कृत में अर्थ दिया है और उन शब्दों के मूल स्थान तथा अवतरण भी दिये हैं। कहीं-कहीं तो अवतरणों में पूरे ग्रंथ तक दे दिये गये हैं। कई अवतरण संस्कृत में भी हैं। आधुनिक पद्धति से इसकी संकलना हुई है।[2]

इसी प्रकार इन्हीं विजयराजेन्द्रसूरि का 'शब्दाम्बुधिकोश' प्राकृत में है, जो अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

---

१. यह 'एकाक्षरनाममाला' हेमचन्द्राचार्य की 'अभिधानचिन्तामणि' की अनेक आवृत्तियों के साथ परिशिष्टों में (देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, विजयकस्तूरसूरिसंपादित 'अभिधानचिन्तामणि-कोश', पृ० २३६-२४०) और 'अनेकार्थरत्नमञ्जूषा' परिशिष्ट क (देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, ग्रन्थ ८१) में भी प्रकाशित है।

२. यह कोश रतलाम से प्रकाशित हुआ है।

पं० हरगोविन्ददास त्रिकमचंद शेठ ने 'पाइयसद्दमहण्णव' (प्राकृतशब्द-महार्णव) नामक प्राकृत-हिन्दी-शब्द-कोश रचा है जो प्रकाशित है।

शतावधानी श्री रत्नचंद्रजी मुनि ने 'अर्धमागधी-डिक्शनरी' नाम से आगमों के प्राकृत शब्दों का चार भाषाओं में अर्थ देकर प्राकृत-कोशग्रंथ बनाया है जो प्रकाशित है।

आगमोद्धारक आचार्य आनन्दसागरसूरि के 'अल्पपरिचितसैद्धान्तिक-शब्दकोश' के दो भाग प्रकाशित हुए हैं।

तौरुष्कीनाममाला :

सोममंत्री के पुत्र (जिनका नाम नहीं बताया गया है) ने 'तौरुष्की-नाममाला' अपर नाम 'यवननाममाला' नामक संस्कृत-फारसी-कोशग्रंथ की रचना की है, जिसकी वि० सं० १७०६ में लिखित ६ पत्रों की एक प्रति अहम-दाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के संग्रह में है। इसके अंत में इस प्रकार प्रशस्ति है :

राजर्पेर्देशरक्षाकृत् गुमास्त्यु स च कथ्यते।
द्दीमतिः स्त्वमित्युक्ता यवनीनाममालिका॥

इति श्रीजैनधर्मीय श्रीसोममन्त्रीश्वरात्मजविरचिते यवनीभाषायां तौरुष्कीनाममाला समाप्ता। सं० १७०६ वर्षे शाके १५७२ वर्तमाने ज्येष्ठशुक्लाष्टमीघस्रे श्रीसमालखानडेरके लिपिकृता महिमासमुद्रेण।

मुस्लिम राजकाल में संस्कृत-फारसी के व्याकरण और कोशग्रंथों की जैन-जैनेतरकृत बहुत-सी रचनाएँ मिलती हैं। बिहारी कृष्णदास, वेदांगराय और दो अज्ञात विद्वानों की व्याकरण-ग्रन्थों की रचनाएँ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में हैं। प्रतापभट्टकृत 'यवननाममाला' और अज्ञातकर्तृक एक फारसी-कोश की हस्तलिखित प्रतियाँ भी उपर्युक्त विद्यामंदिर के संग्रह में हैं।

फारसी-कोश :

किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने इस 'फारसी-कोश' की रचना की है। इसकी २० वीं सदी में लिखी गई ६ पत्रों की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लाल-भाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

तीसरा प्रकरण

अलङ्कार

वामन ने अपने 'काव्यालंकारसूत्र' में 'अलंकार' शब्द के दो अर्थ बताये हैं: १. सौन्दर्य के रूप में (सौन्दर्यमलंकारः) और २. अलंकरण के रूप में (अलंक्रियतेऽनेन, करणव्युत्पत्त्या पुनरलंकारशब्दोऽयमुपमादिषु वर्तते)। इनके मत में काव्यशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ को काव्यालंकार इसलिये कहते हैं कि उसमें काव्यगत सौन्दर्य का निर्देश और आख्यान किया जाता है। इससे हम 'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्' काव्य को ग्राह्य और श्रेष्ठ मानते हैं।

'अलंकार' शब्द के दूसरे अर्थ का इतिहास देखा जाय तो रुद्रदामन् के शिलालेख के अनुसार द्वितीय शताब्दी ईस्वी सन् में साहित्यिक गद्य और पद्य को अलंकृत करना आवश्यक माना जाता था।

'नाट्यशास्त्र' (अ० १७, १-५) में ३६ लक्षण गिनाये गये हैं। नाट्य में प्रयुक्त काव्य में इनका व्यवहार होता था। धीरे-धीरे ये लक्षण लुप्त होते गये और इनमें से कुछ लक्षणों को दण्डी आदि प्राचीन आलंकारिकों ने अलंकार के रूप में स्वीकार किया। भूषण[1] अथवा विभूषण नामक प्रथम लक्षण में अलंकारों और गुणों का समावेश हुआ।

'नाट्यशास्त्र' में उपमा, रूपक, दीपक, यमक—ये चार अलंकार नाटक के अलंकार माने गये हैं।

जैनों के प्राचीन साहित्य में 'अलंकार' शब्द का प्रयोग और उसका विवेचन कहाँ हुआ है और अलंकार-सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थ कौन-सा है, इसकी खोज करनी होगी।

जैन सिद्धांत-ग्रंथों में व्याकरण की सूचना के अलावा काव्यरस, उपमा आदि विविध अलंकारों का उपयोग हुआ है। ५ वीं शताब्दी में रचित नन्दिसूत्र में

---

१. भूषण की व्याख्या—अलंकारैर्गुणैश्चैव बहुभिः समलङ्कृतम्।
भूषणैरिव चित्रार्थैस्तद् भूषणमिति स्मृतम्॥

काव्यरस का उल्लेख है। 'स्वरपाहुड' में ११ अलंकारों का उल्लेख है और 'अनुयोगद्वारसूत्र' में नौ रसों के ऊहापोह के अलावा सूत्र का लक्षण बताते हुए कहा गया है :

निद्दोसं सारमंतं च हेउजुत्तमलंकियं।
उवणीअं सोवयारं च मियं महुरमेव च ॥

अर्थात् सूत्र निर्दोष, सारयुक्त, हेतुवाला, अलंकृत, उपनीत—प्रस्तावना और उपसंहारवाला, सोपचार—अविरुद्धार्थक और अनुप्रासयुक्त और मित—अल्पाक्षरी तथा मधुर होना चाहिये।

विक्रम संवत् के प्रारंभ के पूर्व ही जैनाचार्यों ने काव्यमय कथाएँ लिखने का प्रयत्न किया है। आचार्य पादलिप्त की तरंगवती, मलयवती, मगधसेना, संघदासगणिविरचित वसुदेवहिंडी तथा धूर्ताख्यान आदि कथाओं का उल्लेख विक्रम की पांचवीं-छठी सदी में रचित भाष्यों में आता है। ये ग्रन्थ अलंकार और रस से युक्त हैं।

विक्रम की ७ वीं शताब्दी के विद्वान् जिनदासगणि महत्तर और ८ वीं शताब्दी में विद्यमान आचार्य हरिभद्रसूरि के ग्रन्थों में 'कव्वालंकारेहिं जुत्तमलंकियं' काव्य को अलंकारों से युक्त और अलंकृत कहा है।

हरिभद्रसूरि ने 'आवश्यकसूत्र-वृत्ति' (पत्र ३७५) में कहा है कि सूत्र बत्तीस दोषों से मुक्त और 'छवि' अलंकार से युक्त होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि सूत्र आदि की भाषा भले ही सीधी-सादी स्वाभाविक हो परन्तु वह शब्दालंकार और अर्थालंकार से विभूषित होनी चाहिये। इससे काव्य का कलेवर भाव और सौंदर्य से देदीप्यमान हो उठता है। चाहे जैसी रुचिवाले को ऐसी रचना हृदयंगम होती है।

प्राचीन कवियों में पुष्पदंत ने अपनी रचना में रुद्रट आदि काव्यालंकारिकों का स्मरण किया है। जिनवल्लभसूरि, जिनका वि० सं० ११६७ में स्वर्गवास हुआ, रुद्रट, दंडी, भामह आदि आलंकारिकों के शास्त्रों में निपुण थे, ऐसा कहा गया है।

जैन साहित्य में विक्रम की नवीं शताब्दी के पूर्व किसी अलंकारशास्त्र की स्वतंत्र रचना हुई हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। नवीं शताब्दी में विद्यमान आचार्य बप्पभट्टिसूरिरचित 'कवि-शिक्षा' नामक रचना उपलब्ध नहीं है। प्राकृत भाषा में रचित 'अलंकारदर्पण' यद्यपि वि० सं० ११६५ के पूर्व की रचना है परंतु यह

किस संवत् या शताब्दी में रचा गया, यह निश्चित नहीं है। यदि इसे दसवीं शताब्दी का ग्रन्थ माना जाय तो यह अलंकारविषयक सर्वप्रथम रचना मानी जा सकती है। विक्रम की १० वीं शताब्दी में मुनि अजितसेन ने 'शृङ्गारमञ्जरी' ग्रंथ की रचना की है परन्तु वह ग्रन्थ अभी तक देखने में नहीं आया। उसके बाद थारापद्रीयगच्छ के नमिसाधु ने रुद्रट कवि के 'काव्यालंकार' पर वि० सं० ११२५ में टीका लिखी है। उसके बाद की तो आचार्य हेमचन्द्रसूरि, महामात्य अम्बाप्रसाद और अन्य विद्वानों की कृतियाँ उपलब्ध होती हैं।

आचार्य रत्नप्रभसूरिरचित 'नेमिनाथचरित' में अलंकारशास्त्र की विस्तृत चर्चा आती है। इस प्रकार अन्य विषयों के ग्रन्थों में प्रसंगवशात् अलंकार और रसविषयक उल्लेख मिलते हैं।

जैन विद्वानों की इस प्रकार की कृतियों पर जैनेतर विद्वानों ने टीका-ग्रंथों की रचना की हो, ऐसा 'वाग्भटालंकार' के सिवाय कोई ग्रन्थ सुलभ नहीं है। जैनेतर विद्वानों की कृतियों पर जैनाचार्यों के अनेक व्याख्याग्रंथ प्राप्त होते हैं। ये ग्रंथ जैन विद्वानो के गहन पाण्डित्य तथा विद्याविषयक व्यापक दृष्टि के परिचायक हैं।

अलङ्कारदर्पण (अलंकारदप्पण) :

'अलंकारदप्पण' नाम की प्राकृत भाषा में रची हुई एकमात्र कृति, जोकि वि० सं० ११६१ में तालपत्र पर लिखी गई है, जैसलमेर के भण्डार में मिलती है। उसका आन्तर निरीक्षण करने से पता लगता है कि यह ग्रन्थ संक्षिप्त होने पर भी अलंकार-ग्रन्थों में अति प्राचीन उपयोगी ग्रन्थ है। इसमें अलंकार का लक्षण बताकर करीब ४० उपमा, रूपक आदि अर्थालंकारों और शब्दालंकारों के प्राकृत भाषा में लक्षण दिये हैं। इसमें कुल १३४ गाथाएँ हैं। इसके कर्ता के विषय में इस ग्रन्थ में या अन्य ग्रन्थों में कोई सूचना नहीं मिलती। कर्ता ने मंगलाचरण में श्रुतदेवी का स्मरण इस प्रकार किया है :

> सुंदरपअविण्णासं विमलालंकाररेहिअसरीरं।
> सुह (?य) देविअं च कव्वं पणवियं पवरवण्णड्ढं ॥

इस पद्य से मालूम पड़ता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता कोई जैन होंगे जो वि० सं० ११६१ के पूर्व हुए होंगे।

मुनिराज श्री पुण्यविजयजी द्वारा जैसलमेर की प्रति के आधार पर की हुई प्रतिलिपि देखने में आई है।

कविशिक्षा :

आचार्य बप्पभट्टिसूरि (वि० सं० ८०० से ८९५) ने 'कविशिक्षा' या ऐसे ही नाम का कोई साहित्यग्रन्थ रचा हो, ऐसा विनयचन्द्रसूरिरचित 'काव्यशिक्षा' के उल्लेखों से ज्ञात होता है। आचार्य विनयचन्द्रसूरि ने 'काव्यशिक्षा' के प्रथम पद्य में 'बप्पभट्टिगुरोर्गिरम्' (पृष्ठ १) और 'लक्षणैर्जायते काव्यं बप्पभट्टि-प्रसादतः' (पृष्ठ १०९) इस प्रकार उल्लेख किये हैं। बप्पभट्टसूरि का 'कविशिक्षा' या इसी प्रकार के नाम का अन्य कोई ग्रन्थ आज तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

आचार्य बप्पभट्टिसूरि ने अन्य ग्रन्थों की भी रचना की थी। इनके 'तारागण' नामक काव्य का नाम लिया जाता है परन्तु वह अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

शृङ्गारमंजरी :

मुनि अजितसेन ने 'शृङ्गारमञ्जरी' नाम की कृति की रचना की है। इसमें ३ अध्याय हैं और कुल मिलाकर १२८ पद्य हैं। यह अलंकारशास्त्र-सम्बन्धी सामान्य ग्रन्थ है। इसमें दोष, गुण और अर्थालंकारों का वर्णन है।

कर्ता के विषय में कुछ भी जानकारी नहीं मिलती। सिर्फ रचना से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ विक्रम की १० वीं शताब्दी में लिखा गया होगा।

इसकी हस्तलिखित प्रति सूरत के एक भण्डार में है, ऐसा 'जिनरत्नकोश' पृ० ३८६ में उल्लेख है। कृष्णमाचारियर ने भी इसका उल्लेख किया है।[1]

काव्यानुशासन :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' वगैरह अनेक ग्रन्थों के निर्माण से सुविख्यात, गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह से सम्मानित और परमार्हत कुमारपाल नरेश के धर्माचार्य कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'काव्यानुशासन' नामक अलंकार-ग्रन्थ की वि० सं० ११९६ के आसपास में रचना की है।[2]

---

१. देखिए—हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० ७५२.

२. यह ग्रन्थ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई की 'काव्यमाला' ग्रन्थावली में स्वोपज्ञ दोनों वृत्तियों के साथ प्रकाशित हुआ था। फिर महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ। इसकी दूसरी आवृत्ति वहीं से सन् १९६५ में प्रकाशित हुई है।

संस्कृत के सूत्रबद्ध इस ग्रन्थ में आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय में काव्य का प्रयोजन और लक्षण है। दूसरे में रस का निरूपण है। तीसरे में शब्द, वाक्य, अर्थ और रस के दोष बताये गए हैं। चतुर्थ में गुणों की चर्चा की गई है। पाँचवें अध्याय में छः प्रकार के शब्दालंकारों का वर्णन है। छठे में २९ अर्थालंकारों के स्वरूप का विवेचन है। सातवें अध्याय में नायक, नायिका और प्रतिनायक के विषय में चर्चा की गई है। आठवें में नाटक के प्रेक्ष्य और श्रव्य—ये दो भेद और उनके उपभेद बताये गए हैं। इस प्रकार २०८ सूत्रों में साहित्य और नाट्य-शास्त्र का एक ही ग्रन्थ में समावेश किया गया है।

कई विद्वान् आचार्य हेमचंद्र के 'काव्यानुशासन' पर मम्मट के 'काव्यप्रकाश' की अनुकृति होने का आक्षेप लगाते हैं। बात यह है कि आचार्य हेमचंद्र ने अपने पूर्वज विद्वानों की कृतियों का परिशीलन कर उनमें से उपयोगी दोहन कर विद्यार्थियों के शिक्षण को लक्ष्य में रखकर 'काव्यानुशासन' को सरल और सुबोध बनाने की भरसक कोशिश की है। मम्मट के 'काव्यप्रकाश' में जिन विषयों की चर्चा १० उल्लास और २१२ सूत्रों में की गई है उन सब विषयों का समावेश ८ अध्यायों और २०८ सूत्रों में मम्मट से भी सरल शैली में किया है। नाट्यशास्त्र का समावेश भी इसी में कर दिया है, जबकि 'काव्यप्रकाश' में यह विभाग नहीं है।

भोजराज के 'सरस्वती-कण्ठाभरण' में विपुल संख्या में अलंकार दिये गये हैं। आचार्य हेमचंद्र ने इस ग्रन्थ का उपयोग किया है, ऐसा उनकी 'विवेकवृत्ति' से मालूम पड़ता है, लेकिन उन अलंकारों की व्याख्याएँ सुधार-सँवार कर अपनी दृष्टि से श्रेष्ठतर बनाने का कार्य भी आचार्य हेमचंद्र ने किया है।

जहाँ मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में ६१ अलंकार बताये हैं वहाँ हेमचंद्र ने छठे अध्याय में संकर के साथ २९ अर्थालंकार बताये हैं। इससे यही व्यक्त होता है कि हेमचंद्र ने अलंकारों की संख्या को कम करके अत्युपयोगी अलंकार ही बताये हैं। जैसे, इन्होंने संसृष्टि का अन्तर्भाव संकर में किया है। दीपक का लक्षण ऐसा दिया है जिससे इसमें तुल्ययोगिता का समावेश हो। परिवृत्ति नामक अलंकार का जो लक्षण दिया है उसमें मम्मट के पर्याय और परिवृत्ति दोनों का अन्तर्भाव हो जाता है। रस, भाव इत्यादि से संबद्ध रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्विन्, समाहित आदि अलंकारों का वर्णन नहीं किया गया। अनन्वय और उपमेयोपमा को उपमा के प्रकार मानकर अंत में उल्लेख कर दिया गया। प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त तथा दूसरे लेखकों द्वारा निरूपित निदर्शना का अन्तर्भाव

इन्होंने निदर्शन में ही कर दिया है। स्वभावोक्ति और अप्रस्तुतप्रशंसा को इन्होंने क्रमशः जाति और अन्योक्ति नाम दिया है।

हेमचंद्र की साहित्यिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

१. साहित्य-रचना का एक लाभ अर्थ की प्राप्ति, जो मम्मट ने कहा है, हेमचंद्र को मान्य नहीं है।
२. मुकुल भट्ट और मम्मट की तरह लक्षणा का आधार रूढ़ि या प्रयोजन न मानते हुए सिर्फ प्रयोजन का ही हेमचंद्र ने प्रतिपादन किया है।
३. अर्थशक्तिमूलक ध्वनि के १. स्वतःसंभवी, २. कविप्रौढोक्तिनिष्पन्न और ३. कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिनिष्पन्न—ये तीन भेद दर्शानेवाले ध्वनिकार से हेमचंद्र ने अपना अलग मत प्रदर्शित किया है।
४. मम्मट ने 'पुंस्त्वादपि प्रविचलेत्' पद्य श्लेषमूलक अप्रस्तुतप्रशंसा के उदाहरण में लिया है, तो हेमचंद्र ने इसे शब्दशक्तिमूलक ध्वनि का उदाहरण बताया है।
५. रसों में अलंकारों का समावेश करके बड़े-बड़े कवियों ने नियम का उल्लंघन किया है। इस दोष का ध्वनिकार ने निर्देश नहीं किया, जबकि हेमचंद्र ने किया है।

'काव्यानुशासन' में कुल मिलाकर १६३२ उद्धरण दिये गये हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि आचार्य हेमचन्द्र ने साहित्य-शास्त्र के अनेकों ग्रन्थों का गहरा परिशीलन किया था।

हेमचंद्र ने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के आधार पर अपने 'काव्यानुशासन' की रचना की है अतः इसमें कोई विशेषता नहीं है, यह सोचना भी हेमचंद्र के प्रति अन्याय ही होगा, क्योंकि हेमचंद्र का दृष्टिकोण व्यापक एवं शैक्षणिक था।

काव्यानुशासन-वृत्ति (अलङ्कारचूडामणि) :

'काव्यानुशासन' पर आचार्य हेमचंद्र ने शिष्यहितार्थ 'अलंकारचूडामणि' नामक स्वोपज्ञ लघुवृत्ति की रचना की है। हेमचंद्र ने इस वृत्ति-रचना का हेतु बताते हुए कहा है : आचार्यहेमचन्द्रेण विद्वत्प्रीत्यै प्रतन्यते।

यह वृत्ति विद्वानों की प्रीति संपादन करने के हेतु बनाई है। यह सरल है। इसमें कर्ता ने विवादग्रस्त बातों की सूक्ष्म विवेचना नहीं की है। यह भी कहना ठीक होगा कि इस वृत्ति से अलंकारविषयक विशिष्ट ज्ञान संपन्न नहीं हो सकता। वृत्तिकार ने इसमें ७४० उदाहरण और ६७ प्रमाण दिये हैं।

काव्यानुशासन-वृत्ति (विवेक) :

विशिष्ट प्रकार के विद्वानों के लिए हेमचंद्र ने स्वयं इसी 'काव्यानुशासन' पर 'विवेक' नामक वृत्ति की रचना की है। इस वृत्तिरचना का हेतु बताते हुए हेमचंद्र ने इस प्रकार कहा है :

विवरीतुं क्वचिद् दृब्धं नवं संदर्भितुं क्वचित्।
काव्यानुशासनस्यायं विवेकः प्रवितन्यते ॥

इस 'विवेक' वृत्ति में आचार्य ने ६२४ उदाहरण और २०१ प्रमाण दिये हैं। इसमें सभी विवादास्पद विषयों की चर्चा की गई है।

अलङ्कारचूडामणि-वृत्ति (काव्यानुशासन-वृत्ति) :

उपाध्याय यशोविजयगणि ने आचार्य हेमचंद्रसूरि के 'काव्यानुशासन' पर 'अलङ्कारचूडामणि-वृत्ति' की रचना की है, ऐसा उनके 'प्रतिमाशतक' की स्वोपज्ञ वृत्ति में उल्लिखित 'प्रपञ्चितं चैतदलङ्कारचूडामणिवृत्तावस्माभिः' से मालूम पड़ता है। यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

काव्यानुशासन-वृत्ति :

'काव्यानुशासन' पर आचार्य विजयलावण्यसूरि ने स्वोपज्ञ दोनों वृत्तियों के आधार पर एक नई वृत्ति की रचना की है, जिसका प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है।

काव्यानुशासन-अवचूरि :

'काव्यानुशासन' पर आचार्य विजयलावण्यसूरि के प्रशिष्य आचार्य विजयसुशीलसूरि ने छोटी-सी 'अवचूरि' की रचना की है।

कल्पलता :

'कल्पलता' नामक साहित्यिक ग्रन्थ पर 'कल्पलतापल्लव' और 'कल्पपल्लवशेष' नामक दो वृत्तियाँ लिखी गईं, ऐसा 'कल्पपल्लवशेष' की हस्तलिखित प्रति से ज्ञात होता है। यह प्रति वि० सं० १२०५ में तालपत्र पर लिखी हुई जैसलमेर के हस्तलिखित ग्रन्थभण्डार से प्राप्त हुई है। अतः कल्पलता का रचनाकाल वि० सं० १२०५ से पूर्व मानना उचित है।

'कल्पलता' के रचयिता कौन थे, इसका 'कल्पपल्लवशेष' में उल्लेख न होने से रचनाकार के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। वादी देवसूरि ने जो

'प्रमाणनयतत्त्वालोक' नामक दार्शनिक ग्रंथ निर्माण किया है उसपर उन्होंने 'स्याद्वादरत्नाकर' नामक स्वोपज्ञ विस्तृत वृत्ति की रचना की है। उसमें उन्होंने इस ग्रन्थ के विषय में इस प्रकार उल्लेख किया है :

श्रीमदम्बाप्रसादसचिवप्रवरेण कल्पलतायां तत्सङ्केते कल्पपल्लवे च प्रपञ्चितमस्तीति तत एवावसेयम्।

यह उल्लेख सूचित करता है कि 'कल्पलता' और उसकी दोनों वृत्तियाँ—इन तीनों ग्रन्थों के कर्ता महामात्य अम्बाप्रसाद थे। इन महामात्य के विषय में एक दानपत्र-लेख मिला है,[२] जिसके आधार पर निर्णय हो सकता है कि वे गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह के महामात्य थे और कुमारपाल के समय में भी महामात्य के रूप में विद्यमान थे।[३]

वादी देवसूरि जैसे प्रौढ़ विद्वान् ने महामात्य अम्बाप्रसाद के ग्रंथों का उल्लेख किया है, इससे मालूम होता है कि अम्बाप्रसाद के इन ग्रन्थों का उन्होंने अवलोकन किया था तथा उनकी विद्वत्ता के प्रति सूरिजी का आदरभाव था। वादी देवसूरि के प्रति अम्बाप्रसाद को भी वैसा ही आदरभाव था, इसका संकेत 'प्रभावकचरित'[४] के निम्नोक्त उल्लेख से होता है :

देवबोध नामक भागवत विद्वान् जब पाटन में आया तब उसने पाटन के विद्वानों को लक्ष्य करके एक श्लोक का अर्थ करने की चुनौती दी। जब छः महीने तक कोई विद्वान् उसका अर्थ नहीं बता सका तब महामात्य अम्बाप्रसाद ने सिद्धराज को वादी देवसूरि का नाम बताया कि वे इसका अर्थ बता सकते हैं।[५] सिद्धराज ने सूरिजी को सादर आमन्त्रण भेजा और उन्होंने श्लोक की स्पष्ट व्याख्या कह सुनाई। उसे सुनकर सब आनन्दित हुए।

---

१. परिच्छेद १, सूत्र २, पृ० २९; प्रकाशक—आर्हतमतप्रभाकर, पूना, वीर सं० २४५३.

२. गुजरातना ऐतिहासिक शिलालेखो, लेख १४४.

३. गुजरातनो मध्यकालीन राजपूत इतिहास, पृ० ३३२.

४. वादिदेवसूरिचरित, श्लोक ६१ से ६६.

५. षण्मासान्ते तदा चाम्बप्रसादो भूपतेः पुरः।
देवसूरिप्रभुं विज्ञराजं दर्शयति स्म च ॥ ६५ ॥
—प्रभावक-चरित, वादिदेवसूरिचरित.

अभिप्राय यह है कि जब वादी देवसूरि ने 'स्याद्वादरत्नाकर' की रचना की उसके पहले ही अम्बाप्रसाद ने अपने तीनों ग्रन्थों की रचना पूरी कर ली थी। चूँकि 'स्याद्वादरत्नाकर' अभी तक पूरा प्राप्त नहीं हुआ है इसलिए उसकी रचना का ठीक समय अज्ञात है। 'कल्पलता' ग्रन्थ भी अभी तक नहीं मिला है।

कल्पलतापल्लव (सङ्केत) :

'कल्पलता' पर महामात्य अम्बाप्रसाद-रचित 'कल्पलतापल्लव' नामक वृत्ति-ग्रन्थ था परन्तु वह अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिये उसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता।

कल्पपल्लवशेष (विवेक) :

'कल्पलता' पर 'कल्पपल्लवशेष' नामक वृत्ति की ६५०० श्लोक-परिमाण हस्तलिखित प्रति जैसलमेर के भंडार से प्राप्त हुई है। इसके कर्ता भी महामात्य अम्बाप्रसाद ही हैं। इसका आदि पद्य इस प्रकार है :

यत् पल्लवे न विवृतं दुर्बोधं मन्दबुद्धेश्चापि।
क्रियते कल्पलतायां तस्य विवेकोऽयमतिसुगमः॥

इस ग्रन्थ में अलंकार, रस और भावों के विषय में दार्शनिक चर्चा की गई है। इसमें कई उदाहरण अन्य कवियों के हैं और कई स्वनिर्मित हैं। संस्कृत के अलावा प्राकृत के भी अनेक पद्य हैं।

'कल्पलता' को विबुधमंदिर, 'पल्लव' को मंदिर का कलश और 'शेष' को उसका ध्वज कहा गया है।

वाग्भटालङ्कार :

'वाग्भटालंकार' के कर्ता वाग्भट हैं। प्राकृत में उनको वाहड कहते थे[1]। वे गुर्जरनरेश सिद्धराज के समकालीन और उनके द्वारा सम्मानित थे। उनके पिता का नाम सोम था और वे महामंत्री थे। कई विद्वान् उदयन महामंत्री का दूसरा नाम सोम था, ऐसा मानते हैं। यह बात ठीक हो तो ये वाग्भट वि० सं० ११७९ से १२१३ तक विद्यमान थे[2]।

---

१. बंभण्डसुत्तिसंपुड–मुत्तिअमणिणोपहाससमुह व्व।
सिरिवाहड त्ति तणओ आसि बुहो तस्स सोमस्स॥ (४. १४८, पृ ७२)

२. 'प्रबन्धचिन्तामणि' सर्ग २२, श्लोक ४७२, ६७४

८. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

आचार्य वर्धमानसूरि ने 'वाग्भटालंकार' पर वृत्ति की रचना की है, ऐसा जैन ग्रन्थावली में उल्लेख है।

९. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

मुनि कुमुदचन्द्र ने 'वाग्भटालंकार' पर वृत्ति की रचना की है।

१०. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

मुनि साधुकीर्ति ने 'वाग्भटालंकार' पर वि० सं० १६२०-२१ में वृत्ति की रचना की है।[1]

११. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

'वाग्भटालंकार' पर किसी अज्ञात नामा मुनि ने वृत्ति की रचना की है।

१२. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

दिगम्बर विद्वान् वादिराज ने 'वाग्भटालंकार' पर टीका की रचना वि० सं० १७२९ की दीपमालिका के दिन गुरुवार को चित्रा नक्षत्र में वृश्चिक लग्न के समय पूर्ण की।

वादिराज खंडेलवालवंशीय श्रेष्ठी पोमराज (पद्मराज) के पुत्र थे। वे खुद को अपने समय के धनंजय, आशाधर और वाग्भट के पदधारक यानी उनके जैसा विद्वान् बताते हैं। वे तक्षकनगरी के राजा भीम के पुत्र राजसिंह राजा के मन्त्री थे।

१३-५. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

प्रमोदमाणिक्यगणि ने भी 'वाग्भटालंकार' पर वृत्ति की रचना की है।

जैनेतर विद्वानों में अनन्तभट के पुत्र गणेश तथा कृष्णवर्मा ने 'वाग्भटालंकार' पर टीकाएँ लिखी हैं।

कविशिक्षा :

वादी देवसूरि के शिष्य आचार्य जयमङ्गलसूरि ने 'कविशिक्षा' नामक ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ ३०० श्लोक-परिमाण गद्य में लिखा हुआ है। इसमें अलंकार के विषय में अति संक्षेप में निर्देश करते हुए अनेक तथ्यपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

---

१. देखिए—जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, ५८१-२.

इस कृति में गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह के प्रशंसात्मक पद्य दृष्टान्त रूप में दिये गये हैं। यह कृति विक्रम की १३ वीं शताब्दी में रची गयी है।[1]

आचार्य जयमङ्गलसूरि ने मारवाड़ में स्थित सुंधा की पहाड़ी के संस्कृत शिलालेख की रचना की है। इनकी अपभ्रंश और जूनी गुजराती भाषा की रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

अलङ्कारमहोदधि :

'अलङ्कारमहोदधि' नामक अलंकारविषयक ग्रन्थ हर्षपुरीय गच्छ के आचार्य नरचन्द्रसूरि के शिष्य नरेन्द्रप्रभसूरि ने महामात्य वस्तुपाल की विनती से वि० सं० १२८० में बनाया।

यह ग्रन्थ आठ तरंगों में विभक्त है। मूल ग्रन्थ के ३०४ पद्य हैं। प्रथम तरंग में काव्य का प्रयोजन और उसके भेदों का वर्णन, दूसरे में शब्द-वैचित्र्य का निरूपण, तीसरे में ध्वनि का निर्णय, चतुर्थ में गुणीभूत व्यंग्य का निर्देश, पञ्चम में दोषों की चर्चा, छठे में गुणों का विवेचन, सातवें में शब्दालंकार और आठवें में अर्थालंकार का निरूपण किया है। ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है।[2]

अलङ्कारमहोदधि-वृत्ति :

'अलङ्कारमहोदधि' ग्रन्थ पर आचार्य नरेन्द्रप्रभसूरि ने स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना वि० सं० १२८२ में की है। यह वृत्ति ४५०० श्लोक-प्रमाण है। इसमें प्राचीन महाकवियों के ९८२ उदाहरणरूप विविध पद्य नाटक, काव्य आदि ग्रन्थों से उद्धृत किये गये हैं।

अहमदाबाद के डेला भण्डार की ३९ पत्रों की 'अर्थालङ्कार-वर्णन' नामक कृति कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है अपितु इस 'अलंकारमहोदधि' ग्रन्थ के आठवें तरंग और इसकी स्वोपज्ञ टीका की ही नकल है।

---

१. इस ग्रन्थ की ताडपत्रीय प्रति खंभात के शान्तिनाथ भण्डार में है। इसकी प्रेस कॉपी मुनिराज श्री पुण्यविजयजी के पास है।

२. यह 'अलंकारमहोदधि' ग्रन्थ गायकवाड ओरियण्टल सिरीज में छप गया है।

आचार्य नरेन्द्रप्रभसूरि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :—१. काकुत्स्थ-केलि[1], २. विवेककलिका, ३. विवेकपादप[2], ४. वस्तुपालप्रशस्तिकाव्य-श्लोक ३७, ५. वस्तुपालप्रशस्तिकाव्य-श्लोक १०४[3], ६. गिरनार के मन्दिर का शिला-लेख[4]।

काव्यशिक्षा :

आचार्य रविप्रभसूरि के शिष्य आचार्य विनयचन्द्रसूरि ने 'काव्यशिक्षा'[5] नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमें उन्होंने रचना-समय नहीं दिया है परन्तु आचार्य उदयसिंहसूरिरचित 'धर्मविधि-वृत्ति' का संशोधन इन्हीं आचार्य विनय-चन्द्रसूरि ने वि० सं० १२८६ में किया था, ऐसा उल्लेख प्राप्त होने से यह ग्रन्थ भी उस समय के आसपास में रचा गया होगा, ऐसा मान सकते हैं।

इस ग्रन्थ में छः परिच्छेद हैं : १. शिक्षा, २. क्रियानिर्णय, ३. लोककौशल्य, ४. बीजव्यावर्णन, ५. अनेकार्थशब्दसंग्रह और ६. रसभावनिरूपण। इसमें उदाहरण के लिये अनेक ग्रन्थों के उल्लेख और संदर्भ लिये हैं। आचार्य हेमचन्द्रसूरिरचित 'काव्यानुशासन' की विवेक-टीका में से अनेक पद्य और बाण के 'हर्षचरित' में से अनेक गद्यसन्दर्भ लिये हैं। कवि बनने के लिये आवश्यक जो सौ गुण रविप्रभसूरि ने बताये हैं उनका विस्तार से

---

१. 'पुरातत्त्व' त्रैमासिक : पुस्तक २, पृ० २४६ में दी हुई 'बृहट्टिप्पनिका' में काकुत्स्थकेलि के १५०० श्लोक-प्रमाण नाटक होने की सूचना है। आचार्य राजशेखरकृत 'न्यायकन्दलीपञ्जिका' में दो ग्रन्थों का उल्लेख इस प्रकार है :

"तस्य गुरोः प्रियशिष्यः प्रभुनरेन्द्रप्रभः प्रभयाढ्यः।
योऽलङ्कारमहोदधिमकरोत् काकुत्स्थकेलिं च ॥"

—पिटर्सन रिपोर्ट ३, २७५.

२. विवेककलिका और विवेकपादप—ये दोनों सूक्ति-संग्रह हैं।

३. 'अलंकारमहोदधि' ग्रन्थ में ये दोनों प्रशस्तियाँ परिशिष्टरूप में छप गई हैं।

४. यह लेख 'प्राचीन जैन लेखसंग्रह' में छप गया है।

५. यह लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित है।

उल्लेख किया गया है। इससे मालूम होता है कि आचार्य रविप्रभसूरि ने अलंकारसम्बन्धी किसी ग्रन्थ की रचना की होगी, जो आज उपलब्ध नहीं है। काव्यशिक्षा में ८४ देशों के नाम, राजा भोज द्वारा जीते हुए देशों के नाम, कवियों की प्रौढ़ोक्तियों से उत्पन्न उपमाएँ और लोक-व्यवहार के ज्ञान का भी परिचय दिया गया है। इस विषय में आचार्य ने इस प्रकार कहा है:।

इति लोकव्यवहारं गुरुपदविनयादवाप्य कविः सारम्।
नवनवभणितिश्रव्यं करोति सुतरां क्षणात् काव्यम्॥

चतुर्थ परिच्छेद में सारभूत वस्तुओं का निर्देश करके उन-उन नामों के निर्देशपूर्वक प्राचीन महाकवियों के काव्यों का और जैनगुरुओं के रचित शास्त्रों का अभ्यास करना आवश्यक बताया है। दूसरा क्रियानिर्णय-परिच्छेद व्याकरण के धातुओं का और पाँचवाँ अनेकार्थशब्दसंग्रह-परिच्छेद शब्दों के एकाधिक अर्थों का ज्ञान कराता है। छठे परिच्छेद में रसों का निरूपण है। इससे यह मालूम होता है कि आचार्य विनयचन्द्रसूरि अलंकार-विषय के अतिरिक्त व्याकरण और कोश के विषय में भी निष्णात थे। अनेक ग्रन्थों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वे एक बहुश्रुत विद्वान् थे।

कविशिक्षा और कवितारहस्य :

महामात्य वस्तुपाल के जीवन और उनके सुकृतों से सम्बन्धित 'सुकृत-संकीर्तनकाव्य' (सर्ग ११, श्लोक-संख्या ५५५) के रचयिता और ठक्कुर लावण्यसिंह के पुत्र महाकवि अरिसिंह महामात्य वस्तुपाल के आश्रित कवि थे। ये १३ वीं शताब्दी में विद्यमान थे। ये कवि वायडगच्छीय आचार्य जीवदेवसूरि के भक्त थे और कवीश्वर आचार्य अमरचन्द्रसूरि के कलागुरु थे।

आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने 'कविशिक्षा' नामक जो सूत्रबद्ध ग्रन्थ रचा है तथा उसपर जो 'काव्यकल्पलता' नामक स्वोपज्ञ वृत्ति बनाई है उसमें कई सूत्र इन अरिसिंह के रचे हुए होने का आचार्य अमरसिंहसूरि ने स्वयं उल्लेख किया है :

सारस्वतामृतमहार्णवपूर्णिमेन्दो-
र्मत्वाऽरिसिंहसुकवेः कवितारहस्यम्।
किञ्चिच्च तद्रचितमात्मकृतं च किञ्चिद्
व्याख्यास्यते त्वरितकाव्यकृतेऽत्र सूत्रम्॥

आचार्य नरेन्द्रप्रभसूरि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :—१. काकुत्स्थकेलि[1], २. विवेककलिका, ३. विवेकपादप[2], ४. वस्तुपालप्रशस्तिकाव्य–श्लोक ३७, ५. वस्तुपालप्रशस्तिकाव्य–श्लोक १०४[3], ६. गिरनार के मन्दिर का शिलालेख[4]।

काव्यशिक्षा :

आचार्य रविप्रभसूरि के शिष्य आचार्य विनयचन्द्रसूरि ने 'काव्यशिक्षा'[5] नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमें उन्होंने रचना-समय नहीं दिया है परन्तु आचार्य उदयसिंहसूरिरचित 'धर्मविधि-वृत्ति' का संशोधन इन्हीं आचार्य विनयचन्द्रसूरि ने वि० सं० १२८६ में किया था, ऐसा उल्लेख प्राप्त होने से यह ग्रन्थ भी उस समय के आसपास में रचा गया होगा, ऐसा मान सकते हैं।

इस ग्रन्थ में छः परिच्छेद हैं : १. शिक्षा, २. क्रियानिर्णय, ३. लोककौशल्य, ४. बीजव्यावर्णन, ५. अनेकार्थशब्दसंग्रह और ६. रसभावनिरूपण। इसमें उदाहरण के लिये अनेक ग्रन्थों के उल्लेख और संदर्भ लिये हैं। आचार्य हेमचन्द्रसूरिरचित 'काव्यानुशासन' की विवेक टीका में से अनेक पद्य और बाण के 'हर्षचरित' में से अनेक गद्यसन्दर्भ लिये हैं। कवि बनने के लिये आवश्यक जो सौ गुण रविप्रभसूरि ने बताये हैं उनका विस्तार से

---

१. 'पुरातत्त्व' त्रैमासिक : पुस्तक २, पृ० २४६ में दी हुई 'बृहट्टिप्पनिका' में काकुत्स्थकेलि के १५०० श्लोक-प्रमाण नाटक होने की सूचना है। आचार्य राजशेखरकृत 'न्यायकन्दलीपञ्जिका' में दो ग्रन्थों का उल्लेख इस प्रकार है :

"तस्य गुरोः प्रियशिष्यः प्रभुनरेन्द्रप्रभः प्रभवाढ्यः।
योऽलङ्कारमहोदधिमकरोत् काकुत्स्थकेलिं च॥"
—पिटर्सन रिपोर्ट ३, २७५.

२. विवेककलिका और विवेकपादप—ये दोनों सूक्ति-संग्रह हैं।

३. 'अलंकारमहोदधि' ग्रन्थ में ये दोनों प्रशस्तियाँ परिशिष्टरूप में छप गई हैं।

४. यह लेख 'प्राचीन जैन लेखसंग्रह' में छप गया है।

५. यह लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित है।

उल्लेख किया गया है। इससे मालूम होता है कि आचार्य रविप्रभसूरि ने अलंकारसम्बन्धी किसी ग्रन्थ की रचना की होगी, जो आज उपलब्ध नहीं है। काव्यशिक्षा में ८४ देशों के नाम, राजा भोज द्वारा जीते हुए देशों के नाम, कवियों की प्रौढ़ोक्तियों से उत्पन्न उपमाएँ और लोक-व्यवहार के ज्ञान का भी परिचय दिया गया है। इस विषय में आचार्य ने इस प्रकार कहा है :।

इति लोकव्यवहारं गुरुपदविनयादवाप्य कविः सारम्।
नवनवभणितिश्रव्यं करोति सुतरां क्षणात् काव्यम्॥

चतुर्थ परिच्छेद में सारभूत वस्तुओं का निर्देश करके उन-उन नामों के निर्देशपूर्वक प्राचीन महाकवियों के काव्यों का और जैनगुरुओं के रचित शास्त्रों का अभ्यास करना आवश्यक बताया है। दूसरा क्रियानिर्णय-परिच्छेद व्याकरण के धातुओं का और पाँचवाँ अनेकार्थशब्दसंग्रह-परिच्छेद शब्दों के एकाधिक अर्थों का ज्ञान कराता है। छठे परिच्छेद में रसों का निरूपण है। इससे यह मालूम होता है कि आचार्य विनयचन्द्रसूरि अलंकार-विषय के अतिरिक्त व्याकरण और कोश के विषय में भी निष्णात थे। अनेक ग्रन्थों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वे एक बहुश्रुत विद्वान् थे।

कविशिक्षा और कवितारहस्य :

महामात्य वस्तुपाल के जीवन और उनके सुकृतों से सम्बन्धित 'सुकृत-संकीर्तनकाव्य' (सर्ग ११, श्लोक-संख्या ५५५) के रचयिता और ठक्कुर लावण्यसिंह के पुत्र महाकवि अरिसिंह महामात्य वस्तुपाल के आश्रित कवि थे। ये १३ वीं शताब्दी में विद्यमान थे। ये कवि वायडगच्छीय आचार्य जीवदेवसूरि के भक्त थे और कवीश्वर आचार्य अमरचन्द्रसूरि के कलागुरु थे।

आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने 'कविशिक्षा' नामक जो सूत्रबद्ध ग्रन्थ रचा है तथा उसपर जो 'काव्यकल्पलता' नामक स्वोपज्ञ वृत्ति बनाई है उसमें कई सूत्र इन अरिसिंह के रचे हुए होने का आचार्य अमरसिंहसूरि ने स्वयं उल्लेख किया है :

सारस्वतामृतमहार्णवपूर्णिमेन्दो-
मत्वाऽरिसिंहसुकवेः कवितारहस्यम्।
किञ्चिच तद्रचितमात्मकृतं च किञ्चिद्
व्याख्यास्यते त्वरितकाव्यकृतेऽत्र सूत्रम्॥

इस पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि कवि अरिसिंह ने 'कवितारहस्य' नामक साहित्यिक ग्रन्थ की रचना की थी, परन्तु यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

कवि जल्हण की 'सूक्तिमुक्तावली' में अरसी ठक्कुर के चार सुभाषित उद्धृत हैं। इससे अरिसिंह के ही 'अरसी' होने का कई विद्वान् अनुमान करते हैं।

'कविशिक्षा' में ४ प्रतान, २१ स्तबक एवं ७९८ सूत्र हैं।

काव्यकल्पलता-वृत्ति :

संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रंथों की रचना करनेवाले, जैन-जैनेतर वर्ग में अपनी विद्वत्ता से ख्याति पानेवाले और गुर्जरनरेश विशलदेव (वि० सं० १२४३ से १२६१) की राजसभा को अलंकृत करनेवाले वायडगच्छीय आचार्य जिनदत्तसूरि के शिष्य आचार्य अमरचंद्रसूरि ने अपने कलागुरु कवि अरिसिंह के 'कवितारहस्य' को ध्यान में रखकर 'कविशिक्षा' नामक ग्रन्थ की श्लोकमय सूत्रबद्ध रचना की, जिसमें कई सूत्र कवि अरिसिंह ने और कुछ सूत्र आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने बनाये हैं।

इस 'कविशिक्षा' पर आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने स्वयं ३३५७ श्लोक-परिमाण काव्यकल्पलता-वृत्ति[1] की रचना की है। इसमें ४ प्रतान, २१ स्तबक और ७९८ सूत्र इस प्रकार हैं :

प्रथम छन्दःसिद्धि प्रतान है। इसमें १. अनुष्टुप्शासन, २. छन्दोऽभ्यास, ३. सामान्यशब्द, ४. वाद और ५. वर्ण्यस्थिति—इस प्रकार ५ स्तबक ११३ श्लोकबद्ध सूत्रों में हैं।

दूसरा शब्दसिद्धि प्रतान है। इसमें १. रूढ-यौगिक-मिश्रशब्द, २. यौगिकनाममाला, ३. अनुप्रास और ४. लाक्षणिक—इस प्रकार ४ स्तबक २०६ श्लोकबद्ध सूत्रों में हैं।

तीसरा श्लेष-सिद्धि प्रतान है। इसमें १. श्लेषव्युत्पादन, २. सर्ववर्णन, ३. उद्दिष्टवर्णन, ४. अद्भुतविधि और ५. चित्रप्रपञ्च—इस प्रकार पांच स्तबक १८९ श्लोकबद्ध सूत्रों में हैं।

---

१. यह 'कविकल्पलतावृत्ति' नाम से चौखंबा संस्कृत-सिरीज, काशी से छप गयी है।

चौथा अर्थसिद्धि प्रतान है। इसमें १. अलंकाराभ्यास, २. वर्ण्यार्थोत्पत्ति, ३. आकारार्थोत्पत्ति, ४. क्रियार्थोत्पत्ति, ५. प्रकीर्णक, ६. संख्या नामक और ७. समस्याक्रम—इस प्रकार सात स्तबक २९० श्लोक-बद्ध सूत्रों में हैं।

कवि-संप्रदाय की परंपरा न रहने से और तद्विषयक अज्ञानता के कारण कविता की उत्पत्ति में सौंदर्य नहीं आ पाता। उस विषय की साधना के लिये आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने उपर्युक्त विषयों से भरी हुई इस 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' की रचना की है।

कविता-निर्माण-विधि पर राजशेखर की 'काव्य-मीमांसा' कुछ प्रकाश अवश्य डालती है परंतु पूर्णतया नहीं। कवि क्षेमेन्द्र का 'कविकण्ठाभरण' मूल तत्त्वों का बोध कराता है परंतु वह पर्याप्त नहीं है। कवि हलायुध का 'कविरहस्य' सिर्फ क्रिया-प्रयोगों की विचित्रताओं का बोध कराता है इसलिए वह भी एकदेशीय है। जयमंगलाचार्य की 'कविशिक्षा' एक छोटा सा ग्रंथ है अतः वह भी पर्याप्त नहीं है। विनयचंद्र की 'काव्य-शिक्षा' में कुछ विषय अवश्य हैं परंतु वह भी पूर्ण नहीं है।

इससे यह स्पष्ट है कि काव्य-निर्माण के अभ्यासियों के लिये अमरचन्द्रसूरि की 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' और देवेश्वर की 'काव्यकल्पलता' ये दोनों ग्रन्थ उपयोगी हैं। देवेश्वर ने अपनी काव्यकल्पलता की अमरचन्द्रसूरि की वृत्ति के आधार पर संक्षेप में रचना की है।[1]

आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने सरस्वती की साधना करके सिद्धकवित्व प्राप्त किया था। उनके आशुकवित्व के बारे में प्रबन्धों में कई बातें उल्लिखित हैं।

जब आचार्य अमरचंद्रसूरि विशलदेव राजा की विनती से उनके राजदरबार में आये तब सोमेश्वर, सोमादित्य, कमलादित्य, नानाक पंडित वगैरह महाकवि उपस्थित थे। उन सभी ने उनसे समस्याएँ पूछीं। उस समय उन्होंने १०८ समस्याओं की पूर्ति की थी जिससे वे आशुकवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। नानाक पंडित ने 'गीतं न गायतितरां युवतिर्निशासु' यह पाद देकर समस्या पूर्ण करने को कहा तब अमरचंद्रसूरि ने झट से इस प्रकार समस्यापूर्ति कर दी :

---

१. प्रथम प्रतान के पांचवें स्तबक का 'असतोऽपि निबन्धेन' से लेकर 'ऐक्यमेवाभिसंमतम्' तक का पूरा पाठ देवेश्वर ने अपनी 'काव्यकल्पलता' में लिया है।

श्रुत्वा ध्वनेर्मधुरतां सहसावतीर्णे
भूमौ मृगे विगतलाञ्छन एव चन्द्रः।
मा गान्मदीयवदनस्य तुलामतीव-
गीतं न गायतितरां युवतिर्निशासु॥

इस समस्यापूर्ति से सब प्रसन्न हुए और आचार्य अमरचंद्रसूरि समस्त कवि-मंडल में श्रेष्ठ कवि के रूप में मान पाने लगे। वे 'वेणीकृपाण अमर' नाम से भी प्रख्यात हैं।

इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की है, जिनके आधार पर मालूम होता है कि ये व्याकरण, अलंकार, छंद इत्यादि विषयों में बड़े प्रवीण थे। इनकी रचना-शैली सरल, मधुर, स्पष्ट और नैसर्गिक है। इनकी रचनाएँ शब्दालंकारों और अर्थालंकारों से मनोहर बनी हैं। इनके अन्य ग्रन्थ ये हैं: १. स्यादिशब्द-समुच्चय, २. पद्मानन्दकाव्य, ३. बालभारत, ४. छंदोरत्नावली, ५. द्रौपदी-स्वयंवर,[1] ६. काव्यकल्पलतामञ्जरी, ७. काव्यकल्पलता परिमल, ८. अलंकार-प्रबोध, ९. सूक्तावली, १०. कलाकलाप आदि।

काव्यकल्पलतापरिमल-वृत्ति तथा काव्यकल्पलतामञ्जरी-वृत्ति :

'काव्यकल्पलता वृत्ति' पर ही आचार्य अमरचंद्रसूरि ने स्वोपज्ञ 'काव्यकल्पलतामञ्जरी', जो अभीतक प्राप्त नहीं हुई है, तथा ११२२ श्लोक-परिमाण 'काव्य-कल्पलतापरिमल' वृत्तियों की रचना की है।[2]

काव्यकल्पलतावृत्ति-मकरन्दटीका :

'काव्यकल्पलतावृत्ति' पर आचार्य हीरविजयसूरि के शिष्य शुभविजयजी ने वि० सं० १६६५ में (जहाँगीर बादशाह के राज्यकाल में) आचार्य विजय-देवसूरि की आज्ञा से ३१९६ श्लोक-परिमाण एक टीका रची है।[3]

---

१. यह ग्रंथ अनुपलब्ध है।

२. 'काव्यकल्पलतापरिमल' की दो हस्तलिखित अपूर्ण प्रतियाँ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में हैं।

३. इसकी प्रतियाँ जैसलमेर के भंडार में और अहमदाबादस्थित हाजा पटेल की पोल के उपाश्रय में हैं। यह टीका प्रकाशित नहीं हुई है।

इनके रचे अन्य ग्रंथ इस प्रकार हैं: १. हैमनाममाला-बीजक, २. तर्कभाषा-वार्तिक (सं० १६६३), ३. स्याद्वादभाषा–वृत्तियुत (सं० १६६७), ४. कल्पसूत्र-टीका, ५. प्रश्नोत्तररत्नाकर (सेनप्रश्न)।

काव्यकल्पलतावृत्ति-टीका :

जिनरत्नकोश के पृ० ८९ में उपाध्याय यशोविजयजी ने ३२५० श्लोक-परिमाण एक टीका की आचार्य अमरचंद्रसूरि की 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' पर रचना की है, ऐसा उल्लेख है।[1]

काव्यकल्पलतावृत्ति-बालावबोध :

नेमिचंद्र भंडारी नामक विद्वान् ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' पर जूनी गुजराती में 'बालावबोध' की रचना की है। इन्होंने 'षष्टिशतक' प्रकरण भी बनाया है।

काव्यकल्पलतावृत्ति-बालावबोध :

खरतरगच्छीय मुनि मेरुसुन्दर ने वि० सं० १५३५ में 'काव्यकल्पलतावृत्ति' पर जूनी गुजराती में एक अन्य 'बालावबोध' की रचना की है। इन्होंने षष्टि-शतक, विदग्धमुखमंडन, योगशास्त्र इत्यादि ग्रंथों पर बालावबोधों की रचना की है।

अलङ्कारप्रबोध :

आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने 'अलङ्कारप्रबोध' नामक ग्रंथ की रचना वि० सं० १२८० के आसपास में की है। इस ग्रंथ का उल्लेख आचार्य ने अपनी 'काव्य-कल्पलता वृत्ति' (पृ० ११६) में किया है। यह ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

काव्यानुशासन :

महाकवि वाग्भट ने 'काव्यानुशासन' नामक अलंकार-ग्रन्थ की रचना १४ वीं शताब्दी में की है। वे मेवाड़ देश में प्रसिद्ध जैन श्रेष्ठी नेमिकुमार के पुत्र और राहड के लघु बन्धु थे।

यह ग्रन्थ पाँच अध्यायों में गद्य में सूत्रबद्ध है। प्रथम अध्याय में काव्य का प्रयोजन और हेतु, कवि-समय, काव्य का लक्षण और गद्य आदि तीन

---

१. इसकी प्रति अहमदाबाद के विमलगच्छ के उपाश्रय में है, ऐसा सूचित किया गया है।

भेद, महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चंपू, मिश्रकाव्य, रूपक के दस भेद और गेय—इस प्रकार विविध विषयों का संग्रह है।

दूसरे अध्याय में पद और वाक्य के दोष, अर्थ के चौदह दोष, दूसरों द्वारा निर्दिष्ट दस गुण, तीन गुणों के सम्बन्ध में अपना स्पष्ट अभिप्राय और तीन रीतियों के बारे में उल्लेख है।

तीसरे अध्याय में ६३ अलंकारों का निरूपण है। इसमें अन्य, अपर, आशिष्, उभयन्यास, पिहित, पूर्व, भाव, मत और लेश—इस प्रकार कितने ही विरल अलंकारों का निर्देश है।

चतुर्थ अध्याय में शब्दालंकार के चित्र, श्लेष, अनुप्रास, वक्रोक्ति, यमक और पुनरुक्तवदाभास—ये भेद और उनके उपभेद बताये गए हैं।

पञ्चम अध्याय में नव रस, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी, नायक और नायिका के भेद, काम की दस दशाएँ और रस के दोष—इस प्रकार विविध विषयों की चर्चा है।

इन सूत्रों पर स्वोपज्ञ 'अलंकारतिलक' नामक वृत्ति की रचना वाग्भट ने की है। इसमें काव्य-वस्तु का स्फुट निरूपण और उदाहरण दिये गए हैं। चन्द्रप्रभकाव्य, नेमिनिर्वाण-काव्य, राजीमती-परित्याग, सीता नामक कवयित्री और अब्धिमंथन जैसे (अपभ्रंश) ग्रन्थों के पद्य उदाहरण के रूप में दिये गए हैं। काव्यमीमांसा और काव्यप्रकाश का इसमें खूब उपयोग किया गया है। इसमें 'वाग्भटालंकार' का भी उल्लेख है। विविध देशों, नदियों और वनस्पतियों का उल्लेख तथा मेदपाट, राहडपुर और नलोटकपुर का निर्देश किया गया है। कवि के पिता नेमिकुमार का भी उल्लेख है। इनके दो अन्य ग्रन्थों—छंदोनुशासन और ऋषभचरित—का भी उल्लेख मिलता है।

कवि ने टीका के अन्त में अपनी नम्रता प्रकट की है।[1] ये अपने को द्वितीय वाग्भट बताते हुए लिखते हैं कि राजा राजसिंह दूसरे जयसिंहदेव हैं, तक्षकनगर दूसरा अणहिल्लपुर है और मैं वादिराज दूसरा वाग्भट हूँ।

---

१. श्रीमद्भीमनृपालजस्य बलिनः श्रीराजसिंहस्य मे
सेवायामवकाशमाप्य विहिता टीका शिशूनां हिता।
हीनाधिक्यवचो यदत्र लिखितं तद् वै बुधैः क्षम्यतां
गार्हस्थ्यावनिनाथसेवनधियः कः स्वस्थतामाप्नुयात् ॥

शृंगारार्णवचन्द्रिका :

दिगंबर जैनमुनि विजयकीर्ति के शिष्य विजयवर्णी[1] ने 'शृंगारार्णवचन्द्रिका' नामक अलंकार-ग्रन्थ की रचना की है। दक्षिण कनाडा जिले में राज करने-वाले जैन राजवंशों में बंगवंशीय (गंगवंशीय) राजा कामराय बंग जो शक सं० ११८६ (सन् १२६४, वि० सं० १३२०) में सिंहासनारूढ हुआ था, की प्रार्थना से कविवर विजयवर्णी ने इस ग्रंथ की रचना की। वे स्वयं कहते हैं :

> इत्थं नृपप्रार्थितेन मयाऽलङ्कारसंग्रहः।
> क्रियते सूरिणा (? वर्णिना) नाम्ना शृंगारार्णवचन्द्रिका ॥

इस ग्रंथ में काव्य के गुण, रीति, दोष, अलंकार वगैरह का निरूपण करते हुए जितने भी पद्यमय उदाहरण दिये गये हैं वे सब राजा कामराय बंग के प्रशंसात्मक हैं। अन्त में वर्णीजी कहते हैं :

श्रीवीरनरसिंहकामरायबङ्गनरेन्द्रशरदिन्दुसन्निभकीर्तिप्रकाशके शृङ्गारार्णवचन्द्रिकानाम्नि अलंकारसंग्रहे ॥

कवि ने प्रारंभ में ७ पद्यों मे सुप्रसिद्ध कन्नड कवि गुणवर्मा का स्मरण किया है। अन्य पद्यों से बंगवाड़ी की तत्काल समृद्धि की स्पष्ट झलक मिलती है तथा कदंब राजवंश के विषय में भी सूचना मिलती है।

'शृंगारार्णवचंद्रिका' में दस परिच्छेद इस प्रकार हैं: १. वर्ण-गण-फल-निर्णय, २. काव्यगतशब्दार्थनिर्णय, ३. रसभावनिर्णय, ४. नायकभेदनिर्णय, ५. दशगुणनिर्णय, ६. रीतिनिर्णय, ७. वृत्ति (त्त) निर्णय, ८. शय्यापागनिर्णय, ९. अलंकारनिर्णय, १०. दोष गुणनिर्णय। यह सरल और स्वतन्त्र ग्रन्थ है।

अलङ्कारसंग्रह :

कन्नड जैनकवि अमृतनन्दी ने 'अलङ्कारसंग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसे 'अलंकारसार' भी कहते हैं। 'कन्नडकविचरिते' (भा० २, पृ० ३३) से ज्ञात होता है कि अमृतनन्दी १३ वीं शताब्दी में हुए थे।

'रसरत्नाकर' नामक कन्नड अलंकारग्रन्थ की भूमिका में ए० वेंकटराव तथा एच० टी० शेष आयंगर ने 'अलंकारसंग्रह' के बारे मे इस प्रकार परिचय दिया है :

---

१. श्रीमद्विजयकीर्त्याख्यगुरुराजपदाम्बुजम् ॥ ५ ॥

अमृतनंदी का 'अलंकारसंग्रह' नामक एक ग्रन्थ है। उसके प्रथम परिच्छेद में वर्णगणविचार, दूसरे में शब्दार्थनिर्णय, तीसरे में रसनिर्णय, चतुर्थ में नेतृभेद-विचार, पञ्चम में अलंकार-निर्णय, छठे में दोषगुणालंकार, सातवें में सन्ध्यङ्गनिरूपण, आठवें में वृत्ति (त्त) निरूपण और नवम परिच्छेद में काव्यालंकारनिरूपण है।[1]

यह उनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। प्राचीन आलंकारिकों के ग्रन्थों को देखकर मन्व भूपति की अनुमति से उन्होंने यह संग्रहात्मक ग्रन्थ बनाया। ग्रन्थकार स्वयं इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं :

संचित्यैकत्र कथय सौकर्याय सतामिति।
मया तत्प्रार्थितेनेत्थममृतानन्दयोगिना ॥ ८ ॥

मन्व भूपति के पिता, वंश, धर्म तथा काव्यविषयक जिज्ञासा के बारे में भी ग्रन्थकार ने कुछ परिचय दिया है।[2] मन्व भूपति का समय सन् १२९९ (वि० सं० १३५५) के आसपास माना जाता है।

अलंकारमंडन :

मालवा—मांडवगढ़ के सुलतान आलमशाह के मंत्री मंडन ने विविध विषयों पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उनमें अलंकार-साहित्य विषय का 'अलंकारमंडन' भी है। इसका रचना-समय वि० १५ वीं शताब्दी है। इसमें पाँच परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में काव्य के लक्षण, उसके प्रकार और रीतियों का निरूपण है। द्वितीय परिच्छेद में दोषों का वर्णन है। तीसरे परिच्छेद में गुणों का स्वरूपदर्शन है। चौथे परिच्छेद में रसों का निदर्शन है। पाँचवें परिच्छेद में अलंकारों का विवरण है।

---

१. वर्णशुद्धिं काव्यवृत्तिं रसान् भावानन्तरम्।
नेतृभेदानलङ्कारान् दोषानपि च तद्गुणान् ॥ ६ ॥
नाट्यधर्मान् रूपकोपरूपकाणां भिदा अपि (?)।
धातुप्रबन्धभेदांश्च विकीर्णांस्तत्र तत्र तु ॥ ७ ॥

२. उद्दामफलदां गुर्वीमुदधिमेखलाम् (?)।
मन्त्रिभूमिपतिः शास्ति जिनपादाब्जषट्पदः ॥ ३ ॥
तस्य पुत्रस्त्यागमहासमुद्रविदिताङ्कितः।
सोमसूर्यकुलोत्तंसमहितो मन्वभूपतिः ॥ ४ ॥
स कदाचित् सभामध्ये काव्यालापकथान्तरे।
अपृच्छदमृतानन्दमादरेण कवीश्वरम् ॥ ५ ॥

मंत्री मण्डन श्रीमालवंशीय सोनगरा गोत्र के थे। वे जालोर के मूल निवासी थे परन्तु उनकी सातवीं-आठवीं पीढ़ी के पूर्वज मांडवगढ़ में आकर रहने लगे थे। उनके वंश में मंत्री पद भी परंपरागत चला आता था। मंडन भी आलमशाह (हुशंगगोरी—वि० सं० १४६१-१४८८) का मंत्री था। आलमशाह विद्याप्रेमी था अतः मंडन पर उसका अधिक स्नेह था। वह व्याकरण, अलंकार, संगीत और साहित्यशास्त्र में प्रवीण तथा कवि था।

उसका चचेरा भाई धनद भी बड़ा विद्वान् था। उसने भर्तृहरि की 'सुभाषितत्रिशती' के समान नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक—इन तीन शतकों की रचना की थी।

उनके वंश में विद्या के प्रति जैसा अनुराग था वैसी ही धर्म में उत्कट श्रद्धा-भक्ति थी। वे सब जैनधर्मावलम्बी थे। आचार्य जिनभद्रसूरि के उपदेश से मंत्री मण्डन ने प्रचुर धन व्यय करके जैन सिद्धांत-ग्रन्थों का सिद्धान्तकोश लिखवाया था।

मंत्री मंडन विद्वान् होने के साथ ही धनी भी था। वह विद्वानों के प्रति अत्यन्त स्नेह रखता था और उनका उचित सम्मान कर दान देता था।

महेश्वर नामक विद्वान् कवि ने मंडन और उसके पूर्वजों का ब्यौरेवार वर्णन करनेवाला 'काव्यमनोहर' ग्रन्थ लिखा है। उससे उसके जीवन की बहुत-कुछ बातों का पता लगता है। मंडन ने अपने प्रायः सब ग्रन्थों के अन्त में मण्डन शब्द जोड़ा है। मंडन के अन्य ग्रन्थ ये हैं :

१. सारस्वतमंडन, २. उपसर्गमंडन, ३. शृंगारमंडन, ४. काव्यमंडन, ५. चंपूमंडन, ६. कादम्बरीमंडन, ७. संगीतमंडन, ८. चंद्रविजय, ९. कविकल्पद्रुमस्कन्ध।

काव्यालंकारसार :

कालिकाचार्य-संतानीय खंडिलगच्छीय आचार्य जिनदेवसूरि के शिष्य आचार्य भावदेवसूरि ने पंद्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'काव्यालंकारसार'[1] नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस पद्यात्मक कृति के प्रथम पद्य में इसका 'काव्यालंकारसारसंकलना', प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में 'अलंकारसार' और आठवें अध्याय के अंतिम पद्य में 'अलंकारसंग्रह' नाम से उल्लेख किया है :

---

१. यह ग्रन्थ 'अलंकारमहोदधि' के अन्त में गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है।

आचार्यभावदेवेन प्राच्यशास्त्रमहोदधेः ।
आदाय साररत्नानि कृतोऽलंकारसंग्रहः ॥

यह छोटा-सा परन्तु अत्यन्त उपयोगी ग्रंथ है। इसमें ८ अध्याय और १३१ श्लोक हैं। ८ अध्यायों का विषय इस प्रकार है :

१. काव्य का फल, हेतु और स्वरूपनिरूपण, २. शब्दार्थस्वरूपनिरूपण, ३. शब्दार्थदोषप्रकटन, ४. गुणप्रकाशन, ५. शब्दालंकारनिर्णय, ६. अर्थालंकार-प्रकाशन, ७. रीतिस्वरूपनिरूपण, ८. भावाविर्भाव।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार मालूम होते हैं : १. पार्श्वनाथ चरित (वि० सं० १४१२), २. जइदिणचरिया (यतिदिनचर्या), ३. कालिकाचार्यकथा।

अकबरसाहिशृंगारदर्पण :

जैनाचार्य भट्टारक पद्ममेरु के शिष्यरत्न पद्मसुन्दरगणि ने 'अकबरसाहिशृङ्गार-दर्पण' नामक अलंकार-ग्रन्थ की रचना की है। ये नागोरी तपागच्छ के भट्टारक यति थे। उनकी परम्परा के हर्षकीर्तिसूरि ने 'धातुतरङ्गिणी' में उनकी योग्यता का परिचय इस प्रकार दिया है :[1]

मुगल सम्राट अकबर की विद्वत्सभा में पद्मसुन्दर ने किसी महापण्डित को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। अकबर ने अपनी विद्वत्सभा में उनको संमान्य विद्वानों में स्थान दिया था। उन्हें रेशमी वस्त्र, पालकी और गाँव भेंट में दिया था। वे जोधपुर के राजा मालदेव के सम्मान्य विद्वान् थे।

'अकबरसाहिशृङ्गारदर्पण' नाम से ही मालूम होता है कि यह ग्रन्थ बादशाह अकबर को लक्षित कर लिखा गया है। ग्रन्थकार ने रुद्र कवि के 'शृङ्गारतिलक' की शैली का अनुसरण करके इसकी रचना की है परन्तु इसका प्रस्तुतीकरण मौलिक है। कई स्थलों में तो यह ग्रन्थ सौन्दर्य और शैली में उससे बढ़कर है। लक्षण और उदाहरण ग्रंथकर्ता के स्वनिर्मित हैं।

यह ग्रन्थ चार उल्लासों में विभक्त है। कुल मिलाकर इसमें ३४५ छोटे-बड़े

---

१ सा[illegible]देः संसदि पद्मसुन्दरगणिर्जित्वा महापण्डितं
क्षौ[illegible]-ग्राम सुखासनाद्यकबरश्रीसाहितो लब्धवान्।
हिन्दू[illegible]धिपमालदेवनृप[illegible] वदान्यो
श्रीमद्यो[illegible]पुरे [illegible]

पद्य हैं। इसके तीन उल्लासों में शृङ्गार का प्रतिपादन है और चतुर्थ में रसों का। इसमें नौ रस स्वीकार किये गये हैं।[1]

ग्रन्थकार की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :

१. रायमल्लाभ्युदयकाव्य (वि० सं० १६१५), २. यदुसुन्दरमहाकाव्य, ३. पार्श्वनाथचरित, ४. जम्बूस्वामिकथानक, ५. राजप्रश्नीयनाट्यपदभञ्जिका, ६. परमतव्यवच्छेदस्याद्वादद्वात्रिंशिका, ७. प्रमाणसुन्दर, ८. सारस्वतरूपमाला, ९. सुन्दरप्रकाशशब्दार्णव, १०. हायनसुन्दर, ११. षड्भाषागर्भितनेमिस्तव, १२. वरमङ्गलिकास्तोत्र, १३. भारतीस्तोत्र।

कविमुखमण्डन :

खरतरगच्छीय साधुकीर्ति मुनि के शिष्य महिमसुंदर के शिष्य पं० ज्ञानमेरु ने 'कविमुखमण्डन' नामक अलंकार-ग्रंथ की रचना की है। ग्रन्थ का निर्माण दौलतखाँ के लिये किया गया, ऐसा उल्लेख कवि ने किया है।[2]

पं० ज्ञानमेरु ने गुजराती भाषा में 'गुणकरण्डगुणावलीरास' एवं अन्य ग्रन्थ रचे हैं। यह रास-ग्रन्थ वि० सं० १६७६ में रचा गया।[3]

कविमदपरिहार :

उपाध्याय सकलचंद्र के शिष्य शांतिचंद्र ने 'कविमदपरिहार' नामक अलंकारशास्त्रसंबंधी एक ग्रंथ की रचना वि. सं. १७०० के आसपास में की है, ऐसा उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० ८२ में है।

कविमदपरिहार-वृत्ति :

मुनि शांतिचन्द्र ने 'कविमदपरिहार' पर स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है।

मुग्धमेधालंकार :

'मुग्धमेधालंकार' नामक अलंकारशास्त्रविषयक इस छोटी-सी कृति[4] के कर्ता रत्नमण्डनगणि हैं। इसका रचना-समय १७ वीं शती है।

---

१ यह ग्रंथ प्राध्यापक सी० के० राजा द्वारा संपादित होकर गंगा ओरियण्टल सिरीज, बीकानेर से सन् १९४३ में प्रकाशित हुआ है।

२. यह 'राजस्थान के जैन शास्त्र-भंडारों की ग्रन्थसूची' भा० २, पृ० २७८ में सूचित किया गया है। इस ग्रन्थ की १० पत्रों की प्रति उपलब्ध है।

३. 'जैन गूर्जर कविओ' भा० १, पृ० ४९५; भाग, ३, खंड, १, पृ० ९७९.

४. यह २ पत्रात्मक कृति पूना के भांडारकर ओरियंटल इन्स्टीट्यूट में है।

रत्नमंडनगणि ने उपदेशतरङ्गिणी आदि ग्रन्थों की भी रचना की है।

मुग्धमेधालंकार-वृत्ति :

'मुग्धमेधालंकार' पर किसी विद्वान् ने टीका लिखी है।[1]

काव्यलक्षण :

अज्ञातकर्तृक 'काव्यलक्षण' नामक २५०० श्लोक-परिमाण एक कृति का उल्लेख जैन ग्रंथावली, पृ० ३१६ पर है।

कर्णालंकारमञ्जरी :

त्रिमल्ल नामक विद्वान् ने 'कर्णालंकारमञ्जरी' नामक अलंकार-ग्रंथ की रचना की है, ऐसा उल्लेख जैन ग्रंथावली पृ० ३१५ में है।

प्रक्रान्तालंकार-वृत्ति :

जिनहर्ष के शिष्य ने 'प्रक्रान्तालंकार-वृत्ति' नामक ग्रन्थ की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रति पाटन के भंडार में विद्यमान है। इसका उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० २५७ में है।

अलंकार-चूर्णि :

'अलंकार-चूर्णि' नामक ग्रंथ किसी अज्ञातनामा रचनाकार की रचना है, जिसका उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० १७ में है।

अलंकारचिंतामणि :

दिगंबर विद्वान् अजितसेन ने 'अलंकारचिंतामणि'[2] नामक ग्रंथ की रचना १८ वीं शताब्दी में की है। उसमें पांच परिच्छेद हैं और विषय-वर्णन इस प्रकार है :

१. कविशिक्षा, २. चित्र (शब्द)-अलंकार, ३. यमकादिवर्णन, ४. अर्थालंकार और ५. रस आदि का वर्णन।

अलंकारचिंतामणि-वृत्ति :

'अलंकारचिंतामणि' पर किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने वृत्ति की रचना की है, यह उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० १७ में है।

---

१. इसकी २ पत्रों की प्रति भांडारकर ओरियंटल इन्स्टीट्यूट में है।

२. यह ग्रंथ सोलापुर से प्रकाशित हो गया है।

वक्रोक्तिपंचाशिका :

रत्नाकर ने 'वक्रोक्तिपंचाशिका' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसका उल्लेख जैन ग्रन्थावली, पृ० ३१२ में है। इसमें वक्रोक्ति के पचास उदाहरण हैं या वक्रोक्ति अलंकारविषयक पचास पद्य हैं, यह जानने में नहीं आया।

रूपकमञ्जरी :

गोपाल के पुत्र रूपचंद्र ने १०० श्लोक-परिमाण एक कृति की रचना वि० सं० १६४४ में की है। इसका उल्लेख जैन ग्रन्थावली, पृ० ३१२ में है। जिनरत्नकोश में इसका निर्देश नहीं है, परंतु यह तथ्य उसमें पृ० ३३२ पर 'रूपमञ्जरीनाममाला' के लिये निर्दिष्ट है। ग्रंथ का नाम देखते हुए उसमें रूपक अलंकार के विषय में निरूपण होगा, यह अनुमान होता है। इस दृष्टि से यह ग्रंथ अलंकार-विषयक माना जा सकता है।

रूपकमाला :

'रूपकमाला' नाम की तीन कृतियों के उल्लेख मिलते हैं :

१. उपाध्याय पुण्यनन्दन ने 'रूपकमाला' की रचना की है और उस पर समयसुन्दरगणि ने वि० सं० १६६३ में 'वृत्ति' की रचना की है।

२. पार्श्वचंद्रसूरि ने वि० सं० १५८६ में 'रूपकमाला' नामक कृति की रचना की है।

३. किसी अज्ञातनामा मुनि ने 'रूपकमाला' की रचना की है।

ये तीनों कृतियाँ अलंकारविषयक हैं या अन्यविषयक, यह शोधनीय है।

काव्यादर्श-वृत्ति :

महाकवि दंडी ने करीब वि० सं० ७०० में 'काव्यादर्श' ग्रंथ की रचना की है। उसमें तीन परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में काव्य की व्याख्या, प्रकार तथा वैदर्भी और गौडी—ये दो रीतियां, दस गुण, अनुप्रास और कवि बनने के लिये त्रिविध योग्यता आदि की चर्चा है। दूसरे परिच्छेद में ३५ अलंकारों का निरूपण है। तीसरे में यमक का विस्तृत निरूपण, भाँति-भाँति के चित्रबंध, सोलह प्रकार की प्रहेलिका और दस दोषों के विषय में विवरण है।

इस 'काव्यादर्श' पर त्रिभुवनचंद्र अपरनाम वादी सिंहसूरि ने[1] टीका की

---

१. ये वादी सिंहसूरि शायद वि० सं० १३२४ में 'प्रश्नशतक' की रचना करनेवाले कासद्रह गच्छ के नरचंद्रसूरि के गुरु हैं। देखिए—जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४१३

काव्यप्रकाश-वृत्ति :

उपाध्याय यशोविजयगणि ने 'काव्यप्रकाश' पर एक वृत्ति १७ वीं सदी में बनाई थी, जिसका थोड़ा-सा अंश अभी तक मिला है।

काव्यप्रकाश-खण्डन (काव्यप्रकाश-विवृति) :

महोपाध्याय सिद्धिचन्द्रगणि ने मम्मटरचित 'काव्यप्रकाश' की टीका लिखी है, जिसका नाम उन्होंने ग्रन्थ के प्रारंभ के पद्य ३ में 'काव्यप्रकाश-विवृति' बताया है[1] परंतु पद्य ५ में 'खण्डनताण्डवं कुर्मः' और 'तत्रादावनुवादपूर्वकं काव्यप्रकाशखण्डनमारभ्यते' ऐसे उल्लेख होने से इस टीका का नाम 'काव्यप्रकाशखण्डन' ही मालूम पड़ता है। रचना-समय वि० सं० १७१४ के करीब है।

इस टीका में दो स्थलों पर 'अस्मत्कृतबृहट्टीकातोऽवसेयः' और 'गुरुनाम्ना बृहट्टीकातः' ऐसे उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि इन्होंने इस खण्डनात्मक टीका के अलावा विस्तृत व्याख्या की भी रचना की थी, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

टीकाकार ने यह रचना आलोचनात्मक दृष्टि से बनाई है। आलोचना भी काव्यप्रकाशगत सब विचारों पर नहीं की गई है परंतु जिन विषयों में टीकाकार का कुछ मतभेद है उन विचारों का इसमें खण्डन करने का प्रयास किया गया है।

काव्य की व्याख्या, काव्य के भेद, रस और अन्य साधारण विषयों के जिन उल्लेखों को टीकाकार ने ठीक नहीं माना उन विषयों में अपने मन्तव्य को व्यक्त करने के लिये उन्होंने प्रस्तुत टीका का निर्माण किया है।[2]

सिद्धिचंद्रगणि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :

१. कादम्बरी-(उत्तरार्ध) टीका, २. शोभनस्तुति-टीका, ३. वृद्धप्रस्तावोक्ति-रत्नाकर, ४. भानुचन्द्रचरित, ५. भक्तामरस्तोत्र-वृत्ति, ६. तर्कभाषा-टीका, ७. सप्तपदार्थी-टीका, ८. जिनशतक-टीका, ९. वासवदत्ता-वृत्ति अथवा व्याख्या-टीका, १०. अनेकार्थोपसर्ग-वृत्ति, ११. धातुमञ्जरी, १२. आख्यातवाद-टीका, १३. प्राकृतसुभाषितसंग्रह, १४. सूक्तिरत्नाकर, १५. मङ्गलवाद, १६. सप्तस्मरण-

1. शाहेरकब्बरधराधिपमौलिमौलेरध्यापकः प्रथितविस्मयसद्गुणस्य ।
विद्वन्महाकृतहृतं सुधसिद्धिचन्द्रः काव्यप्रकाशविवृतिं कुरुतेऽस्य शिष्यः ॥
2. यह ग्रन्थ 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' में छप गया है।

वृत्ति, १७. लेखलिखनपद्धति, १८. संक्षिप्तकादम्बरीकथानक, १९. काव्य-प्रकाश-टीका।

सरस्वतीकण्ठाभरण-वृत्ति (पदप्रकाश):

अनेक ग्रन्थों के निर्माता मालवा के विद्याप्रिय भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठा-भरण' नामक काव्यशास्त्रसंबंधी ग्रंथ का निर्माण वि० सं० ११५० के आसपास में किया है। यह विशालकाय कृति ६४३ कारिकाओं मे मोटे तौर से संग्र-हात्मक है। इसमें काव्यादर्श, ध्वन्यालोक इत्यादि ग्रन्थों के १५०० पद्य उदा-हरणरूप में दिये गये हैं। इसमें पांच परिच्छेद हैं।

प्रथम परिच्छेद में काव्य का प्रयोजन, लक्षण और भेद, पद, वाक्य और वाक्यार्थ के सोलह-सोलह दोष तथा शब्द के चौबीस गुण निरूपित हैं।

द्वितीय परिच्छेद में २४ शब्दालंकारों का वर्णन है।

तृतीय परिच्छेद में २४ अर्थालंकारों का वर्णन है।

चतुर्थ परिच्छेद में शब्द और अर्थ के उपमा आदि अलंकारों का निरूपण है।

पञ्चम परिच्छेद में रस, भाव, नायक और नायिका, पांच संधियां, चार वृत्तियां वगैरह निरूपित हैं।

इस 'सरस्वतीकण्ठाभरण' पर भाण्डागारिक पार्श्वचन्द्र के पुत्र आजड ने 'पदप्रकाश' नामक टीका-ग्रंथ[1] की रचना की है। ये आचार्य भद्रेश्वरसूरि को गुरु मानते थे। इन्होंने भद्रेश्वरसूरि को बौद्ध तार्किक दिङ्नाग के समान बताया है। इस टीका-ग्रन्थ में प्राकृत भाषा की विशेषता के उदाहरण हैं तथा व्याक-रण के नियमों का उल्लेख है।

विदग्धमुखमण्डन-अवचूर्णि:

बौद्धधर्मी धर्मदास ने वि० सं० १३१० के आसपास में 'विदग्धमुखमंडन' नामक अलंकारशास्त्रसंबंधी कृति चार परिच्छेदों में रची है। इसमे प्रहेलिका और चित्रकाव्यसंबंधी जानकारी भी दी गई है।

इस ग्रन्थ पर जैनाचार्यों ने अनेक टीकाएँ रची हैं।

१४ वीं शताब्दी में विद्यमान खरतरगच्छीय आचार्य जिनप्रभसूरि ने 'विदग्धमुखमंडन' पर अवचूर्णि रची है।

---

१. इसकी हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रति पाटन के भंडार में खंडित अवस्था में विद्यमान है।

विदग्धमुखमण्डन-टीका :

खरतरगच्छीय आचार्य जिनसिंहसूरि के शिष्य लब्धिचन्द्र के शिष्य शिवचंद्र ने 'विदग्धमुखमंडन' पर वि. सं. १६६९ में 'सुबोधिका' नामकी टीका रची है। इस टीका का परिमाण २५०४ श्लोक है। टीका के अन्त में कर्ता ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

> श्रीलब्धिवर्धनमुनेर्विनयी विनेयो
> विद्यावतां क्रमसरोजपरीष्टिपूतः।
> चक्रे यथामति शुभां शिवचन्द्रनामा
> वृत्तिं विदग्धमुखमण्डनकाव्यसत्काम् ॥ १ ॥
>
> नन्दर्तु-भूपाल (१६६९) विशालवर्षे हर्षेण वर्षात्ययहर्षदर्शी।
> मेवातिदेशे लवराभिधाने पुरे समारब्धमिदं समासीत् ॥ २ ॥

विदग्धमुखमण्डन-वृत्ति :

खरतरगच्छीय सुमतिकलश के शिष्य मुनि विनयसागर ने वि. सं. १६९९ में 'विदग्धमुखमंडन' पर एक वृत्ति की रचना की है।

विदग्धमुखमण्डन-वृत्ति :

मुनि विनयसुंदर के शिष्य विनयरत्न ने १७ वीं शताब्दी में 'विदग्धमुख-मंडन' पर वृत्ति बनाई है।

विदग्धमुखमण्डन-टीका :

मुनि भीमविजय ने 'विदग्धमुखमंडन' पर एक टीका की रचना की है।

विदग्धमुखमण्डन-अवचूरि :

'विदग्धमुखमंडन' पर किसी अज्ञातनामा मुनि ने 'अवचूरि' की रचना की है। अवचूरि का प्रारंभ 'स्तुत्वा जिनेन्द्रमपि' से होता है, इससे स्पष्ट होता है कि यह जैनमुनिकृत अवचूरि है।

विदग्धमुखमण्डन-टीका :

गकुरानार्य-संतानीय किसी मुनि ने 'विदग्धमुखमंडन' पर एक टीका रची है। श्री अगरचंदजी नाहटा ने भारतीय विद्या, वर्ष २, अंक ३ में 'जैनेतर ग्रंथों पर जैन विद्वानों की टीकाएँ' शीर्षक लेख में इसका उल्लेख किया है।

विदग्धमुखमण्डन-बालावबोध :

आचार्य जिनचंद्रसूरि (वि. सं. १४८७–१५३०) के शिष्य उपाध्याय मेरुसुन्दर ने 'विदग्धमुखमण्डन' पर जूनी गुजराती में 'बालावबोध' की १४५४ श्लोक-प्रमाण रचना की है। इन्होंने षष्टिशतक, वाग्भटालंकार, योगशास्त्र इत्यादि ग्रंथों पर भी बालावबोध रचे हैं।

अलंकारावचूर्णि :

काव्यशास्त्रविषयक किसी ग्रन्थ पर 'अलंकारावचूर्णि' नामक टीका की १२ पत्रों की हस्तलिखित प्रति प्राप्त होती है। यह ३५० श्लोकों की पांच परिच्छेदात्मक किसी कृति पर १५०० श्लोक-परिमाण वृत्ति—अवचूरि है। इसमें मूल कृति के प्रतीक ही दिये गये हैं। मूल कृति कौन-सी है, इसका निर्णय नहीं हुआ है। इस अवचूरि के कर्ता कौन हैं, यह भी अज्ञात है। अवचूरि में एक जगह (१२ वें पत्र में) 'जिन' का उल्लेख है। इससे तथा 'अवचूरि' नाम से भी यह टीका किसी जैन की कृति होगी, ऐसा अनुमान होता है।

चौथा प्रकरण

छन्द

'छन्द' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' में 'छन्दस्' शब्द वेदों का बोधक है। 'भगवद्गीता' में वेदों को छन्दस् कहा गया है :

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ (१५.१)

'अमरकोश' (छठी शताब्दी) में 'अभिप्रायश्छन्द आशयः' (३.२०)— 'छन्द' का अर्थ 'मन की बात' या 'अभिप्राय' किया गया है। उसी में अन्यत्र (३.८८) 'छन्द' शब्द का 'वश' अर्थ बताया गया है। उसी में 'छन्दः पद्येऽभिलाषे च' (३.२२२)—छन्द का अर्थ 'पद्य' और 'अभिलाष' भी किया गया है।

इससे 'छन्द' शब्द का प्रयोग पद्य के अर्थ में भी अति प्राचीन मालूम पड़ता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष् और छन्दस्—इन छः वेदांगों में छन्दःशास्त्र को गिनाया गया है।

'छन्द' शब्द का पर्यायवाची 'वृत्त' शब्द है परन्तु यह शब्द छन्द की तरह व्यापक नहीं है।

'छन्दःशास्त्र' का अर्थ है अक्षर या मात्राओं के नियम से उद्भूत विविध वृत्तों की शास्त्रीय विचारणा। सामान्यतया हमारे देश में सर्वप्रथम पद्यात्मक कृति की रचना हुई इसलिये प्राचीनतम 'ऋग्वेद' आदि के सूक्त छन्द में ही रचित हैं। वैसे जैनों के आगमग्रंथ भी अंशतः छन्द में रचित हैं। जैनाचार्यों ने छन्द-शास्त्र के अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उन ग्रन्थों के विषय में यहाँ हम विचार करेंगे।

रत्नमञ्जूषा :

संस्कृत में रचित 'रत्नमञ्जूषा'[1] नामक छन्द ग्रन्थ के कर्ता का नाम अज्ञात है। इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में टीकाकार ने 'इति रत्नमञ्जूषायां छन्दो-

---

1 यह ग्रन्थ 'सभाष्य-रत्नमञ्जूषा' नाम से भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् १९४९ में प्रो० वेलणकर द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ है।

विचित्यां भाष्यतः' ऐसा निर्देश किया है अतएव इसका नाम 'छन्दोविचिति' भी है, यह मालूम होता है।

सूत्रबद्ध इस ग्रंथ में छोटे-छोटे आठ अध्याय हैं और कुल मिलाकर २३० सूत्र हैं। यह ग्रंथ मुख्यतः वर्णवृत्त-विषयक है। इसमें वैदिक छन्दों का निरूपण नहीं किया गया है। इसमें दिये गये कई छन्दों के नाम आचार्य हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' के सिवाय दूसरे ग्रथों में उपलब्ध नहीं होते। इस ग्रन्थ के उदाहरणों में जैनत्व का असर देखने में आता है और इसके टीकाकार जैन हैं अतः मूलकार के भी जैन होने की सम्भावना की जारही है।

प्रथम अध्याय मे विविध संज्ञाओं का निरूपण है। 'छन्दःशास्त्र' में पिंगल ने गणों के लिये म्, य्, र्, स्, त्, ज्, भ्, न्—ये आठ चिह्न बताये हैं, जबकि इस ग्रन्थ में उनके बजाय क्रमशः क्, च्, त्, प्, श्, ष्, स्, ह्—ये आठ व्यञ्जन और आ, ए, औ, ई, अ, उ, ऋ, इ—ये आठ स्वर—इस तरह दो प्रकार की संज्ञाओं की योजना की गई है। फिर, दो दीर्घ वर्णों के लिए य्, एक ह्रस्व और एक दीर्घ के लिये र्, एक दीर्घ और एक ह्रस्व के लिये ल्, दो ह्रस्व वर्णों के लिये व्, एक दीर्घ वर्ण के लिये म् और एक ह्रस्व वर्ण के लिये न् संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। इसमें १, २, ३, ४ अंकों के लिये द, दा, दि, दी, इत्यादि का; कहीं-कहीं ण् के प्रक्षेप के साथ, प्रयोग किया है, जैसे द—दण् = १, दा—दाण् = २।

दूसरे अध्याय में आर्या, गीति, आर्यागीति, गलितक और उपचित्रक वर्ग के अर्धसमवृत्तों के लक्षण दिये गये हैं।

तीसरे अध्याय में वैतालीय, मात्रावृत्तों के मात्रासमक वर्ग, गीत्यार्या, विशिखा, कुलिक, नृत्यगति और नटचरण के लक्षण बताये हैं। आचार्य हेमचन्द्र के सिवाय नृत्यगति और नटचरण का निर्देश किसी छन्द-शास्त्री ने नहीं किया है।

चतुर्थ अध्याय में विषमवृत्त के १. उद्गता, २. दामावारा याने पदचतुरूर्ध्व और ३. अनुष्टुभ्वक्त्र का विचार किया है।

पिंगल आदि छन्द-शास्त्री तीन प्रकार के भेदों का अनुष्टुभ्वर्ग के छन्द के प्रतिपादन के समय ही निर्देश करते हैं, जबकि प्रस्तुत ग्रन्थकार विषमवृत्तों का प्रारम्भ करते ही उसमें अनुष्टुभ्वक्त्र का अन्तर्भाव करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार का यह विभाग हेमचन्द्र से पुरस्कृत जैन परम्परा को ही ज्ञात है।

पञ्चम-षष्ठ-सप्तम अध्यायों में वर्णवृत्तों का निरूपण है। इनका छः-छः अक्षर-

चौथा प्रकरण

छन्द

'छन्द' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' में 'छन्दस्' शब्द वेदों का बोधक है। 'भगवद्गीता' में वेदों को छन्दस् कहा गया है :

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ (१५.१)

'अमरकोश' (छठी शताब्दी) में 'अभिप्रायश्छन्द आशयः' (३.२०)—'छन्द' का अर्थ 'मन की बात' या 'अभिप्राय' किया गया है। उसी में अन्यत्र (३.८८) 'छन्द' शब्द का 'वश' अर्थ बताया गया है। उसी में 'छन्दः पद्येऽभिलाषे च' (३.२३२)—छन्द का अर्थ 'पद्य' और 'अभिलाप' भी किया गया है।

इससे 'छन्द' शब्द का प्रयोग पद्य के अर्थ में भी अति प्राचीन मालूम पड़ता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष् और छन्दस्—इन छः वेदांगों में छन्दःशास्त्र को गिनाया गया है।

'छन्द' शब्द का पर्यायवाची 'वृत्त' शब्द है परन्तु यह शब्द छन्द की तरह व्यापक नहीं है।

'छन्दःशास्त्र' का अर्थ है अक्षर या मात्राओं के नियम से उद्भूत विविध वृत्तों की शास्त्रीय विचारणा। सामान्यतया हमारे देश में सर्वप्रथम पद्यात्मक कृति की रचना हुई इसलिये प्राचीनतम 'ऋग्वेद' आदि के सूक्त छन्द में ही रचित हैं। वैसे जैनों के आगमग्रंथ भी अंशतः छन्द में रचित हैं। जैनाचार्यों ने छन्द-शास्त्र के अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उन ग्रन्थों के विषय में यहाँ हम विचार करेंगे।

रत्नमञ्जूषा :

संस्कृत में रचित 'रत्नमञ्जूषा'[1] नामक छन्द-ग्रन्थ के कर्ता का नाम अज्ञात है। इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में टीकाकार ने 'इति रत्नमञ्जूषायां छन्दो-

---

१ यह ग्रन्थ 'सभाष्य-रत्नमञ्जूषा' नाम से भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् १९४९ में प्रो॰ वेलणकर द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ है।

विचित्यां भाष्यतः' ऐसा निर्देश किया है अतएव इसका नाम 'छन्दोविचिति' भी है, यह मालूम होता है।

सूत्रबद्ध इस ग्रंथ मे छोटे-छोटे आठ अध्याय हैं और कुल मिलाकर २३० सूत्र हैं। यह ग्रंथ मुख्यतः वर्णवृत्त-विषयक है। इसमें वैदिक छन्दों का निरूपण नहीं किया गया है। इसमें दिये गये कई छन्दों के नाम आचार्य हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' के सिवाय दूसरे ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होते। इस ग्रन्थ के उदाहरणो में जैनत्व का असर देखने में आता है और इसके टीकाकार जैन हैं अतः मूलकार के भी जैन होने की सम्भावना की जारही है।

प्रथम अध्याय में विविध संज्ञाओं का निरूपण है। 'छन्दःशास्त्र' में पिंगल ने गणों के लिये म्, य्, र्, स्, त्, ज्, भ्, न्—ये आठ चिह्न बताये हैं, जबकि इस ग्रन्थ में उनके बजाय क्रमशः क्, च्, त्, प्, श्, ष्, स्, ह्—ये आठ व्यञ्जन और आ, ए, औ, ई, अ, उ, ऋ, इ—ये आठ स्वर—इस तरह दो प्रकार की संज्ञाओं की योजना की गई है। फिर, दो दीर्घ वर्णों के लिए य्, एक ह्रस्व और एक दीर्घ के लिये र्, एक दीर्घ और एक ह्रस्व के लिये ल्, दो ह्रस्व वर्णों के लिये व्, एक दीर्घ वर्ण के लिये म् और एक ह्रस्व वर्ण के लिये न् संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। इसमें १, २, ३, ४ अंकों के लिये द, दा, दि, दी, इत्यादि का; कहीं-कहीं ण् के प्रक्षेप के साथ, प्रयोग किया है, जैसे द—दण् = १, दा—दाण् = २।

दूसरे अध्याय में आर्या, गीति, आर्यागीति, गलितक और उपचित्रक वर्ग के अर्धसमवृत्तों के लक्षण दिये गये हैं।

तीसरे अध्याय में वैतालीय, मात्रावृत्तों के मात्रासमक वर्ग, गीत्यार्या, विशिखा, कुलिक, नृत्यगति और नटचरण के लक्षण बताये हैं। आचार्य हेमचन्द्र के सिवाय नृत्यगति और नटचरण का निर्देश किसी छन्द-शास्त्री ने नहीं किया है।

चतुर्थ अध्याय मे विषमवृत्त के १. उद्गता, २. दामावारा याने पदचतुरूर्ध्व और ३. अनुष्टुभ्वक्त्र का विचार किया है।

पिंगल आदि छन्द-शास्त्री तीन प्रकार के भेदों का अनुष्टुभ्वर्ग के छन्द के प्रतिपादन के समय ही निर्देश करते हैं, जबकि प्रस्तुत ग्रन्थकार विषमवृत्तों का प्रारम्भ करते ही उसमें अनुष्टुभ्वक्त्र का अन्तर्भाव करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार का यह विभाग हेमचन्द्र से पुरस्कृत जैन परम्परा को ही ज्ञात है।

पञ्चम-षष्ठ-सप्तम अध्यायों में वर्णवृत्तों का निरूपण है। इनका छः-छः अक्षर-

वाले चार चरणों से युक्त गायत्री से लेकर उत्कृति तक के २१ वर्गों में विभक्त करके विचार किया गया है।

इन अध्यायों में दिये गये ८५ वर्णवृत्तों में से २१ वर्णवृत्तों का निर्देश न तो पिंगल ने किया है और न केदार भट्ट ने ही। उसी प्रकार रत्नमञ्जूषाकार ने भी पिंगल के सोलह छन्दों का उल्लेख नहीं किया है।

पांचवें अध्याय के प्रारम्भ में समग्र वर्णवृत्तों को समान, प्रमाण और वितान—इन तीन वर्गों में विभक्त किया है, परन्तु अध्याय ५–७ में दिये गये समस्त वृत्त वितान वर्ग के हैं। इस प्रकार २१ वर्गों के वृत्तों का ऐसा विभाजन किसी अन्य छन्द-ग्रंथ में नहीं है, यही इस ग्रंथ की विशेषता है।

आठवें अध्याय में १. प्रस्तार, २. नष्ट, ३. उद्दिष्ट, ४. लगक्रिया, ५. संख्यान और ६. अध्वन्—इस तरह छः प्रकार के प्रत्ययों का निरूपण है।

रत्नमञ्जूषा-भाष्य :

'रत्नमञ्जूषा' पर वृत्तिरूप भाष्य मिलता है, परन्तु इसके कर्ता कौन थे यह अज्ञात है। इसमें दिये गये मंगलाचरण और उदाहरणों से भाष्यकार का जैन होना प्रमाणित होता है।

इसमें दिये गये ८५ उदाहरणों में से ४० तो उन-उन छन्दों के नामसूचक हैं। इससे यह कह सकते हैं कि छंदों के यथावत् ज्ञान के लिये भाष्य की रचना के समय भाष्यकार ने ही उदाहरणों की रचना की हो और छन्दों के नामरहित कई उदाहरण अन्य कृतिकारों के हों।

इसमें 'अभिज्ञानशाकुन्तल' (अंक १, श्लोक ३३), 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' (२, ३) इत्यादि के पद्य उद्धृत किये गये हैं। भाष्य में तीन स्थानों पर सूत्रकार का 'आचार्य' कहकर निर्देश किया गया है।

अध्याय ८ के अंतिम उदाहरण में निर्दिष्ट 'एकच्छन्दसि खण्डमेरुरसलः पुन्नागचन्द्रोदितः' वाक्य से मालूम होता है कि इसके कर्ता शायद पुन्नागचंद्र या नागचंद्र हों। धनञ्जय कविरचित 'विषापहारस्तोत्र' के टीकाकार का नाम भी नागचंद्र है। वही तो इसके कर्ता नहीं हैं? अन्य प्रमाणों के अभाव में कुछ कहा नहीं जा सकता।

छन्दःशास्त्र :

बुद्धिसागरसूरि (११ वीं शती) ने 'छन्दःशास्त्र' की रचना की, ऐसा उल्लेख वि० सं० ११३९ में गुणचंद्रसूरिरचित 'महावीरचरियं' की प्रशस्ति में है।

प्रशस्ति में कहा गया है कि बुद्धिसागरसूरि ने उत्तम व्याकरण और 'छन्दःशास्त्र' की रचना की।

इन्होंने वि० सं० १०८० में 'पञ्चग्रन्थी' नामक संस्कृत-व्याकरण की रचना की। यह ग्रंथ जैसलमेर के ग्रंथभंडार में है, परंतु उनके रचे हुए 'छन्दःशास्त्र' का अभी तक पता नहीं लगा। इसलिये इसके बारे में विशेष कहा नहीं जा सकता।

संवत् ११४० में वर्धमानसूरि-रचित 'मनोरमाकहा' की प्रशस्ति से मालूम होता है कि जिनेश्वरसूरि और उनके गुरुभाई बुद्धिसागरसूरि ने व्याकरण, छन्द, काव्य, निघण्टु, नाटक, कथा, प्रबन्ध इत्यादिविषयक ग्रंथों की रचना की है, परन्तु उनके रचे हुए काव्य, नाटक, प्रबन्ध आदि के विषय में अभी तक कुछ जानने में नहीं आया है।

छन्दोनुशासन :

'छन्दोनुशासन'[1] ग्रंथ के रचयिता जयकीर्ति कन्नड प्रदेशनिवासी दिगंबर जैनाचार्य थे। इन्होंने अपने ग्रंथ में सन् ९५० में होनेवाले कवि असग का स्पष्ट उल्लेख किया है। अतः ये सन् १००० के आसपास में हुए, ऐसा निर्णय किया जा सकता है।

संस्कृतभाषा में निबद्ध जयकीर्ति का 'छन्दोनुशासन' पिङ्गल और जयदेव की परंपरा के अनुसार आठ अध्यायों में विभक्त है। इस रचना में ग्रन्थकार ने जनाश्रय, जयदेव, पिंगल, पादपूज्य (पूज्यपाद), मांडव्य और सैतव की छंदोविषयक कृतियों का उपयोग किया है। जयकीर्ति के समय में वैदिक छंदों का प्रभाव प्रायः समाप्त हो चुका था। इसलिये तथा एक जैन होने के नाते भी उन्होंने अपने ग्रंथ में वैदिक छंदों की चर्चा नहीं की।

यह समस्त ग्रंथ पद्यबद्ध है। ग्रंथकार ने सामान्य विवेचन के लिये अनुष्टुप्, आर्या और स्कन्धक (आर्यागीति)—इन तीन छंदों का आधार लिया है, किन्तु छंदों के लक्षण पूर्णतः या अंशतः उन्हीं छंदों में दिये गये हैं जिनके वे लक्षण हैं। अलग से उदाहरण नहीं दिये गये हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ में लक्षण-उदाहरणमय छंदों का विवेचन किया गया है।

---

१. यह 'जयदामन्' नामक संग्रह-ग्रन्थ में छपा है।

ग्रंथ के पृ० ४५ में 'उपजाति' के स्थान में 'इन्द्रमाला' नाम दिया गया है। पृ० ४६ में मुनि दमसागर, पृ० ५२ में श्री पाल्यकीर्तीश और स्वयंभूवेश तथा पृ० ५६ में कवि चारुकीर्ति के मतों के विषय में उल्लेख किया गया है।

प्रथम अध्याय में संज्ञा, द्वितीय में सम-वृत्त, तृतीय में अर्ध-सम-वृत्त, चतुर्थ में विषम-वृत्त, पञ्चम में आर्या-जाति-मात्रासमक-जाति, छठे में मिश्र, सातवें में कर्णाटविषयभाषाजात्यधिकार (जिसमें वैदिक छंदों के बजाय कन्नड़ भाषा के छंद निर्दिष्ट हैं), आठवें में प्रस्तारादि-प्रत्यय से सम्बन्धित विवेचन है।

जयकीर्ति ने ऐसे बहुत से मात्रिक छंदों का उल्लेख किया है जो जयदेव के ग्रंथ में नहीं हैं। हाँ, विरहांक ने ऐसे छंदों का उल्लेख किया है, फिर भी संस्कृत के लक्षणकारों में उन छंदों के प्रथम उल्लेख का श्रेय जयकीर्ति को ही है।

छन्दःशेखर :

'छन्दःशेखर' के कर्ता का नाम है राजशेखर। वे ठक्कुर दुद्दक और नागदेवी के पुत्र थे और ठक्कुर यश के पुत्र लाहर के पौत्र थे।

कहा जाता है कि यह 'छन्दःशेखर' ग्रन्थ भोजदेव को प्रिय था।

इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति वि० सं० ११७९ की मिलती है।

हेमचन्द्राचार्य ने इस ग्रन्थ का अपने 'छन्दोऽनुशासन' में उपयोग किया है।

कहा जाता है कि जयशेखरसूरि नामक विद्वान् ने भी 'छन्दःशेखर' नामक छन्दोग्रंथ की रचना की थी लेकिन वह प्राप्य नहीं है।

छन्दोनुशासन :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'शब्दानुशासन' और 'काव्यानुशासन' की रचना करने के बाद 'छन्दोऽनुशासन' की रचना की है।[1]

यह 'छन्दोऽनुशासन' आठ अध्यायों में विभक्त है और इसमें कुल मिलाकर ७६४ सूत्र हैं।

इसकी स्वोपज्ञ वृत्ति में सूचित किया गया है कि इसमें वैदिक छन्दों की चर्चा नहीं की गई है।

---

१. शब्दानुशासनविरचनानन्तरं तत्फलभूतं काव्यमनुशिष्य तदङ्गभूतं 'छन्दोऽनुशासनं' चिकीर्षमाणः शास्त्रकार इष्टाधिकृतदेवतानमस्कारपूर्वकमुपक्रमते।

प्रथम अध्याय में छन्द-विषयक परिभाषा यानी वर्णगण, मात्रागण, वृत्त, समवृत्त, विषमवृत्त, अर्धसमवृत्त, पाद और यति का निरूपण है।

दूसरे अध्याय में समवृत्त छन्दों के प्रकार, गणों की योजना और अन्त में दण्डक के प्रकार बताये गये हैं। इसमें ४११ छन्दों के लक्षण दिये हैं।

तीसरे अध्याय में अर्धसम, विषम, वैतालीय, मात्रासमक आदि ७२ छन्दों के लक्षण दिये हैं।

चौथे अध्याय में प्राकृत छन्दों के आर्या, गलितक, खजक और शीर्षक नाम से चार विभाग किये गए हैं। इसमें प्राकृत के सभी मात्रिक छन्दों की विवेचना है।

पाँचवें अध्याय में अपभ्रंश के उत्साह, रासक, रड्डा, रासावलय, धवलमंगल आदि छन्दों के लक्षण दिये हैं।

छठे अध्याय में ध्रुवा, ध्रुवक यानी घत्ता का लक्षण है और षट्पदी तथा चतुष्पदी के विविध प्रकारों के बारे में चर्चा है।

सातवें अध्याय में अपभ्रंश साहित्य में प्रयुक्त द्विपदी की विवेचना है।

आठवें अध्याय में प्रस्तार आदि विषयक चर्चा है।

इस विषयानुक्रम से स्पष्ट होता है कि यह ग्रंथ संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के विविध छन्दों पर सर्वाङ्गपूर्ण प्रकाश डालता है। विशेषता की दृष्टि से देखें तो वैतालीय और मात्रासमक के कुछ नये भेद, जिनका निर्देश पिंगल, जयदेव, विरहांक, जयकीर्ति आदि पूर्ववर्ती आचार्यों ने नहीं किया था, हेमचन्द्र-सूरि ने प्रस्तुत किये; जैसे—दक्षिणांतिका, पश्चिमांतिका, उपहासिनी, नटचरण, नृत्तगति। गलितक, खंजक और शीर्षक के क्रमशः जो भेद बताये गये हैं वे भी प्रायः नवीन हैं।

कुल सात-आठ सौ छन्दों पर विचार किया है। मात्रिक छन्दों के लक्षण दर्शानेवाले हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' का महत्त्व नवीन मात्रिक छन्दों के उल्लेख की दृष्टि से बहुत अधिक है। यह कह सकते हैं कि छन्द के विषय में ऐसी सुगम और सांगोपांग अन्य कृति सुलभ नहीं है।[१]

---

१ यह ग्रन्थ स्वोपज्ञवृत्ति के साथ सिंघी जैन ग्रंथमाला, बम्बई से प्रो० वेलणकर द्वारा संपादित होकर नई आवृत्ति के रूप में प्रकाशित हुआ है।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि मुनि नंदिषेण के 'अजित-शान्तिस्तव' (प्राकृत) में प्रयुक्त छन्दों के नाम हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' में क्यों नहीं हैं?

छन्दोनुशासन-वृत्ति :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने 'छन्दोऽनुशासन' पर स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है, जिसका अपर नाम 'छन्दश्चूडामणि' भी है। इस स्वोपज्ञ वृत्ति में दिया गया स्पष्टीकरण और उदाहरण 'छन्दोऽनुशासन' की महत्ता को बढ़ाते हैं। इसमें भरत, सैतव, पिंगल, जयदेव, काश्यप, स्वयंभू आदि छन्दशास्त्रियों का और सिद्धसेन (दिवाकर), सिद्धराज, कुमारपाल आदि का उल्लेख है। कुमारपाल के उल्लेख से यह वृत्ति उन्हीं के समय में रची गई, ऐसा फलित होता है।

इस वृत्ति में जो संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के पद्य हैं उनका ऐतिहासिक और शास्त्रीय चर्चा की दृष्टि से महत्त्व होने से उन सब के मूल आधारस्थान ढूँढ़ने चाहिए।

१. 'नमोऽस्तु वर्धमानाय' से शुरू होनेवाला पद्य यति के उदाहरण में अ० १, सू० १५ की वृत्ति में दिया गया है।

२. 'जयति विजितान्यतेजाः...' पद्य अ० ४, सू० ५५ की वृत्ति में है।

३. उपजाति के चौदह प्रकार अ० २, सू० १५५ की वृत्ति में बताकर 'दशवैकालिक' अ० २ का पांचवां पद्य और अ० ९, उ० १ के दूसरे पद्य का अंश उद्धृत किया गया है।

४. अ० ४, सू० ५ की वृत्ति के 'कमला' से शुरू होनेवाले तीन पद्य 'गाहालक्खण' के ४० से ४२ पद्य के रूप में कुछ पाठभेदपूर्वक देखे जाते हैं।

५. अ० ५, सू० १६ की वृत्ति में 'तिलकमञ्जरी' का 'शुकशिखरिणी' से शुरू होनेवाला पद्य उद्धृत किया गया है।

६. अ० ६, सू० १ की वृत्ति में मुञ्ज के पांच दोहे मुख्य प्रतीकरूप से देकर उन्हें कामदेव के पंच बाणों के तौर पर बताया गया है।

७. अ० ७ में द्विपदी खंड का उदाहरण हर्ष की 'रत्नावली' से दिया गया है।

यह एक ज्ञातव्य बात है कि अ० ४, सू० १ की वृत्ति में 'आर्या' को संस्कृतेतर भाषाओं में 'गाथा' कहा गया है।

उपाध्याय यशोविजयगणि ने इस 'छन्दोऽनुशासन' मूल पर या उसकी स्वोपज्ञ वृत्ति पर वृत्ति की रचना की है, ऐसा माना जाता है। यह वृत्ति उपलब्ध नहीं है।

वर्धमानसूरि ने भी इस 'छन्दोऽनुशासन' पर वृत्ति रची है, ऐसा एक उल्लेख मिलता है। यह वृत्ति भी अनुपलब्ध है।

आचार्य विजयलावण्यसूरि ने भी इस 'छन्दोऽनुशासन' पर एक वृत्ति की रचना की है जो लावण्यसूरि जैन ग्रन्थमाला, बोटाद से प्रकाशित हुई है।

छन्दोरत्नावली :

संस्कृत में अनेक ग्रन्थों की रचना करनेवाले 'वेणीकृपाण' बिरुदधारी आचार्य अमरचन्द्रसूरि वायडगच्छीय आचार्य जिनदत्तसूरि के शिष्य थे। वे गुर्जरनरेश विशलदेव (वि० सं० १२४३ से १२६१) की राजसभा के सम्मान्य विद्वद्रत्न थे।

इन्हीं अमरचन्द्रसूरि ने संस्कृत में ७०० श्लोक-प्रमाण 'छन्दोरत्नावली' ग्रंथ की रचना पिंगल आदि पूर्वाचार्यों के छन्दग्रंथों के आधार पर की है। इसमें नौ अध्याय हैं जिनमें संज्ञा, समवृत्त, अर्धसमवृत्त, विषमवृत्त, मात्रावृत्त, प्रस्तार आदि, प्राकृतछन्द, उत्साह आदि, षट्पदी, चतुष्पदी, द्विपदी आदि के लक्षण उदाहरणपूर्वक बताये गये हैं। इसमें कई प्राकृत भाषा के भी उदाहरण हैं। इस ग्रंथ का उल्लेख खुद ग्रंथकार ने अपनी 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में किया है।

यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है।

छन्दोनुशासन :

महाकवि वाग्भट ने अपने 'काव्यानुशासन' की तरह 'छन्दोऽनुशासन' की भी रचना[1] १४ वीं शताब्दी में की है। वे मेवाड़ देश में प्रसिद्ध जैन श्रेष्ठी नेमिकुमार के पुत्र और राहड के लघुबन्धु थे।

संस्कृत में निबद्ध इस ग्रन्थ में पांच अध्याय हैं। प्रथम संज्ञासम्बन्धी, दूसरा समवृत्त, तीसरा अर्धसमवृत्त, चतुर्थ मात्रासमक और पञ्चम मात्राछन्दसम्बन्धी है। इसमें छन्दविषयक अति उपयोगी चर्चा है।

---

१. श्रीमन्नेमिकुमारसूनुरखिलप्रज्ञालचूडामणि-
श्छन्दःशास्त्रमिदं चकार सुधियामानन्दकृत् वाग्भटः ॥

वृत्तमौक्तिक :

उपाध्याय मेघविजय ने छन्द-विषयक 'वृत्तमौक्तिक' नामक ग्रंथ की रचना संस्कृत में की है। इसकी १० पत्रों की प्रति मिलती है।[१] उपाध्यायजी ने व्याकरण, काव्य, ज्योतिष, सामुद्रिक, रमल, यंत्र, दर्शन और अध्यात्म आदि विषयों पर अनेक ग्रन्थों की रचना की है, जिनसे उनकी सर्वतोमुखी प्रतिमा का परिचय मिलता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्रंथकार ने प्रस्तार-संख्या, उद्दिष्ट, नष्ट आदि का विशद वर्णन किया है।[२] विषय को स्पष्ट करने के लिये यंत्र भी दिये गए हैं। यह ग्रंथ वि० सं० १७५५ में मुनि भानुविजय के अध्ययनार्थ रचा गया है।[३]

छन्दोवतंस :

'छन्दोऽवतंस' नामक ग्रंथ के कर्ता उपाध्याय लालचंद्रगणि हैं, जो शांतिहर्षवाचक के शिष्य थे।[४] इन्होंने वि० सं० १७७१ में इस ग्रंथ की रचना की।[५]

यह कृति संस्कृत भाषा में है। इन्होंने केदारभट्ट के 'वृत्तरत्नाकर' का अनुसरण किया है परंतु उसमें से अति उपयोगी छन्दों पर ही विशद शैली में विवेचन किया है।

कवि लालचन्द्रगणि ने अपनी रचना में नम्रता प्रदर्शित करते हुए विद्वानों से ग्रंथ में रही हुई त्रुटियों को शुद्ध करने की प्रार्थना की है।[६]

प्रस्तारविमलेन्दु :

मुनि विहारी ने 'प्रस्तारविमलेन्दु' नामक छन्द-विषयक ग्रन्थ की रचना की है।

---

१. जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १२, अंक ५-६.

२. 'प्रस्तारपिण्डसंख्येयं विवृता वृत्तमौक्तिके ॥

३. समित्यर्षाश्व-भू (१७५५) वर्षे प्रौढिरेषाऽभवत् श्रिये ।
　　भान्वादिविजयाध्यायहेतुता सिद्धिमाश्रितः ॥

४. तत् सर्वं गुरुराजवाचकवरश्रीशान्तिहर्षप्रभोः ।
　　शिष्यस्तत्कृपया व्यधत्त सुगमं श्रीलालचन्द्रो गणिः ॥

५. विक्रमराज्यात् शशि-हय-भूधर-दशवाजिभि (१७७१) मिते वर्षे ।
　　माधवसिततृतीयायां रचितः छन्दोऽवतंसोऽयम् ॥

६. क्वचित् प्रमादाद् वितथं मयाऽस्मिन्छन्दोवतंसे स्वकृते यदुक्तम् ।
　　संशोध्य तन्निर्मलयन्तु सन्तो विद्वत्सु विज्ञप्तिरियं मदीया ॥

१८ वीं शताब्दी में विद्यमान विहारी मुनि ने अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपि की है।[1] इनके विषय में और जानकारी नहीं मिलती। प्रस्तारविमलेन्दु की प्रति के अंत में इस प्रकार उल्लेख है : विहारिमुनिना चक्रे। इति प्रस्तारविमलेन्दुः समाप्तः। सं० १९७४ मिति अश्विन् वदि १४ चतुर्दशी लिपीकृतं देवेन्द्र-ऋषिणा वेरोवालमध्ये केपरऋषिनिमित्तार्थम् ॥

छन्दोद्वात्रिंशिका :

शीलशेखरगणि ने संस्कृत में ३२ पद्यों में छन्दोद्वात्रिंशिका नामक एक छोटी-सी परंतु उपयोगी रचना की है।[2] इसमें महत्त्व के छन्दों के लक्षण बताये गये हैं। इसका प्रारम्भ इस प्रकार है : विद्युन्माला मौः गौः प्रमाणी स्याज्जरौ लगौ। अन्त में इस प्रकार उल्लेख है : छन्दोद्वात्रिंशिका समाप्ता। कृतिः पण्डितपुरन्दराणां शीलशेखरगणिविबुधपुङ्गवानामिति ॥

शीलशेखरगणि कब हुए और उनकी दूसरी रचनाएँ कौन-सी थीं, यह अभी ज्ञात नहीं है।

जयदेवछन्दस् :

छन्दशास्त्र के 'जयदेवछन्दस्' नामक ग्रंथ के कर्ता जयदेव नामक विद्वान् थे। उन्होंने अपने नाम से ही इस ग्रन्थ का नाम 'जयदेवछन्दस्' रखा है। ग्रंथ के मंगलाचरण में अपने इष्टदेव वर्धमान को नमस्कार करने से प्रतीत होता है कि वे जैन थे। इतना ही नहीं, वे श्वेतांबर जैनाचार्य थे, ऐसा हलायुध[3] और केदार भट्ट के 'वृत्तरत्नाकार' के टीकाकार सुल्हण[4] (वि० सं० १२४६) के जयदेव को 'श्वेतपट' विशेषण से उल्लिखित करने से जान पड़ता है।

जयदेव कब हुए, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, फिर भी

---

१. ऐसी बहुत-सी प्रतियाँ अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के संग्रह में हैं। १५ पत्रों की प्रस्तारविमलेन्दु की एक-प्रति वि० सं० १९७४ में लिखी हुई मिली है।

२. इस ग्रन्थ की एक पत्र की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के हस्तलिखित संग्रह में है। प्रति १७ वीं शताब्दी में लिखी गई मालूम होती है।

३. 'अन्यदतो हि वितानं' श्वेतपटेन यदुक्तम्।

४. 'अन्यदतो हि वितानं' शूद्रश्वेतपटजयदेवेन यदुक्तम्।

वि० सं० ११९० में लिखित हस्तलिखित प्रति के (जैसलमेर के भंडार से) मिलने से उसके पहले कभी हुए हैं, यह निश्चित है।

कवि स्वयंभू ने 'स्वयंभूच्छन्दस्' में जयदेव का उल्लेख किया है। वे 'पउमचरिय' के कर्ता स्वयंभू से अभिन्न हों तो सन् ७९१ (वि० सं० ८४७) में विद्यमान थे, अतः जयदेव उसके पहले हुए, ऐसा माना जा सकता है।

संभवतः वि० सं० ५६२ में विद्यमान 'पञ्चसिद्धान्तिका' के रचयिता वराहमिहिर को ये जयदेव परिचित होंगे। यदि यह ठीक है तो वे छठी शताब्दी के आस-पास या पूर्व हुए, ऐसा निर्णय हो सकता है।

ईस्वी १०वीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान भट्ट हलायुध ने जयदेव के मत की आलोचना अपने 'पिङ्गलछन्दःसूत्र' की टीका (पि० १.१०; ५.८) में की है। ई० १०वीं शताब्दी के 'नाट्यशास्त्र' के टीकाकार[1] अभिनवगुप्त ने जयदेव के इस ग्रन्थ का अवतरण लिया है। इससे वे ई० १० वीं शती से पूर्व हुए, ऐसा निर्णय कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि वे ई० ६ठी शताब्दी से ई० १०वीं शताब्दी के बीच में कभी हुए।

सन् ९६६ में विद्यमान उत्पल, सन् १००० से पूर्व होनेवाले कन्नड भाषा के 'छन्दोऽम्बुधि' ग्रन्थ के कर्ता नागदेव, सन् १०७० में होनेवाले नमिसाधु और १२ वीं शताब्दी और उसके बाद में होनेवाले हेमचंद्र, त्रिविक्रम, अमरचंद्र, सुल्हण, गोपाल, कविदर्पणकार, नारायण, रामचंद्र वगैरह जैन-जैनेतर छन्दशास्त्रियों ने जयदेव से अवतरण लिये हैं, उनकी शैली का अनुसरण किया है या उनके मत की चर्चा की है। इससे जयदेव की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का आभास मिलता है। इतना ही क्यों, हर्षट नामक जैनेतर विद्वान् ने 'जयदेवछन्दस्' पर वृत्ति की रचना की है जो जैन ग्रन्थों पर रचित विरल जैनेतर टीकाग्रन्थों में उल्लेखनीय है।

जयदेव ने अपना छन्दोग्रन्थ संस्कृत भाषा में पिंगल के आदर्श पर लिखा, ऐसा प्रतीत होता है। पिंगल की तरह जयदेव ने भी अपने ग्रन्थ के आठ अध्यायों में से प्रथम अध्याय में संज्ञाएँ, दूसरे-तीसरे में वैदिक छन्दों का निरूपण और चतुर्थ से लेकर अष्टम तक के अध्यायों में लौकिक छन्दों के लक्षण दिये हैं।

---

१. देखिए—गायकवाड ग्रंथमाला में प्रकाशित टीका, पृ० १४४.

जयदेव ने अध्यायों का आरंभ ही नहीं, उनकी समाप्ति भी पिंगल की तरह ही की है। वैदिक छन्दों के लक्षण सूत्ररूप में ही दिये हैं, परन्तु लौकिक छन्दों के निरूपण की शैली पिंगल से भिन्न है। इन्होंने छन्दों के लक्षण, जिनके वे लक्षण हैं, उनको छन्दों के पाद में ही बताये हैं, इस कारण लक्षण भी उदाहरणों का काम देते हैं।[1] इस शैली का अवलंबन जयदेव के परवर्ती कई छन्दों के लक्षणकारों ने किया है।

जयदेवछन्दोवृत्ति :

मुकुल भट्ट के पुत्र हर्षट ने 'जयदेवछन्दस्' पर वृत्ति की रचना की है। यह वृत्ति जैन विद्वानों के रचित ग्रन्थों पर जैनेतर विद्वानों द्वारा रचित वृत्तियों में से एक है।

काव्यप्रकाशकार मम्मट ने 'अभिधावृत्ति मातृका' के कर्ता मुकुल भट्ट का उल्लेख किया है। उनका समय सन् ९२५ के आस-पास है। सम्भवतः इस मुकुल भट्ट का पुत्र ही यह हर्षट है।

हर्षटरचित वृत्ति की हस्तलिखित प्रति सन् ११२४ की मिली है इससे ये उस समय से पूर्व हुए, यह निश्चित है।

टकारांत नाम से अनुमान होता है कि ये कश्मीरी विद्वान् होंगे।

जयदेवछन्दःशास्त्रवृत्ति-टिप्पनक :

शीलभद्रसूरि के शिष्य श्रीचन्द्रसूरि ने वि० १३ वीं शताब्दी में जयदेवकृत छन्दःशास्त्र की वृत्ति पर टिप्पन की रचना की है। यह टिप्पन किस विद्वान् की वृत्ति पर है, यह ज्ञात नहीं हुआ है। शायद हर्षट की वृत्ति पर ही यह टिप्पन हो। श्रीचन्द्रसूरि का आचार्यावस्था के पूर्व पार्श्वदेवगणि नाम था, ऐसा उन्होंने 'न्यायप्रवेशपञ्जिका' की अन्तिम पुष्पिका में निर्देश किया है।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

---

१. यह ग्रन्थ हर्षट की टीका के साथ 'जयदामन्' नामक छन्दों के संग्रह ग्रंथ में हरितोषमाला ग्रंथावली, बम्बई से सन् १९४९ में प्रो० वेलणकर द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ है।

१. न्यायप्रवेश-पञ्जिका, २. निशीथचूर्णि-टिप्पनक, ३. नन्दिसूत्र-हारिभद्रीय-वृत्ति-टिप्पनक, ४. पञ्चोपाङ्गसूत्र-वृत्ति, ५. श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र-वृत्ति, ६. पिण्ड-विशुद्धि-वृत्ति, ७. जीतकल्पचूर्णि-व्याख्या, ८. सर्वसिद्धान्तविषमपदपर्याय।

स्वयंभूच्छन्दस्ः

'स्वयंभूच्छन्दस्' ग्रन्थ के कर्ता स्वयंभू को वेलणकर 'पउमचरिय' और 'हरिवंशपुराण' के कर्ता से भिन्न मानते हैं, जबकि राहुल सांकृत्यायन[1] और हीरालाल जैन इन तीनों ग्रन्थों के कर्ता को एक ही स्वयंभू बताते हैं। 'स्वयंभूच्छन्दस्' में लिये गये कई अवतरण 'पउमचरिय' में मिलते हैं।[2] इससे प्रतीत होता है कि हरिवंशपुराण, पउमचरिय और स्वयंभूच्छन्दस् के कर्ता एक ही स्वयंभू हैं। वे जाति के ब्राह्मण थे, कवि माउरदेव और पद्मिनी के पुत्र थे और त्रिभुवनस्वयंभू के पिता थे।

'स्वयंभूच्छन्दस्' के समाप्तिसूचक पद्यों द्वारा आठ अध्यायों में विभक्त होने का संकेत मिलता है। प्रथम अध्याय के प्रारंभिक २२ पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं। वर्णवृत्त अक्षर-संख्या के अनुसार २६ वर्गों में विभाजित करने की परिपाटी का स्वयंभू अनुसरण करते हैं परन्तु इन छन्दों को संस्कृत के छन्द न मानकर प्राकृत काव्य से उनके उदाहरण दिये हैं। द्वितीय अध्याय में १४ अर्धसमवृत्तों का विचार किया गया है। तृतीय अध्याय में विषमवृत्तों का प्रतिपादन है। चतुर्थ से अष्टम अध्याय पर्यन्त अपभ्रंश के छंदों की चर्चा की गई है।

स्वयंभू की विशेषता यह है कि उन्होंने संस्कृत वर्णवृत्तों के लक्षण-निर्देश के लिये मात्रागणों का उपयोग किया है। छन्दों के उदाहरण प्राकृत कवियों के नामनिर्देशपूर्वक उनकी रचनाओं से दिये हैं। प्राकृत कवियों के २०६ पद्य उद्धृत किये हैं उनमें से १२८ पद्य संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश छन्दों के उदाहरणरूप में दिये हैं।[3]

---

१. 'हिंदी काव्यधारा' पृ० २२.

२. प्रो० भायाणी : 'भारतीय विद्या' वो० ८, नं० ८–१०. उदाहरणार्थ स्वयंभूछन्दस् ८,३१; पउमचरिय ३१,१.

३. यह ग्रंथ Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society में सन् १९३५ में प्रो० वेलणकर द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ है।

वृत्तजातिसमुच्चय :

'वृत्तजातिसमुच्चय' नामक छन्दोग्रन्थ को कई विद्वान् 'कविसिद्ध', 'कृतसिद्ध' और 'छन्दोविचिति' नाम से भी पहिचानते हैं। पद्यमय प्राकृत भाषा में निबद्ध इस कृति[1] के कर्ता का नाम है विरहांक या विरहलांछन।

कर्ता ने सद्भावलांछन, गन्धहस्ती, अवलेपचिह्न और पिंगल नामक विद्वानों को नमस्कार किया है। विरहांक कब हुए, यह निश्चित नहीं है। ये जैन थे या नहीं, यह भी ज्ञात नहीं है।

'काव्यादर्श' में 'छन्दोविचिति' का उल्लेख है, परन्तु वह प्रस्तुत ग्रन्थ है या इससे भिन्न, यह कहना मुश्किल है। सिद्धहेम-व्याकरण (८. ३. १३४) में दिया हुआ 'इअराइं' से शुरू होनेवाला पद्य इस ग्रन्थ (१. १३) में पूर्वार्धरूप में दिया हुआ है। सिद्धहेम-व्याकरण (८. २. ४०) की वृत्ति में दिया हुआ 'विद्धकइनिरूविअं' पद्य भी इस ग्रन्थ (२. ८) से लिया गया होगा क्योंकि इसके पूर्वार्ध में यह शब्द-प्रयोग है। इससे इस छंदोग्रन्थ की प्रामाणिकता का परिचय मिलता है।

इस ग्रन्थ में मात्रावृत्त और वर्णवृत्त की चर्चा है। यह छः नियमों में विभक्त है। इनमें से पांचवां नियम, जिसमें संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त छन्दों के लक्षण दिये गये हैं, संस्कृत भाषा में है, बाकी के पांच नियम प्राकृत में निबद्ध हैं।

छठे नियम में श्लोक ५२-५३ में एक कोष्ठक दिया गया है, जो इस प्रकार है :[2]

४ अंगुल = १ राम
३ राम = १ वितस्ति
२ वितस्ति = १ हाथ
२ हाथ = १ धनुर्धर
२००० धनुर्धर = १ कोश
८ कोश = १ योजन

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति वि० सं० ११९२ की मिलती है।
२. यह ग्रंथ Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society में छप गया है।

वृत्तजातिसमुच्चय-वृत्ति :

'वृत्तजातिसमुच्चय' पर भट्ट चक्रपाल के पुत्र गोपाल ने वृत्ति की रचना की है। इस वृत्ति में टीकाकार ने कात्यायन, भरत, कंबल और अश्वतर का स्मरण किया है।

गाथालक्षण :

'गाहालक्खण' के प्रथम पद्य में ग्रन्थ और उसके कर्ता का उल्लेख है, पद्य ३१ और ६३ में भी ग्रन्थ का 'गाहालक्खण' नाम निर्दिष्ट है। इससे नंदिताढ्य इस प्राकृत 'गाथालक्षण' के निर्माता थे यह स्पष्ट है।

नंदियड्ढ (नंदिताढ्य) कब हुए, यह उनकी अन्य कृतियों और प्रमाणों के अभाव में कहा नहीं जा सकता। संभवतः वे हेमचंद्राचार्य से पूर्व हुए हों। हो सकता है कि वे विरहांक के समकालीन या इनके भी पूर्ववर्ती हों।

नंदियड्ढ ने मंगलाचरण में नेमिनाथ को वंदन किया है। पद्य १५ में मुनिपति वीर की, ६८, ६९ में शांतिनाथ की, ७०, ७१ में पार्श्वनाथ की, ५७ में ब्राह्मीलिपि की, ६७ में जैनधर्म की, २१, २२, २५ में जिनवाणी की, २३ में जिनशासन की व ३७ में जिनेश्वर की स्तुति की है। पद्य ६२ में मेरुशिखर पर ३२ इंद्रों ने वीर का जन्माभिषेक किया, यह निर्देश है। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि वे श्वेतांबर जैन थे।

यह ग्रंथ मुख्यतया गाथाछंद से संबद्ध है, ऐसा इसके नाम से ही प्रकट है। प्राकृत के इस प्राचीनतम गाथाछन्द का जैन तथा बौद्ध आगम-ग्रन्थों में व्यापक रूप से प्रयोग हुआ है। सम्भवतः इसी कारण नन्दिताढ्य ने गाथा-छन्द को एक लक्षण-ग्रन्थ का विषय बनाया।

'गाथा-लक्षण' में ९६ पद्य हैं, जो अधिकांशतः गाथा-निबद्ध हैं। इनमें से ४७ पद्यों में गाथा के विविध भेदों के लक्षण हैं तथा ४९ पद्य उदाहरणों के हैं। *पद्य ६ से १६ तक मुख्य गाथाछन्द का विवेचन है।* नन्दिताढ्य ने 'शर' शब्द को चतुर्मात्रा के अर्थ में लिया है, जबकि विरहांक ने 'वृत्तजातिसमुच्चय' में इसे पञ्चकल का द्योतक माना है। यह एक विचित्र और असामान्य बात प्रतीत होती है।

पद्य १७ से २० में गाथा के मुख्य भेद पथ्या, विपुला और चपला का वर्णन तथा पद्य २१ से २५ तक इनके उदाहरण हैं। पद्य २६ से ३० में गीति, उद्गीति, उपगीति और संकीर्णगाथा उदाहृत हैं। पद्य ३१ में नन्दिताढ्य ने

अवहट्ट (अपभ्रंश) का तिरस्कार करते हुए अपने भाषासम्बन्धी दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। पद्य ३२ से ३७ तक गाथा के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्गों का उल्लेख है। ब्राह्मण में गाथा के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दोनों में गुरुवर्णों का विधान है। क्षत्रिय में पूर्वार्ध में सभी गुरुवर्ण और उत्तरार्ध में सभी लघुवर्ण निर्दिष्ट हैं। वैश्य में इससे उलटा होता है और शूद्र में दोनों पादों में सभी लघुवर्ण आते हैं।

पद्य ३८–३९ में पूर्वोक्त गाथा-भेदों को दुहराया गया है। पद्य ४० से ४४ तक गाथा मे प्रयुक्त लघु-गुरुवर्णों की संख्या के अनुसार गाथा के २६ भेदों का कथन है।

पद्य ४५–४६ में लघु-गुरु जानने की रीति, पद्य ४७ में कुल मात्रासंख्या, पद्य ४८ से ५१ में प्रस्तारसंख्या, पद्य ५२ में अन्य छन्दों की प्रस्तारसंख्या, पद्य ५३ से ६२ तक गाथासम्बन्धी अन्य गणित का विचार है। पद्य ६३ से ६५ मे गाथा के ६ भेदों के लक्षण तथा पद्य ६६ से ६९ में उनके उदाहरण दिये गये हैं। पद्य ७२ से ७५ तक गाथाविचार है।

यह ग्रन्थ यहाँ (७५ पद्य तक) पूर्ण हो जाना चाहिये था। पद्य ३१ में कर्ता के अवहट्ट के प्रति तिरस्कार प्रकट करने पर भी इस ग्रन्थ में पद्य ७६ से ९६ तक अपभ्रंश-छन्दसम्बन्धी विचार दिये गये हैं, इसलिये ये पद्य परवर्ती क्षेपक मालूम पड़ते हैं। प्रो० वेलणकर ने भी यही मत प्रकट किया है।

पद्य ७६–९६ में अपभ्रंश के कुछ छन्दों के लक्षण और उदाहरण इस प्रकार बताये गये हैं : पद्य ७६–७७ में पद्धति, ७८–७९ में मदनावतार या चन्द्रानन, ८०–८१ में द्विपदी, ८२–८३ में वस्तुक या सार्धछन्दस्, ८४ से ९४ में दूहा, उसके भेद, उदाहरण और रूपान्तर और ९५–९६ में श्लोक।

गाथा-लक्षण के सभी पद्य नंदिताढ्य के रचे हुए हों ऐसा मालूम नहीं होता। इसका चतुर्थ पद्य 'नाट्यशास्त्र' (अ० २७) में कुछ पाठभेदपूर्वक मिलता है। १५ वां पद्य 'सूयगड' की चूर्णि (पत्र ३०४) में कुछ पाठभेदपूर्वक उपलब्ध होता है।

इस 'गाथालक्षण' के टीकाकार मुनि रत्नचन्द्र ने सूचित किया है कि ५७ वां पद्य 'रोहिणी-चरित्र' से, ५९ वां और ६० वां पद्य 'पुष्पदन्तचरित्र' से और ६१ वां पद्य 'गाथासहस्रपद्यालंकार' से लिया गया है।[1]

---

१. यह ग्रन्थ भांडारकर प्राच्यविद्या संशोधन मंदिर त्रैमासिक, पु० १४, पृ० १-३८ में प्रो० वेलणकर ने संपादित कर प्रकाशित किया है।

गाथालक्षण-वृत्ति :

'गाथालक्षण' छंद-ग्रन्थ पर रत्नचन्द्र मुनि ने वृत्ति की रचना की है। टीका के अंत में इस प्रकार उल्लेख है : नंदिताढ्यस्य च्छन्दसष्टीका कृतिः श्री देवाचार्यस्य शिष्येणाष्टोत्तरशतप्रकरणकर्तुर्महाकवेः पण्डितरत्नचन्द्रेणेति।

माण्डव्यपुरगच्छीयदेवानन्दमुनेर्गिरा ।
टीकेयं रत्नचन्द्रेण नंदिताढ्यस्य निर्मिता ॥

१०८ प्रकरण-ग्रंथों के रचयिता महाकवि देवानन्दाचार्य, जो मांडव्यपुरगच्छ के थे, उनकी आज्ञा से उन्हीं के शिष्य रत्नचन्द्र ने नन्दिताढ्य के इस गाथालक्षण की वृत्ति रची है।

इस वृत्ति से गाथालक्षण में प्रयुक्त पद्य किन-किन ग्रंथों से उद्धृत किये गये हैं इस बात का पता लगता है। टीका की रचना विशद है।

कविदर्पण :

प्राकृत भाषा में ग्रथित इस महत्त्वपूर्ण छन्दःकृति के कर्ता का नाम अज्ञात है। वे जैन विद्वान् होंगे, ऐसा कृति में दिये गये जैन ग्रंथकारों के नाम और जैन परिभाषा आदि देखते हुए अनुमान होता है। ग्रंथकार आचार्य हेमचंद्र के 'छन्दोऽनुशासन' से परिचित हैं।

'कविदर्पण' में सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, समुद्रसूरि, भीमदेव, तिलकसूरि, शाकंभरीराज, यशोघोषसूरि और सूरप्रभसूरि के नाम निर्दिष्ट हैं। ये सभी व्यक्ति १२-१३ वीं शती में विद्यमान थे। इस ग्रंथ में जिनचंद्रसूरि, हेमचंद्रसूरि, सूरप्रभसूरि, तिलकसूरि और (रत्नावली के कर्ता) हर्षदेव की कृतियों से अवतरण दिये गये हैं।

छः उद्देशात्मक इस ग्रंथ में प्राकृत के २१ सम, १५ अर्धसम और १३ संयुक्त छंद बताये गये हैं। ग्रंथ में ६९ उदाहरण हैं जो स्वयं ग्रन्थकार ने ही रचे हों ऐसा मालूम होता है। इसमें सभी प्राकृत छंदों की चर्चा नहीं है। अपने समय में प्रचलित महत्त्वपूर्ण छंद चुनने में आये हैं। छंदों के लक्षणनिर्देश और वर्गीकरण द्वारा कविदर्पणकार की मौलिक दृष्टि का यथेष्ट परिचय मिलता है। इस ग्रन्थ में छंदों के लक्षण और उदाहरण अलग-अलग दिये गये हैं।[1]

---

१. यह ग्रन्थ वृत्तिसहित प्रो० वेलणकर ने संपादित कर पूना के भांडारकर प्राच्यविद्या संशो[illegible] [illegible] ?,६, पृ० ४४–८९; पु० १७, पृ० ३७–[illegible] किया है।

कविदर्पण-वृत्ति :

'कविदर्पण' पर किसी विद्वान् ने वृत्ति की रचना की है, जिसका नाम भी अज्ञात है। वृत्ति में 'छन्दःकन्दली' नामक प्राकृत छन्दोग्रन्थ के लक्षण दिये गये हैं। वृत्ति में जो ५७ उदाहरण हैं वे अन्यकर्तृक हैं। इसमें सूर, पिंगल और त्रिलोचनदास—इन विद्वानों की संस्कृत और स्वयंभू, पादलिप्तसूरि और मनोरथ—इन विद्वानों की प्राकृत कृतियों से अवतरण दिये गये हैं। रत्नसूरि, सिद्धराज जयसिंह, धर्मसूरि और कुमारपाल के नामों का उल्लेख है। इन नामों को देखते हुए वृत्तिकार भी जैन प्रतीत होते हैं।

छन्दःकोश :

'छन्दःकोश' के रचयिता रत्नशेखरसूरि हैं, जो १५ वीं शताब्दी में हुए। ये बृहद्गच्छीय वज्रसेनसूरि (बाद में रूपांतरित नागपुरीय तपागच्छ के हेमतिलकसूरि) के शिष्य थे।

प्राकृत भाषा में रचित इस 'छन्दःकोश'[1] में कुल ७४ पद्य हैं। पद्य-संख्या ५ से ५० तक (४६ पद्य) अपभ्रंश भाषा में रचित हैं। प्राकृत छंदों में से कई प्रसिद्ध छंदों के लक्षण लक्ष्य-लक्षणयुक्त और गण-मात्रादिपूर्वक दिये गये हैं। इसमें अल्लु (अर्जुन) और गुल्हु (गोसल) नामक लक्षणकारों से उद्धरण दिये हैं।

छन्दःकोश-वृत्ति :

इस 'छन्दःकोश' ग्रंथ पर आचार्य रत्नशेखरसूरि के संतानीय भट्टारक राजरत्नसूरि और उनके शिष्य चन्द्रकीर्तिसूरि ने १७ वीं शताब्दी में वृत्ति की रचना की है।

छन्दःकोश-बालावबोध :

'छन्दःकोश' पर आचार्य मानकीर्ति के शिष्य अमरकीर्तिसूरि ने गुजराती भाषा में 'बालावबोध' की रचना की है।[2]

---

१. इसका प्रकाशन डा० शुब्रिंग ने (Z D M G, Vol. 75, pp. 97 ff.) सन् १९२२ में किया था। फिर तीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर प्रो० एच० डी० वेलणकर ने इसे संपादित कर बंबई विश्वविद्यालय पत्रिका में सन् १९३३ में प्रकाशित किया था।

२. इसकी एक हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है। प्रति १८ वीं शताब्दी में लिखी गई मालूम पड़ती है।

बालावबोधकार ने इस प्रकार कहा है :

> तेषां पदे सुविख्याताः सूर्योऽमरकीर्त्तयः।
> तैश्चक्रे बालावबोधोऽयं छन्दःकोशाभिधस्य वै ॥

छन्दःकन्दली :

'छन्दःकन्दली' के कर्ता का नाम अभी तक अज्ञात है। प्राकृत भाषा में निबद्ध इस ग्रंथ में 'कविदर्पण' की परिभाषा का उपयोग किया गया है।

यह ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

छन्दस्तत्त्व :

अञ्चलगच्छीय मुनि धर्मनन्दनगणि ने 'छन्दस्तत्त्व' नामक छन्दविषयक ग्रन्थ की रचना की है।[1]

इन ग्रंथों के अतिरिक्त रामविजयगणिरचित छन्दःशास्त्र, अज्ञातकर्तृक छन्दोऽलङ्कार जिस पर किसी अज्ञातनामा आचार्य ने टिप्पण लिखा है, मुनि अजितसेनरचित छन्दःशास्त्र, वृत्तवाद और छन्दःप्रकाश—ये तीन ग्रंथ, आशाधरकृत वृत्तप्रकाश, चन्द्रकीर्तिकृत छन्दःकोश (प्राकृत) और गाथारत्नाकर, छन्दोरूपक, संगीतसहपिंगल इत्यादि नाम मिलते हैं।

इस दृष्टि से देखा जाय तो छन्दःशास्त्र में जैनाचार्यों का योगदान कोई कम नहीं है। इतना ही नहीं, इन आचार्यों ने जैनेतर लेखकों के छन्दशास्त्र के ग्रन्थों पर टीकाएं भी लिखी हैं।

जैनेतर ग्रन्थों पर जैन विद्वानों के टीकाग्रन्थ :

श्रुतबोध—कई विद्वान् वररुचि को 'श्रुतबोध' के कर्ता मानते हैं और कई कालिदास को। यह शीघ्र ही कंठस्थ हो सके ऐसी सरल और उपयोगी ४४ पद्यों की छोटी-सी कृति अपनी पत्नी को संबोधित करके लिखी गई है। छन्दों के लक्षण उन्हीं छन्दों में दिये गये हैं जिनके ये लक्षण हैं।

इस ग्रंथ से पता चलता है कि कवियों ने प्रस्तारविधि से छन्दों की वृद्धि न करके लयसाम्य के आधार पर गुरु-लघु वर्णों के परिवर्तन द्वारा ही नवीन छंदों की रचना की होगी।

'श्रुतबोध' में आठ गणों एवं गुरु लघु वर्णों के लक्षण बताकर आर्या आदि छंदों से प्रारंभ कर यति का निर्देश करते हुए समवृत्तों के लक्षण बताये गये हैं।

इस कृति पर जैन लेखकों ने निम्नोक्त टीकाओं की रचना की है :

१. नागपुरी तपागच्छ के चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्तिसूरि ने विक्रम की १७ वीं शताब्दी में वृत्ति की रचना की है। टीका[1] के अन्त में वृत्तिकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

श्रीमन्नागपुरीयपूर्वकतपागच्छाम्बुजाहस्कराः
सूरीन्द्राः [चन्द्र]कीर्तिगुरवो विश्वत्रयीविश्रुताः।
तत्पादाम्बुरुहप्रसादपदतः श्रीहर्षकीर्त्याह्वयो-
पाध्यायः श्रुतबोधवृत्तिमकरोद् बालावबोधाय वै॥

२. नयविमलसूरि ने वि० १७ वीं शताब्दी में वृत्ति की रचना की है।

३. वाचक मेघचन्द्र के शिष्य ने वृत्ति रची है।

४. मुनि कांतिविजय ने वृत्ति बनाई है।

५. माणिक्यमल्ल ने वृत्ति का निर्माण किया है।

वृत्तरत्नाकर—शैव शास्त्रों के विद्वान् पव्वेक के पुत्र केदार भट्ट[2] ने संस्कृत पद्यों में 'वृत्तरत्नाकर' की रचना सन् १००० के आस-पास में की है। इसमें कर्ता ने छंद-विषयक उपयोगी सामग्री दी है। यह कृति १. संज्ञा, २. मात्रावृत्त, ३. समवृत्त, ४. अर्धसमवृत्त, ५. विषमवृत्त और ६. प्रस्तार—इन छः अध्यायों में विभक्त है।

इस पर जैन लेखकों ने निम्नलिखित टीकाएँ लिखी हैं :

१. आसड नामक कवि ने 'वृत्तरत्नाकर' पर 'उपाध्यायनिरपेक्षा' नामक वृत्ति की रचना की है। आसड की नवरसभरी काव्यवाणी को सुनकर राजसभ्यों ने इन्हें 'सभाशृंगार' की पदवी से अलंकृत किया था। इन्होंने 'मेघदूत' काव्य पर सुन्दर टीका ग्रन्थ की रचना की थी। प्राकृत भाषा में 'विवेकमञ्जरी' और 'उपदेशकन्दली' नामक दो प्रकरणग्रन्थ भी रचे थे। ये वि० सं० १२४८ में विद्यमान थे।

२. वादी देवसूरि के संतानीय जयमंगलसूरि के शिष्य सोमचन्द्रगणि ने

---

१. इस टीका की एक हस्तलिखित ७ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

२. वेदार्थशैवशास्त्रज्ञः पव्वेकोऽभूद् द्विजोत्तमः।
तस्य पुत्रोऽस्ति केदारः शिवपादार्चने रतः॥

वि० सं० १३२९ में 'वृत्तरत्नाकर' पर वृत्ति की रचना की थी। इसमें इन्होंने आचार्य हेमचन्द्र के 'छन्दोनुशासन' की स्वोपज्ञ वृत्ति से उदाहरण लिये हैं। कहीं-कहीं 'वृत्तरत्नाकर' के टीकाकार सुल्हण से भी उदाहरण लिये हैं। सुल्हण की टीका के मूल पाठ से कहीं-कहीं अन्तर है।

टीकाकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

वादिश्रीदेवसूरेर्गणगगनविधौ बिभ्रतः शारदायाः,
नाम प्रत्यक्षपूर्वं सुजयपदभृतो मङ्गलाह्वस्य सूरेः।
पादद्वन्द्वारविन्देऽम्बुमधुपहिते भृङ्गभङ्गीं दधानो,
वृत्तिं सोमोऽभिरामामकृत कृतिमतां वृत्तरत्नाकरस्य ॥[1]

३. खरतरगच्छीय आचार्य जिनभद्रसूरि के शिष्य मुनि क्षेमहंस ने इस पर टिप्पन की रचना की है। ये वि० १५ वीं शताब्दी में विद्यमान थे।

४. नागपुरी तपागच्छीय हर्षकीर्तिसूरि के शिष्य अमरकीर्ति और उनके शिष्य यशःकीर्ति ने इस पर वृत्ति की रचना की है।

५. उपाध्याय समयसुन्दरगणि ने इस पर वृत्ति की रचना वि० सं० १६९४ में की है।[2]

इसके अन्त में वृत्तिकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

वृत्तरत्नाकरे वृत्तिं गणिः समयसुन्दरः।
षष्ठाध्यायस्य संबद्धा पूर्णीचक्रे प्रयत्नतः ॥ १ ॥
संवति विधिमुख-निधि-रस-शशिसंख्ये दीपपर्वदिवसे च।
जालोरनामनगरे लुणिया-कसलार्पितस्थाने ॥ २ ॥
श्रीमत्खरतरगच्छे श्रीजिनचन्द्रसूरयः।
तेषां सकलचन्द्राख्यो विनेयो प्रथमोऽभवत् ॥ ३ ॥
तच्छिष्यसमयसुन्दरः एतां वृत्तिं चकार सुगमतराम्।
श्रीजिनसागरसूरिप्रवरे गच्छाधिराजेऽस्मिन् ॥ ४ ॥

६. खरतरगच्छीय मेरुसुन्दरसूरि ने इस पर बालावबोध की रचना की है। मेरुसुन्दरसूरि वि० १६ वीं शताब्दी में विद्यमान थे।

---

१. इस टीका-ग्रंथ की एक हस्तलिखित ३३ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में है।

२. इसकी एक हस्तलिखित ३१ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में है।

पाँचवाँ प्रकरण

नाट्य

दुःखी, शोकार्त, श्रांत एवं तपस्वी व्यक्तियों को विश्रांति देने के लिये नाट्य की सृष्टि की गई है। सुख-दुःख से युक्त लोक का स्वभाव ही आंगिक, वाचिक इत्यादि अभिनयों से युक्त होने पर नाट्य कहलाता है :

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख-दुःख समन्वितः।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते॥

नाट्यदर्पण :

कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि के दो शिष्यों कविकटारमल्ल विरुद्धारक रामचन्द्रसूरि और उनके गुरुभाई गुणचंद्रगणि ने मिलकर 'नाट्यदर्पण' की रचना वि० सं० १२०० के आसपास में की।

'नाट्यदर्पण' में चार विवेक हैं जिनमें सब मिलाकर २०७ पद्य हैं।

प्रथम विवेक 'नाटकनिर्णय' में नाटकसंबंधी सब बातों का निरूपण है। इसमें १. नाटक, २. प्रकरण, ३. नाटिका, ४. प्रकरणी, ५. व्यायोग, ६. समवकार, ७. भाण, ८. प्रहसन, ९. डिम, १०. अंक, ११. ईहामृग और १२. वीथि— ये बारह प्रकार के रूपक बताये गये हैं। पांच अवस्थाओं और पाँच संधियों का भी उल्लेख है।

द्वितीय विवेक 'प्रकरणाद्येकादशनिर्णय' में प्रकरण से लेकर वीथि तक के ११ रूपकों का वर्णन है।

तृतीय विवेक 'वृत्ति-रस-भावाभिनयविचार' में चार वृत्तियों, नव रसों, नव स्थायी भावों, तैंतीस व्यभिचारी भावों, रस आदि आठ अनुभावों और चार अभिनयों का निरूपण है।

चतुर्थ विवेक 'सर्वरूपकसाधारणलक्षणनिर्णय' में सभी रूपकों के लक्षण बताये गये हैं।

छठा प्रकरण

संगीत

'सम्' और 'गीत'—इन दो शब्दों के मिलने से 'संगीत' पद बनता है। मुख से गाना गीत है। 'सम्' का अर्थ है अच्छा। वाद्य और नृत्य दोनों के मिलने से गीत अच्छा बनता है। कहा भी है :

गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।

संगीतशास्त्र का उपलब्ध आदि ग्रंथ भरत का 'नाट्यशास्त्र' है, जिसमें संगीत-विभाग (अध्याय २८ से ३६ तक) है। उसमें गीत और वाद्यों का पूरा विवरण है किंतु रागों के नाम और उनका विवरण नहीं बताया गया है।

भरत के शिष्य दत्तिल, कोहल और विशाखिल—इन तीनों ने ग्रन्थों की रचना की थी। प्रथम का दत्तिलम्, दूसरे का कोहलीयम् और तीसरे का विशाखिलम् ग्रन्थ था। विशाखिलम् प्राप्य नहीं है।

मध्यकाल में हिंदुस्तानी और कर्णाटकी पद्धतियां चलीं। उसके बाद संगीत-शास्त्र के ग्रंथ लिखे गये।

सन् १२०० में सब पद्धतियों का मंथन करके शार्ङ्गदेव ने 'संगीत-रत्नाकर' नामक ग्रन्थ लिखा। उस पर छः टीका-ग्रन्थ भी लिखे गये। इनमें से चार टीका-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

अर्धमागधी (प्राकृत) में रचित 'अनुयोगद्वार' सूत्र में संगीतविषयक सामग्री पद्य में मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि प्राकृत में संगीत का कोई ग्रन्थ रहा होगा।

उपर्युक्त जैनेतर ग्रन्थों के आधार पर जैनाचार्यों ने भी अपनी विशेषता दर्शाते हुए कुछ ग्रन्थों की रचना की है।

संगीतसमयसार :

में की है। इस ग्रन्थ में ९ अधिकरण हैं जिनमें नाद, ध्वनि, स्थायी, राग, वाद्य, अभिनय, ताल, प्रस्तार और आध्ययोग—इस प्रकार अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें प्रताप, दिगंबर और शंकर नामक ग्रंथकारों का उल्लेख है। भोज, सोमेश्वर और परमर्दी—इन तीन राजाओं के नाम भी उल्लिखित हैं।[1]

संगीतोपनिषत्सारोद्धार :

आचार्य राजशेखरसूरि के शिष्य सुधाकलश ने वि० सं० १४०६ में 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' की रचना की है।[2] यह ग्रंथ स्वयं सुधाकलश द्वारा सं० १३८० में रचित 'संगीतोपनिषत्' का साररूप है। इस ग्रंथ में छः अध्याय और ६१० श्लोक हैं। प्रथम अध्याय में गीतप्रकाशन, दूसरे में प्रस्तारादि-सोपाश्रय-तालप्रकाशन, तीसरे में गुण-स्वर-रागादिप्रकाशन, चौथे में चतुर्विध वाद्यप्रकाशन, पांचवें मे नृत्यांग-उपांग-प्रत्यंगप्रकाशन, छठे में नृत्यपद्धति-प्रकाशन है।

यह कृति संगीतमकरंद और संगीतपारिजात से भी विशिष्टतर और अधिक महत्त्व की है।

इस ग्रंथ में नरचन्द्रसूरि का संगीतज्ञ के रूप में उल्लेख है। प्रशस्ति में अपनी 'संगीतोपनिषत्' रचना के वि. सं. १३८० में होने का उल्लेख है।

मलधारी अभयदेवसूरि की परंपरा में अमरचन्द्रसूरि हो गये हैं। वे संगीतशास्त्र में विशारद थे, ऐसा उल्लेख सुधाकलश मुनि ने किया है।

संगीतोपनिषत् :

आचार्य राजशेखरसूरि के शिष्य सुधाकलश ने 'संगीतोपनिषत्' ग्रंथ की रचना वि. सं. १३८० में की, ऐसा उल्लेख ग्रन्थकार ने स्वयं सं० १४०६ में रचित अपने 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति मे किया है। यह ग्रंथ बहुत बड़ा था जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

सुधाकलश ने 'एकाक्षरनाममाला' की भी रचना की है।

---

१. विशेष परिचय के लिये देखिए—'जैन सिद्धांत भास्कर' भाग ९, अंक २ और भाग १०, अंक १०.

२. यह ग्रंथ गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा से प्रकाशित हो गया है।

संगीतमंडन :

मालवा—मांडवगढ़ के सुल्तान आलमशाह के मंत्री मंडन ने विविध विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं उनमें 'संगीतमंडन' भी एक है। इस ग्रंथ की रचना करीब वि. सं. १४९० में की है। इसकी हस्तलिखित प्रति मिलती है। ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है।

संगीतदीपक, संगीतरत्नावली, संगीतसहपिंगल :

इन तीन कृतियों का उल्लेख जैन ग्रंथावली में है, परन्तु इनके विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं मिली है।

सातवां प्रकरण

कला

चित्रवर्णसंग्रह :

सोमराजारचित 'रत्नपरीक्षा' ग्रन्थ के अन्त में 'चित्रवर्णसंग्रह' के ४२ श्लोकों का प्रकरण अत्यन्त उपयोगी है।

इसमें भित्तिचित्र बनाने के लिये भित्ति कैसी होनी चाहिये, रंग कैसे बनाना चाहिये, कलम-पींछी कैसी होनी चाहिये, इत्यादि बातों का ब्यौरेवार वर्णन है।

प्राचीन भारत में सित्तनवासल, अजन्ता, बाघ इत्यादि गुफाओं और राजा-महाराजाओं तथा श्रेष्ठियों के प्रासादों में चित्रों का जो आलेखन किया जाता था उसकी विधि इस छोटे-से ग्रंथ में बताई गई है।

यह प्रकरण प्रकाशित नहीं हुआ है।

कलाकलाप :

वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि के शिष्य कवि अमरचन्द्रसूरि की कृतियों के बारे में 'प्रबन्धकोश' में उल्लेख है, जिसमें 'कलाकलाप' नामक कृति का भी निर्देश है। इस ग्रन्थ का शास्त्ररूप में उल्लेख है, परन्तु इसकी कोई प्रति अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

इसमें ७२ या ६४ कलाओं का निरूपण हो, ऐसी सम्भावना है।

मषीविचार :

'मषीविचार' नामक एक ग्रंथ जैसलमेर-भाण्डागार में है, जिसमें ताड़पत्र और कागज पर लिखने की स्याही बनाने की प्रक्रिया बतायी गई है। इसका जैन ग्रन्थावली, पृ० ३६२ में उल्लेख है।

आठवां प्रकरण

गणित

गणित विषय बहुत व्यापक है। इसकी कई शाखाएँ हैं : अंकगणित, बीजगणित, समतलभूमिति, घनभूमिति, समतलत्रिकोणमिति, गोलीयत्रिकोणमिति, समतलबीजभूमिति, घनबीजभूमिति, शून्यलब्धि (सूक्ष्मकलन), शून्ययुति (समाकलन) और शून्यसमीकरण। इनके अतिरिक्त स्थितिशास्त्र, गतिशास्त्र, उदकस्थितिशास्त्र, खगोलशास्त्र आदि भी गणित-शास्त्र के अन्तर्गत हैं।

महावीराचार्य ने गणितशास्त्र की विशेषता और व्यापकता बताते हुए कहा है कि *लौकिक, वैदिक तथा सामयिक जो भी व्यापार हैं उन सब में गणित-संख्यान* का उपयोग रहता है। कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, गांधर्वशास्त्र, नाट्यशास्त्र, पाकशास्त्र, आयुर्वेद, वास्तुविद्या और छन्द, अलंकार, काव्य, तर्क, व्याकरण, ज्योतिष आदि में तथा कलाओं के समस्त गुणों में गणित अत्यन्त उपयोगी शास्त्र है। सूर्य आदि ग्रहों की गति ज्ञात करने में, प्रश्न अर्थात् दिक्, देश और काल का ज्ञान करने में, चन्द्रमा के परिलेख में—सर्वत्र गणित ही अंगीकृत है।

द्वीपों, समुद्रों और पर्वतों की संख्या, व्यास और परिधि, लोक, अन्तर्लोक ज्योतिर्लोक, स्वर्ग और नरक में स्थित श्रेणीबद्ध भवनों, सभाभवनों और गुंबदाकार मंदिरों के परिमाण तथा अन्य विविध परिमाण गणित की सहायता से ही जाने जा सकते हैं।

जैन शास्त्रों में चार अनुयोग गिनाए गए हैं, उनमें गणितानुयोग भी एक है। कर्मसिद्धांत के भेद-प्रभेद, काल और क्षेत्र के परिमाण आदि समझने में गणित के ज्ञान की विशेष आवश्यकता होती है।

गणित जैसे सूक्ष्म शास्त्र के विषय में अन्य शास्त्रों की अपेक्षा कम पुस्तकें प्राप्त होती हैं, उनमें भी जैन विद्वानों के ग्रन्थ बहुत कम संख्या में मिलते हैं।

गणितसारसंग्रह :

'गणितसारसंग्रह' के रचयिता महावीराचार्य दिगम्बर जैन विद्वान् थे। इन्होंने ग्रन्थ के आरंभ में कहा है कि जगत् के पूज्य तीर्थंकरों के शिष्य-प्रशिष्यों

के प्रसिद्ध गुणरूप समुद्रों में से रत्नसमान, पाषाणों में से कंचनसमान, और शुक्तियों में से मुक्ताफलसमान सार निकाल कर मैंने इस 'गणितसारसंग्रह' की यथामति रचना की है। यह ग्रन्थ लघु होने पर भी अनल्पार्थक है।

इसमें आठ व्यवहारों का निरूपण इस प्रकार है : १. परिकर्म, २. कलासवर्ण, ३. प्रकीर्णक, ४. त्रैराशिक, ५. मिश्रक, ६. क्षेत्रगणित, ७. खात और ८. छाया।

प्रथम अध्याय में गणित की विभिन्न इकाइयों व क्रियाओं के नाम, संख्याएँ, ऋणसंख्या और ग्रन्थ की महिमा तथा विषय निरूपित हैं।

महावीराचार्य ने त्रिभुज और चतुर्भुजसंबंधी गणित का विश्लेषण विशिष्ट रीति से किया है। यह विशेषता अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकती।[1]

त्रिकोणमिति तथा रेखागणित के मौलिक और व्यावहारिक प्रश्नों से मालूम होता है कि महावीराचार्य गणित में ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के समान हैं। तथापि महावीराचार्य उनसे अधिक पूर्ण और आगे हैं। विस्तार में भी भास्कराचार्य की लीलावती से यह ग्रन्थ बड़ा है।

महावीराचार्य ने अंकसंबंधी जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल—इन आठ परिकर्मों का उल्लेख किया है। इन्होंने शून्य और काल्पनिक संख्याओं पर भी विचार किया है। भिन्नों के भाग के विषय में महावीराचार्य की विधि विशेष उल्लेखनीय है।

लघुतम समापवर्तक के विषय में अनुसंधान करनेवालों में महावीराचार्य प्रथम गणितज्ञ हैं जिन्होंने लाघवार्थ—निरुद्ध लघुतम समापवर्त्य की कल्पना की। इन्होंने 'निरुद्ध' की परिभाषा करते हुए कहा कि छेदों के महत्तम समापवर्तक और उसका भाग देने पर प्राप्त लब्धियों का गुणनफल 'निरुद्ध' कहलाता है। भिन्नों का समच्छेद करने के लिये नियम इस प्रकार है—निरुद्ध को हर से भाग देकर जो लब्धि प्राप्त हो उससे हर और अंश दोनों को गुणा करने से सब भिन्नों का हर एक-सा हो जायगा।

महावीराचार्य ने समीकरण को व्यावहारिक प्रश्नों द्वारा समझाया है। इन प्रश्नों को दो भागों में विभाजित किया है : एक तो वे प्रश्न जिनमें अज्ञात

---

१. देखिए, डा० विभूतिभूषण—मेथेमेटिकल सोसायटी बुलेटिन नं० २० में 'ऑन महावीर्स सोल्युशन ऑफ ट्रायेंगल्स एण्ड क्वाड्रीलेटरल' शीर्षक लेख।

राशि के वर्गमूल का कथन होता है और दूसरे वे जिनमें अज्ञात राशि के वर्ग का निर्देश रहता है।

'गणितसारसंग्रह' में चौबीस अंक तक की संख्याओं का निर्देश किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं : १. एक, २. दश, ३. शत, ४. सहस्र, ५. दश-सहस्र, ६. लक्ष, ७. दशलक्ष, ८. कोटि, ९. दशकोटि, १०. शतकोटि, ११. अर्बुद, १२. न्यर्बुद, १३. खर्व, १४. महाखर्व, १५. पद्म, १६. महापद्म, १७. क्षोणी, १८. महाक्षोणी, १९. शंख, २०. महाशंख, २१. क्षिति, २२. महाक्षिति, २३. क्षोभ, २४. महाक्षोभ।

अंकों के लिये शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, जैसे—३ के लिये रत्न, ६ के लिये द्रव्य, ७ के लिये तत्त्व, पन्नग और भय, ८ के लिये कर्म, तनु, मद और ९ के लिये पदार्थ इत्यादि। महावीराचार्य ब्रह्मगुप्तकृत 'ब्राह्मस्फुटसिद्धांत' ग्रंथ से परिचित थे। श्रीधर की 'त्रिशतिका' का भी इन्होंने उपयोग किया था ऐसा मालूम होता है। ये राष्ट्रकूट वंश के शासक अमोघवर्ष नृपतुंग (सन् ८१४ से ८७८) के समकालीन थे। इन्होंने 'गणितसारसंग्रह' की उत्थानिका में उनकी खूब प्रशंसा की है।

इस कृति में जिनेश्वर की पूजा, फलपूजा, दीपपूजा, गंधपूजा, धूपपूजा इत्यादिविषयक उदाहरणों और बारह प्रकार के तप तथा बारह अंगों—द्वादशांगी का उल्लेख होने से महावीराचार्य निःसन्देह जैनाचार्य थे ऐसा निर्णय होता है।[1]

गणितसारसंग्रह-टीका :

दक्षिण भारत में महावीराचार्यरचित 'गणितसार-संग्रह' सर्वमान्य ग्रंथ रहा है। इस ग्रंथ पर वरदराज और अन्य किसी विद्वान् ने संस्कृत में टीकाएँ लिखी हैं। ११ वीं शताब्दी में पावुलूरिमल्ल ने इसका तेलुगु भाषा में अनुवाद किया है। वल्लभ नामक विद्वान् ने कन्नड़ में तथा अन्य किसी विद्वान् ने तेलुगु में व्याख्या की है।

षट्त्रिंशिका :

महावीराचार्य ने 'षट्त्रिंशिका' ग्रंथ की भी रचना की है। इसमें उन्होंने बीजगणित की चर्चा की है।

---

१. यह ग्रंथ मद्रास सरकार की अनुमति से प्रो० रंगाचार्य ने अंग्रेजी टिप्पणियों के साथ संपादित कर सन् १९१२ में प्रकाशित किया है।

इस ग्रंथ की दो हस्तलिखित प्रतियों के, जिनमें से एक ४५ पत्रों की और दूसरी १८ पत्रों की है, 'राजस्थान के जैन शास्त्र-भंडारों की ग्रंथसूची' में जयपुर के ठोलियों के मंदिर के भंडार में होने का उल्लेख है।

गणितसारकौमुदी :

जैन गृहस्थ विद्वान् ठक्कर फेरु ने 'गणितसारकौमुदी' नामक ग्रंथ की रचना पद्य में प्राकृत भाषा में की है। इसमें उन्होंने अपने अन्य ग्रंथों की तरह पूर्ववर्ती साहित्यकारों के नामों का उल्लेख नहीं किया है।

ठक्कर फेरु ने अपनी इस रचना में भास्कराचार्य की 'लीलावती' का पर्याप्त सहारा लिया है। दोनों ग्रंथों में साम्य भी बहुत अंशों में देखा जाता है। जैसे— परिभाषा, श्रेढीव्यवहार, क्षेत्रव्यवहार, मिश्रव्यवहार, खातव्यवहार, चितिव्यवहार, राशिव्यवहार, छायाव्यवहार—यह विषयविभाग जैसा 'लीलावती' में है वैसा ही इसमें भी है। स्पष्ट है कि ठक्कर फेरु ने अपने 'गणितसारकौमुदी' ग्रन्थ की रचना में 'लीलावती' को ही आदर्श रखा है। कहीं-कहीं तो 'लीलावती' के पद्यों को ही अनूदित कर दिया है।

जिन विषयों का उल्लेख 'लीलावती' में नहीं है ऐसे देशाधिकार, वस्त्राधिकार, तात्कालिक भूमिकर, धान्योत्पत्ति आदि इतिहास और विज्ञान की दृष्टि से अति मूल्यवान् प्रकरण इसमें हैं। इनसे ठक्कर फेरु की मौलिक विचारधारा का परिचय भी प्राप्त होता है। ये प्रकरण छोटे होते हुए भी अति महत्त्व के हैं। इन विषयों पर उस समय के किसी अन्य विद्वान् ने प्रकाश नहीं डाला। अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन बादशाहों के समय की सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति का ज्ञान इन्हीं के सूक्ष्मतम अध्ययन पर निर्भर है।

इस ग्रंथ के क्षेत्रव्यवहार-प्रकरण में नामों को स्पष्ट करने के लिये यंत्र दिये गये हैं। अन्य विषयों को भी सुगम बनाने के लिये अनेक यंत्रों का आलेखन किया गया है। ठक्कर फेरु के यंत्र कहीं-कहीं 'लीलावती' के यंत्रों से मेल नहीं खाते।

ठक्कर फेरु ने अपनी ग्रंथ-रचना में महावीराचार्य के 'गणितसारसंग्रह' का भी उपयोग किया है।

'गणितसारकौमुदी' में लोकभाषा के शब्दों का भी बहुतायत में प्रयोग किया गया है, जो भाषाविज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

इसमें यन्त्र-प्रकरण में अंकसूचक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

ठक्कर फेरु ठक्कर चन्द्र के पुत्र थे। ये देहली में टंकशाला के अध्यक्ष पद पर नियुक्त थे। इन्होंने यह ग्रन्थ वि० सं० १३७२ से १३८० के बीच में रचा होगा। यह ग्रन्थ अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

ठक्कर फेरु ने अन्य कई ग्रन्थों की रचना की है जो इस प्रकार हैं :

१. वास्तुसार, २. ज्योतिस्सार, ३. रत्नपरीक्षा, ४. द्रव्यपरीक्षा (मुद्राशास्त्र), ५. भूगर्भप्रकाश, ६. धातूत्पत्ति, ७. युगप्रधान चौपाई।

पाटीगणित :

'पाटीगणित' के कर्ता पल्लीवाल अनन्तपाल जैन गृहस्थ थे। इन्होंने 'नेमिचरित' नामक महाकाव्य की रचना की है। अनन्तपाल के भाई धनपाल ने वि० सं० १२६१ में 'तिलकमञ्जरीकथासार' रचा था।

इस 'पाटीगणित' में अंकगणितविषयक चर्चा की होगी, ऐसा अनुमान है।

गणितसंग्रह :

'गणितसंग्रह' नामक ग्रन्थ के रचयिता यल्लाचार्य थे। ये जैन थे। यल्लाचार्य प्राचीन लेखक हैं, परन्तु ये कब हुए यह कहना मुश्किल है।

सिद्ध-भू-पद्धति :

'सिद्ध-भू-पद्धति' किसने कब रचा, यह निश्चित नहीं है। इसके टीकाकार वीरसेन ९ वीं शताब्दी में विद्यमान थे। इससे सिद्ध-भू-पद्धति उनसे पहले रची गई थी यह निश्चित है।

'उत्तरपुराण' की प्रशस्ति में गुणभद्र ने अपने दादागुरु वीरसेनाचार्य के विषय में उल्लेख किया है कि 'सिद्ध-भू-पद्धति' का प्रत्येक पद विषम था। इस पर वीरसेनाचार्य के टीका-निर्माण करने से यह मुनियों को समझने में सुगम हो गया।

इसमें क्षेत्रगणित का विषय होगा, ऐसा अनुमान है।

सिद्ध-भू-पद्धति-टीका :

'सिद्ध-भू-पद्धति-टीका' के कर्ता वीरसेनाचार्य हैं। ये आर्यनन्दि के शिष्य, जिनसेनाचार्य प्रथम के गुरु तथा 'उत्तरपुराण' के रचयिता गुणभद्राचार्य के प्रगुरु थे। इनका जन्म शक सं० ६६० (वि० सं० ७९५) और स्वर्गवास शक सं० ७४५ (वि० सं० ८८०) में हुआ।

आचार्य वीरसेन ने 'षट्खण्डागम' (कर्मप्राभृत) के पाँच खंडों की व्याख्या 'धवला' नाम से शक सं० ७३८ (वि० सं० ८७३) में की है। इस व्याख्या से प्रतीत होता है कि वीरसेनाचार्य अच्छे गणितज्ञ थे। इन्होंने 'कसायपाहुड' पर 'जयधवला' नामक टीका की रचना करना प्रारम्भ किया था परन्तु २०००० श्लोक-प्रमाण टीका लिखने के बाद उनका स्वर्गवास हो गया।

'सिद्ध-भू-पद्धति' पर भी इन्होंने टीका की रचना की जिससे यह ग्रन्थ समझना सरल हो गया।

क्षेत्रगणित :

'क्षेत्रगणित' के कर्ता नेमिचन्द्र हैं, ऐसा उल्लेख 'जिनरत्नकोश' पृ० ९८ में है।

इष्टाङ्कपञ्चविंशतिका :

लोंकागच्छीय मुनि तेजसिंह ने 'इष्टाङ्कपञ्चविंशतिका' ग्रन्थ रचा है। इसमें कुल २६ पद्य हैं। यह ग्रन्थ गणितविषयक है।[१]

गणितसूत्र :

'गणितसूत्र' के कर्ता का नाम अज्ञात है, परंतु इतना निश्चित है कि इस ग्रन्थ की रचना किसी दिगंबर जैनाचार्य ने की है।[२]

गणितसार-टीका :

श्रीधरकृत 'गणितसार' ग्रन्थ पर उपकेशगच्छीय सिद्धसूरि ने टीका रची है। इसका उल्लेख श्री अगरचंदजी नाहटा ने अपने 'जैनेतर ग्रन्थों पर जैन विद्वानों की टीकाएँ' शीर्षक लेख में किया है।

गणिततिलक-वृत्ति :

श्रीपतिकृत 'गणिततिलक' पर आचार्य विबुधचंद्र के शिष्य सिंहतिलकसूरि ने

---

१. इसकी ३ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के संग्रह में है।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति आरा के जैन सिद्धांत भवन में है।

लगभग वि० सं० १३३० में टीका की रचना की है।[1] इसमें इन्होंने 'लीलावती' और 'त्रिशतिका' का उपयोग किया है।

सिंहतिलकसूरि के उपलब्ध ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

१. मंत्रराजरहस्य (सूरिमंत्रसंबंधी), २. वर्धमानविद्याकल्प, ३. भुवनदीपकवृत्ति (ज्योतिष्), ४. परमेष्ठिविद्यायंत्रस्तोत्र, ५. लघुनमस्कारचक्र, ६. ऋषिमण्डलयंत्रस्तोत्र।

---

१. यह टीका प्रो० हीरालाल र० कापड़िया द्वारा सम्पादित होकर गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा से सन् १९३७ में प्रकाशित हुई है।

नवां प्रकरण

ज्योतिष

ज्योतिष-विषयक जैन आगम-ग्रन्थों में निम्नलिखित अंगबाह्य सूत्रों का समावेश होता है :

१. सूर्यप्रज्ञप्ति,[1] २. चन्द्रप्रज्ञप्ति,[2] ३. ज्योतिष्करण्डक,[3] ४. गणिविद्या।[4]

ज्योतिस्सार :

ठक्कर फेरु ने 'ज्योतिस्सार' नामक ग्रंथ[5] की प्राकृत में रचना की है। उन्होंने इस ग्रंथ में लिखा है कि हरिभद्र, नरचंद्र, पद्मप्रभसूरि, जउण, वराह, लल्ल, पराशर, गर्ग आदि ग्रंथकारों के ग्रंथों का अवलोकन करके इसकी रचना (वि. सं. १३७२–७५ के आसपास) की है।

चार द्वारों में विभक्त इस ग्रंथ में कुल मिलाकर २३८ गाथाएँ हैं। दिनशुद्धि नामक द्वार में ४२ गाथाएँ हैं, जिनमें वार, तिथि और नक्षत्रों में सिद्धि-योग का प्रतिपादन है। व्यवहारद्वार में ६० गाथाएँ हैं, जिनमें ग्रहों की राशि, स्थिति, उदय, अस्त और वक्र दिन की संख्या का वर्णन है। गणितद्वार में ३८ गाथाएँ हैं और लग्नद्वार में ९८ गाथाएँ हैं। इनके अन्य ग्रंथों के बारे में अन्यत्र लिखा गया है।

---

१. सूर्यप्रज्ञप्ति के परिचय के लिए देखिए—इसी इतिहास का भाग २, पृ० १०५–११०.

२. चन्द्रप्रज्ञप्ति के परिचय के लिए देखिए—वही, पृ. ११०

३. ज्योतिष्करण्डक के परिचय के लिए देखिए—भाग ३, पृ. ४१३–४२७. इस प्रकीर्णक के प्रणेता संभवतः पादलिप्ताचार्य हैं।

४. गणिविद्या के परिचय के लिए देखिए—भाग २, पृ. ३५९.
इन सब ग्रंथों की व्याख्याओं के लिए इसी इतिहास का तृतीय भाग देखना चाहिए।

५. यह 'रत्नपरीक्षादिसप्तग्रन्थसंग्रह' में राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित है।

विवाहपडल (विवाहपटल) :

'विवाहपडल' के कर्ता अज्ञात हैं। यह प्राकृत में रचित एक ज्योतिष-विषयक ग्रंथ है, जो विवाह के समय काम में आता है। इसका उल्लेख 'निशीथविशेष-चूर्णि' में मिलता है।

लग्गसुद्धि (लग्नशुद्धि) :

'लग्गसुद्धि' नामक ग्रंथ के कर्ता याकिनी-महत्तरासूनु हरिभद्रसूरि माने जाते हैं। परन्तु यह संदिग्ध मालूम होता है। यह 'लग्नकुण्डलिका' नाम से प्रसिद्ध है। प्राकृत की कुल १३३ गाथाओं में गोचरशुद्धि, प्रतिद्वारदशक, मास-वार-तिथि-नक्षत्र-योगशुद्धि, सुगणदिन, रजछन्नद्वार, संक्रांति, कर्कयोग, वार-नक्षत्र-अशुभयोग, सुगणार्क्षद्वार, होरा, नवांश, द्वादशांश, षड्वर्गशुद्धि, उदयास्तशुद्धि इत्यादि विषयों पर चर्चा की गई है।[1]

दिणसुद्धि (दिनशुद्धि) :

पंद्रहवीं शती में विद्यमान रत्नशेखरसूरि ने 'दिनशुद्धि' नामक ग्रंथ की प्राकृत में रचना की है। इसमें १४४ गाथाएँ हैं, जिनमें रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि का वर्णन करते हुए तिथि, लग्न, प्रहर, दिशा और नक्षत्र की शुद्धि बताई गई है।[2]

कालसंहिता :

'कालसंहिता' नामक कृति आचार्य कालक ने रची थी, ऐसा उल्लेख मिलता है। वराहमिहिरकृत 'बृहज्जातक' (१६. १) की उत्पलकृत टीका में बंकालकाचार्यकृत 'बंकालकसंहिता' से दो प्राकृत पद्य उद्धृत किये गये हैं। 'बंकालकसंहिता' नाम अशुद्ध प्रतीत होता है। यह 'कालकसंहिता' होनी चाहिए, ऐसा अनुमान होता है। यह ग्रंथ अनुपलब्ध है।

कालकसूरि ने किसी निमित्तग्रंथ का निर्माण किया था, यह निम्न उल्लेख से ज्ञात होता है :

---

१. यह ग्रन्थ उपाध्याय क्षमाविजयजी द्वारा संपादित होकर शाह मूलचंद बुलाखीदास की ओर से सन् १९३८ में बम्बई से प्रकाशित हुआ है।

२. यह ग्रंथ उपाध्याय क्षमाविजयजी द्वारा संपादित होकर शाह मूलचंद बुलाखीदास, बम्बई की ओर से सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ है।

पढमणुओगे कासी जिणचक्किदसारचरियपुव्वभवे।
कालगसूरी बहुयं लोगाणुओगे निमित्तं च॥

गणहरहोरा (गणधरहोरा):

'गणहरहोरा' नामक यह कृति किसी अज्ञात नामा विद्वान् ने रची है। इसमें २९ गाथाएँ हैं। मंगलाचरण में 'नमिऊण इंदभूई' उल्लेख होने से यह किसी जैनाचार्य की रचना प्रतीत होती है। इसमें ज्योतिष-विषयक होरासंबंधी विचार है। इसकी ३ पत्रों की एक प्रति पाटन के जैन भंडार में है।

प्रश्नपद्धति:

'प्रश्नपद्धति' नामक ज्योतिषविषयक ग्रंथ की हरिश्चन्द्रगणि ने संस्कृत में रचना की है। कर्ता ने निर्देश किया है कि गीतार्थचूडामणि आचार्य अभयदेवसूरि के मुख से प्रश्नों का अवधारण कर उन्हीं की कृपा से इस ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रन्थ कर्ता ने अपने ही हाथ से पाटन के अन्नपाटक में चातुर्मास की अवस्थिति के समय लिखा है।

जोइसदार (ज्योतिर्द्वार):

'जोइसदार' नामक प्राकृत भाषा की २ पत्रों की कृति पाटन के जैन भंडार में है। इसके कर्ता का नाम अज्ञात है। इसमें राशि और नक्षत्रों से शुभाशुभ फलों का वर्णन किया गया है।

जोइसचक्कवियार (ज्योतिष्चक्रविचार):

जैन ग्रन्थावली (पृ० ३४७) में 'जोइसचक्कवियार' नामक प्राकृत भाषा की कृति का उल्लेख है। इस ग्रन्थ का परिमाण १५५ ग्रन्थाग्र है। इसके कर्ता का नाम विनयकुशल मुनि निर्दिष्ट है।

भुवनदीपक:

'भुवनदीपक' का दूसरा नाम 'ग्रहभावप्रकाश' है।[1] इसके कर्ता आचार्य पद्मप्रभसूरि[2] हैं। ये नागपुरीय तपागच्छ के संस्थापक हैं। इन्होंने वि० सं० १२२१ में 'भुवनदीपक' की रचना की।

---

१. ग्रहभावप्रकाशाख्यं शास्त्रमेतत् प्रकाशितम्।
जगद्भावप्रकाशाय श्रीपद्मप्रभसूरिभिः॥

२. आचार्य पद्मप्रभसूरि ने 'मुनिसुव्रतचरित' की रचना की है, जिसकी वि० सं० १३०४ में लिखी गई प्रति जैसलमेर-भंडार में विद्यमान है।

यह ग्रंथ छोटा होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें ३६ द्वार (प्रकरण) हैं : १. ग्रहों के अधिप, २. ग्रहों की उच्च-नीच स्थिति, ३. परस्परमित्रता, ४. राहुविचार, ५. केतुविचार, ६. ग्रहचक्रों का स्वरूप, ७. बारह भाव, ८. अभीष्ट कालनिर्णय, ९. लग्नविचार, १०. विनष्ट ग्रह, ११. चार प्रकार के राजयोग, १२. लाभविचार, १३. लाभफल, १४. गर्भ की क्षेमकुशलता, १५. स्त्रीगर्भ-प्रसूति, १६. दो संतानों का योग, १७. गर्भ के महीने, १८. भार्या, १९. विषकन्या, २०. भावों के ग्रह, २१. विवाहविचारणा, २२. विवाद, २३. मिश्रपद-निर्णय, २४. पृच्छा-निर्णय, २५. प्रवासी का गमनागमन, २६. मृत्युयोग, २७. दुर्गभंग, २८. चौर्य-स्थान, २९. अर्घज्ञान, ३०. मरण, ३१. लाभोदय, ३२. लग्न का मासफल, ३३. द्रेकाणफल, ३४. दोषज्ञान, ३५. राजाओं की दिनचर्या, ३६. इस गर्भ में क्या होगा? इस प्रकार कुल १७० श्लोकों में ज्योतिषविषयक अनेक विषयों पर विचार किया गया है।

१. भुवनदीपक-वृत्ति :

'भुवनदीपक' पर आचार्य सिंहतिलकसूरि ने वि० सं० १३२६ में १७०० श्लोक-प्रमाण वृत्ति की रचना की है। सिंहतिलकसूरि ज्योतिष् शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इन्होंने श्रीपति के 'गणिततिलक' पर भी एक महत्त्वपूर्ण टीका लिखी है।

सिंहतिलकसूरि विबुधचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इन्होंने वर्धमानविद्याकल्प, मंत्रराजरहस्य आदि ग्रंथों की रचना की है।

२. भुवनदीपक-वृत्ति :

मुनि हेमतिलक ने 'भुवनदीपक' पर एक वृत्ति रची है। समय अज्ञात है।

३. भुवनदीपक-वृत्ति :

दैवज्ञ शिरोमणि ने 'भुवनदीपक' पर एक विवरणात्मक वृत्ति की रचना की है। समय ज्ञात नहीं है। ये टीकाकार जैनेतर हैं।

४. भुवनदीपक-वृत्ति :

किसी अज्ञात नामा जैन मुनि ने 'भुवनदीपक' पर एक वृत्ति रची है। समय भी अज्ञात है।

ऋषिपुत्र की कृति :

गर्गाचार्य के पुत्र और शिष्य ने निमित्तशास्त्रसंबंधी किसी ग्रंथ का निर्माण किया है। ग्रंथ प्राप्य नहीं है। कई विद्वानों के मत से इनका समय देवल के

बाद और वराहमिहिर के पहले कहीं है। भट्टोत्पली टीका में ऋषिपुत्र के संबंध में उल्लेख है। इससे वे शक सं० ८८८ (वि० सं० १०२३) के पूर्व हुए यह निर्विवाद है।

आरम्भसिद्धि :

नागेन्द्रगच्छीय आचार्य विजयसेनसूरि के शिष्य उदयप्रभसूरि ने 'आरम्भसिद्धि' (पंचविमर्श) ग्रंथ की रचना (वि० सं० १२८०) संस्कृत में ४१३ पद्यों में की है।[1]

इस ग्रंथ में पांच विमर्श हैं और ११ द्वारों में इस प्रकार विषय हैं: १. तिथि, २. वार, ३. नक्षत्र, ४. सिद्धि आदि योग, ५. राशि, ६. गोचर, ७. (विद्यारंभ आदि) कार्य, ८. गमन—यात्रा, ९. (गृह आदि का) वास्तु, १०. विलग्न और ११. मिश्र।

इसमें प्रत्येक कार्य के शुभ-अशुभ मुहूर्तों का वर्णन है। मुहूर्त के लिये 'मुहूर्तचिंतामणि' ग्रंथ के समान ही यह ग्रंथ उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। ग्रंथ का अध्ययन करने पर कर्ता की गणित-विषयक योग्यता का भी पता लगता है।

इस ग्रंथ के कर्ता आचार्य उदयप्रभसूरि मल्लिषेणसूरि और जिनभद्रसूरि के गुरु थे। उदयप्रभसूरि ने धर्माभ्युदयमहाकाव्य, नेमिनाथचरित्र, सुकृतकीर्तिकल्लोलिनीकाव्य एवं वि० सं० १२९९ में 'उवएसमाला' पर 'कर्णिका' नाम से टीकाग्रंथ की रचना की है। 'छासीइ' और 'कम्मत्थय' पर टिप्पण आदि ग्रंथ रचे हैं। गिरनार के वि० सं० १२८८ के शिलालेखों में से एक शिलालेख की रचना इन्होंने की है।

आरम्भसिद्धि-वृत्ति :

आचार्य रत्नशेखरसूरि के शिष्य हेमहंसगणि ने वि० सं० १५१४ में 'आरम्भसिद्धि' पर 'सुधीश्रृङ्गार' नाम से वार्तिक रचा है। टीकाकार ने मुहूर्त-संबंधी साहित्य का सुन्दर संकलन किया है। टीका में बीच-बीच में ग्रहगणित-विषयक प्राकृत गाथाएँ उद्धृत की हैं जिससे मालूम पड़ता है कि प्राकृत में ग्रहगणित का कोई ग्रंथ था। उसके नाम का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

---

१. यह हेमहंसकृत वृत्तिसहित जैन शासन प्रेस, भावनगर से प्रकाशित है।

पाण्डवचरित्र और आचार्य उदयप्रभसूरि-रचित 'धर्माभ्युदयकाव्य' का संशोधन किया था।

आचार्य नरचन्द्रसूरि के आदेश से मुनि गुणवल्लभ ने वि० सं० १२७१ में 'व्याकरणचतुष्कावचूरि' की रचना की।

ज्योतिस्सार-टिप्पण :

आचार्य नरचंद्रसूरि-रचित 'ज्योतिस्सार' ग्रन्थ पर सागरचन्द्र मुनि ने १२३५ श्लोक-प्रमाण टिप्पण की रचना की है। खास कर 'ज्योतिस्सार' में दिये हुए यंत्रों का उद्धार और उस पर विवेचन किया है। मंगलाचरण में कहा गया है :

सरस्वतीं नमस्कृत्य यन्त्रकोद्धारटिप्पणम्।
करिष्ये नारचन्द्रस्य मुग्धानां बोधहेतवे ॥

यह टिप्पण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

जन्मसमुद्र :

'जन्मसमुद्र' ग्रंथ के कर्ता नरचन्द्र उपाध्याय हैं, जो कासद्रहगच्छ के उद्द्योतनसूरि के शिष्य सिंहसूरि के शिष्य थे। उन्होंने वि. सं. १३२३ में इस ग्रंथ की रचना की। आचार्य देवानन्दसूरि को अपने विद्यागुरु के रूप में स्वीकार करते हुए निम्न शब्दों में कृतज्ञताभाव प्रदर्शित किया है :

देवानन्दमुनीश्वरपदपङ्कजसेवकषट्चरणः ।
ज्योतिःशास्त्रमकार्षीद् नरचन्द्राख्यो मुनिप्रवरः ॥

यह ज्योतिष-विषयक उपयोगी लाक्षणिक ग्रन्थ है जो निम्नोक्त आठ कल्लोलों में विभक्त है : १. गर्भसंभवादिलक्षण (पद्य ३१), २. जन्मप्रत्ययलक्षण (पद्य २९), ३. रिष्टयोग-तद्भंगलक्षण (पद्य १०), ४. निर्याणलक्षण (पद्य २०), ५. द्रव्योपार्जनराजयोगलक्षण (पद्य २६), ६. बालस्वरूपलक्षण (पद्य २०), ७. स्त्रीजातकस्वरूपलक्षण (पद्य १८), ८. नाभसादियोगदौःस्थ्यायुर्योगलक्षण (पद्य २३)।

इसमें लग्न और चन्द्रमा से समस्त फलों का विचार किया गया है। जातक का यह अत्यंत उपयोगी ग्रंथ है।[1]

---

१. यह कृति अभी छपी नहीं है। इसकी ७ पत्रों की हस्तलिखित प्रति ला० द० भा० सं० विद्यामंदिर, अहमदाबाद में है। यह प्रति १६ वीं शताब्दी में लिखी गई है।

वेडाजातकवृत्ति :

'जन्मसमुद्र' पर नरचन्द्र उपाध्याय ने 'वेडाजातक' नामक स्वोपज्ञ-वृत्ति की रचना वि. सं. १३२४ की माघ-शुक्ला अष्टमी (रविवार) के दिन की है। यह वृत्ति १०५० श्लोक-प्रमाण है। यह ग्रन्थ अभी छपा नहीं है।

नरचन्द्र उपाध्याय ने प्रश्नशतक, ज्ञानचतुर्विंशिका, लग्नविचार, ज्योतिष्-प्रकाश, ज्ञानदीपिका आदि ज्योतिष-विषयक अनेक ग्रन्थ रचे हैं।

प्रश्नशतक :

कासहृद्गच्छीय नरचन्द्र उपाध्याय ने 'प्रश्नशतक' नामक ज्योतिष-विषयक ग्रंथ वि० सं० १३२४ में रचा है। इसमें करीब सौ प्रश्नों का समाधान किया है। यह ग्रंथ छपा नहीं है।

प्रश्नशतक-अवचूरि :

नरचन्द्र उपाध्याय ने अपने 'प्रश्नशतक' ग्रन्थ पर वि. सं. १३२४ में स्वोपज्ञ अवचूरि की रचना की है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

ज्ञानचतुर्विंशिका :

कासहृद्गच्छीय उपाध्याय नरचन्द्र ने 'ज्ञानचतुर्विंशिका' नामक ग्रंथ की २४ पद्यों में रचना करीब वि० सं० १३२५ में की है। इसमें लग्नानयन, होरा-द्यानयन, प्रश्नाक्षराल्लग्नानयन, सर्वलग्नग्रहबल, प्रश्नयोग, पतितादिज्ञान, पुत्र-पुत्रीज्ञान, दोषज्ञान, जयपृच्छा, रोगपृच्छा आदि विषयों का वर्णन है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है।[1]

ज्ञानचतुर्विंशिका-अवचूरि :

'ज्ञानचतुर्विंशिका' पर उपाध्याय नरचन्द्र ने करीब वि० सं० १३२५ में स्वोपज्ञ अवचूरि की रचना की है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

ज्ञानदीपिका :

कासहृद्गच्छीय उपाध्याय नरचन्द्र ने 'ज्ञानदीपिका' नामक ग्रन्थ की रचना करीब वि० सं० १३२५ में की है।

---

१. इसकी १ पत्र की प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में है। यह वि० सं० १७०८ में लिखी गई है।

लग्नविचार :

कासहृद्गच्छीय उपाध्याय नरचन्द्र ने 'लग्नविचार' नामक ग्रन्थ की रचना करीब वि० सं० १३२५ में की है।

ज्योतिषप्रकाश :

कासहृद्गच्छीय नरचन्द्र मुनि ने 'ज्योतिषप्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना करीब वि० सं० १३२५ में की है। फलित ज्योतिष् के मुहूर्त और संहिता का यह सुंदर ग्रंथ है। इसके दूसरे विभाग में जन्मकुण्डली के फलों का अत्यन्त सरलता से विचार किया गया है। फलित ज्योतिष् का आवश्यक ज्ञान इस ग्रंथ द्वारा प्राप्त हो सकता है।

चतुर्विंशिकोद्धार :

कासहृद्गच्छीय नरचन्द्र उपाध्याय ने 'चतुर्विंशिकोद्धार' नामक ज्योतिष-ग्रंथ की रचना करीब वि० सं० १३२५ में की है। प्रथम श्लोक में ही कर्ता ने ग्रंथ का उद्देश्य इस प्रकार बताया है :

श्रीवीराय जिनेशाय नत्वाऽतिशयशालिने।
प्रश्नलग्नप्रकारोऽयं संक्षेपात् क्रियते मया॥

इस ग्रन्थ में प्रश्न-लग्न का प्रकार संक्षेप में बताया गया है। ग्रन्थ में मात्र १७ श्लोक हैं, जिनमें होराद्यानयन, सर्वलग्नग्रहबल, प्रश्नयोग, पतितादिज्ञान, जयाजयपृच्छा, रोगपृच्छा आदि विषयों की चर्चा है। ग्रन्थ के प्रारंभ में ही ज्योतिष-संबंधी महत्त्वपूर्ण गणित बताया है। यह ग्रंथ अत्यन्त गूढ और रहस्य पूर्ण है। निम्न श्लोक में कर्ता ने अत्यन्त कुशलता से दिनमान सिद्ध करने की रीति बताई है :

पञ्चवेदयामगुण्ये रविभुक्तदिनान्विते।
त्रिंशद्भुक्ते स्थितं यत् तत् लग्नं सूर्योदयर्क्षतः॥

यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।[1]

---

१. इसकी १ पत्र की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

चतुर्विंशिकोद्धार-अवचूरि :

'चतुर्विंशिकोद्धार' ग्रन्थ पर नरचंद्र उपाध्याय ने अवचूरि भी रची है। यह अवचूरि प्रकाशित नहीं हुई है।

ज्योतिस्सारसंग्रह :

नागोरी तपागच्छीय आचार्य चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्तिसूरि ने वि० सं० १६६० में 'ज्योतिस्सारसंग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसे 'ज्योतिष-सारोद्धार' भी कहते हैं। यह ग्रन्थ तीन प्रकरणों में विभक्त है।[1]

ग्रन्थकार ने भक्तामरस्तोत्र, लघुशान्तिस्तोत्र, अजितशान्तिस्तव, उवसग्गहर-थोत्त, नवकारमंत आदि स्तोत्रों पर टीकाएँ लिखी हैं।

१. जन्मपत्रीपद्धति :

नागोरी तपागच्छीय आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने करीब वि० सं० १६६० में 'जन्मपत्रीपद्धति' नामक ग्रन्थ की रचना की है।

सारावली, श्रीपतिपद्धति आदि विख्यात ग्रन्थों के आधार से इस ग्रन्थ की संकलना की गई है। इसमें जन्मपत्री बनाने की रीति, ग्रह, नक्षत्र, वार, दशा आदि के फल बताये गये हैं।[2]

२. जन्मपत्रीपद्धति :

खरतरगच्छीय मुनि कल्याणनिधान के शिष्य लब्धिचन्द्रगणि ने वि० सं० १७५१ में 'जन्मपत्रीपद्धति' नामक एक व्यवहारोपयोगी ज्योतिष-ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में इष्टकाल, भयात, भभोग, लग्न और नवग्रहों का स्पष्टी-करण आदि गणित-विषयक चर्चा के साथ-साथ जन्मपत्री के सामान्य फलों का वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

३. जन्मपत्रीपद्धति :

मुनि महिमोदय ने 'जन्मपत्रीपद्धति' नामक ग्रन्थ की रचना वि० सं० १७२१ में की है। ग्रन्थ पद्य में है। इसमें सारणी, ग्रह, नक्षत्र, वार आदि के फल बताये गये हैं।[3]

---

१. अहमदाबाद के डेला भंडार में इसकी हस्तलिखित प्रति है।

२. इस ग्रंथ की ५१ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

३. इस ग्रंथ की १० पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

महिमोदय मुनि ने 'ज्योतिष्-रत्नाकर' आदि ग्रन्थों की रचना भी की है जिनका परिचय आगे दिया गया है।

मानसागरीपद्धति :

'मानसागरी' नाम से अनुमान होता है कि इसके कर्ता मानसागर मुनि होंगे। इस नाम के अनेक मुनि हो चुके हैं इसलिये कौन-से मानसागर ने यह कृति बनाई इसका निर्णय नहीं किया जा सकता।

यह ग्रन्थ पद्यात्मक है। इसमें फलादेश-विषयक वर्णन है। प्रारंभ में आदिनाथ आदि तीर्थंकरों और नवग्रहों की स्तुति करके जन्मपत्री बनाने की विधि बताई है। आगे संवत्सर के ६० नाम, संवत्सर, युग, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार और जन्मलग्न-राशि आदि के फल, करण, दशा, अंतरदशा तथा उपदशा के वर्षमान, ग्रहों के भाव, योग, अपयोग आदि विषयों की चर्चा है। प्रसंगवश गणनाओं की भिन्न-भिन्न रीतियां बताई हैं। नवग्रह, गजचक्र, यमदंष्ट्राचक्र आदि चक्र और दशाओं के कोष्ठक दिये हैं।[1]

फलाफलविषयक-प्रश्नपत्र :

'फलाफलविषयक-प्रश्नपत्र' नामक छोटी-सी कृति उपाध्याय यशोविजय गणि की रचना हो ऐसा प्रतीत होता है। वि० सं० १७३० में इसकी रचना हुई है। इसमें चार चक्र हैं और प्रत्येक चक्र में सात कोष्ठक हैं। बीच के चारों कोष्ठकों में "ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हँ नमः" लिखा हुआ है। आसपास के छः-छः कोष्ठकों को गिनने से कुल २४ कोष्ठक होते हैं। इनमें ऋषभदेव से लेकर महावीरस्वामी तक के २४ तीर्थंकरों के नाम अंकित हैं। आसपास के २४ कोष्ठकों में २४ बातों को लेकर प्रश्न किये गए हैं :

१. कार्य की सिद्धि, २. मेघवृष्टि, ३. देश का सौख्य, ४. स्थानसुख, ५. ग्रामांतर, ६. व्यवहार, ७. व्यापार, ८. व्याजदान, ९. भय, १०. चतुष्पाद, ११. सेवा, १२. सेवक, १३. धारणा, १४. बाधारुधा, १५. पुररोध, १६. कन्यादान, १७. वर, १८. जयाजय, १९. मन्त्रौषधि, २०. राज्यप्राप्ति, २१. अर्थचिन्तन, २२. संतान, २३. आगंतुक और २४. गतवस्तु।

उपर्युक्त २४ तीर्थंकरों में से किसी एक पर फलाफलविषयक छः-छः उत्तर हैं। जैसे ऋषभदेव के नाम पर निम्नोक्त उत्तर हैं :

---

१. यह ग्रंथ वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से वि० सं० १९९१ में प्रकाशित हुआ है।

शीघ्रं सफला कार्यसिद्धिर्भविष्यति, अस्मिन् व्यवहारे मध्यमं फलं दृश्यते, ग्रामान्तरे फलं नास्ति, कष्टमस्ति, अर्घ्यं स्थानसौख्यं भविष्यति, अल्पा मेघवृष्टिः संभाव्यते।

उपर्युक्त २४ प्रश्नों के १४४ उत्तर संस्कृत में हैं तथा प्रश्न कैसे निकालना, उसका फलाफल कैसे जानना—ये बातें उस समय की गुजराती भाषा में दी गई हैं।

अंत में 'पं० श्रीनयविजयगणिशिष्यगणिजसविजयलिखितम्' ऐसा लिखा है।[1]

उदयदीपिका :

उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० सं० १७५२ में 'उदयदीपिका' नामक ग्रंथ की रचना मदनसिंह श्रावक के लिये की थी। इसमें ज्योतिष-संबंधी प्रश्नों और उनके उत्तरों का वर्णन है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

प्रश्नसुन्दरी :

उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० सं० १७५५ में 'प्रश्नसुन्दरी' नामक ग्रंथ की रचना की है। इसमें प्रश्न निकालने की पद्धति का वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

वर्षप्रबोध :

उपाध्याय मेघविजयजी ने 'वर्षप्रबोध' अपर नाम 'मेघमहोदय' नामक ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ संस्कृत भाषा में है। कई अवतरण प्राकृत ग्रंथों के भी हैं। इस ग्रंथ का संबंध 'स्थानांग' के साथ बताया गया है। समस्त ग्रन्थ तेरह अधिकारों में विभक्त है जिनमें निम्नांकित विषयों की चर्चा की गई है :

१. उत्पात, २. कर्पूरचक्र, ३. पद्मिनीचक्र, ४. मण्डलप्रकरण, ५. सूर्य-चन्द्र-ग्रहण के फल तथा प्रतिमास के वायु का विचार, ६. वर्षा बरसाने और बन्द करने के मन्त्र-यन्त्र, ७. साठ संवत्सरों का फल, ८. राशियों पर ग्रहों के उदय और अस्त के वक्री का फल, ९. अयन-मास-पक्ष और दिन का विचार, १०. संक्रांति-फल, ११. वर्ष के राजा और मन्त्री आदि, १२. वर्षा का गर्भ, १३. विश्वा-आयव्यय-सर्वतोभद्रचक्र और वर्षा बतानेवाले शकुन।

---

१. यह कृति 'जैन संशोधक' त्रैमासिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है।

ग्रन्थ में रचना-समय का उल्लेख नहीं है परन्तु आचार्य विजयरत्नसूरि के शासनकाल में इसकी रचना होने से वि० सं० १७३२ के पूर्व तो यह नहीं लिखा गया होगा। इसमें अनेक ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के उल्लेख तथा अवतरण दिये गये हैं। कहीं-कहीं गुजराती पद्य भी हैं।[1]

हस्तसंजीवन्त्र :

मुनि मेघरत्न ने 'उस्तरलावयंत्र' की रचना वि० सं० १५५० के आस-पास में की है। ये बडगच्छीय विनयसुन्दर मुनि के शिष्य थे।

यह कृति ३८ श्लोकों में है। अक्षांश और रेखांश का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इस यंत्र का उपयोग होता है तथा नतांश और उन्नतांश का वेध करने में इसकी सहायता ली जाती है। इससे काल का परिज्ञान भी होता है। यह कृति खगोलशास्त्रियों के लिये उपयोगी विशिष्ट यन्त्र पर प्रकाश डालती है।[2]

उस्तरलावयन्त्र-टीका :

इस लघु कृति पर संस्कृत में टीका है। शायद मुनि मेघरत्न ने ही स्वोपज्ञ टीका लिखी हो।

दोषरत्नावली :

जयरत्नगणि ने ज्योतिषविषयक प्रश्नलग्न पर 'दोषरत्नावली' नामक ग्रन्थ की रचना की है। जयरत्नगणि पूर्णिमापक्ष के आचार्य भावरत्न के शिष्य थे।

---

१. यह ग्रन्थ पं० भगवानदास जैन, जयपुर, द्वारा 'मेघमहोदय-वर्षप्रबोध' नाम से हिन्दी अनुवादसहित सन् १९२६ में प्रकाशित किया गया था। श्री पोपटलाल साकरचन्द, भावनगर, ने यह ग्रन्थ गुजराती अनुवादसहित छपवाया है। उन्हीं ने इसकी दूसरी आवृत्ति भी छपवाई है।

२. इसका परिचय Encyclopaedia Britanica, Vol. II, pp. 574-575 में दिया है। इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में है, जो वि० सं० १६०० में लिखी गई है। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है परंतु इसका परिचय श्री अगरचन्दजी नाहटा ने 'उस्तरलाव-यन्त्रसम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण जैन ग्रन्थ' शीर्षक से 'जैन सत्य-प्रकाश' में छपवाया है।

उन्होंने त्र्यंबावती (खम्भात) में इस ग्रन्थ की रचना की थी।[1] 'ज्वरपराजय' नामक वैद्यक-ग्रन्थ की रचना इन्होंने वि० सं० १६६२ में की है। उसी के आसपास में इस कृति की भी रचना की होगी। यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

जातकदीपिकापद्धति :

कर्ता ने इस ग्रन्थ[2] की रचना कई प्राचीन ग्रन्थकारों की कृतियों के आधार पर की है।[3] इसमें वारस्पष्टीकरण, ध्रुवादिनयन, भौमादीशबीजध्रुवकरण, लग्नस्पष्टीकरण, होराकरण, नवमांश, दशमांश, अन्तर्दशा, फलदशा आदि विषय पद्य में हैं। कुल ९४ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ के कर्ता का नाम और रचना-समय अज्ञात है।

जन्मप्रदीपशास्त्र :

'जन्मप्रदीपशास्त्र' के कर्ता कौन हैं और ग्रन्थ कब रचा गया यह अज्ञात है। इसमें कुण्डली के १२ भुवनों के लग्नेश के बारे में चर्चा की गई है। ग्रन्थ पद्य में है।[4]

केवलज्ञानहोरा :

दिगम्बर जैनाचार्य चन्द्रसेन ने ३-४ हजार श्लोक-प्रमाण 'केवलज्ञानहोरा' नामक ग्रन्थ की रचना की है। आचार्य ने ग्रन्थ के आरम्भ में कहा है :

---

१. श्रीमद्गुर्जरदेशभूषणमणिस्त्र्यंबावतीनामके,
श्रीपूर्णे नगरे बभूव सुगुरुः श्रीभावरत्नाभिधः।
तच्छिष्यो जयरत्न इत्यभिधया यः पूर्णिमागच्छवाँ-
स्तेनेयं क्रियते जनोपकृतये श्रीज्ञानरत्नावली ॥
इति प्रश्नलग्नोपरि दोषरत्नावली सम्पूर्णा—पिटर्सन : अलवर महाराजा लायब्रेरी केटलॉग।

२. अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में वि० सं० १८४७ में लिखी गई इसकी १२ पत्रों की प्रति है।

३. पुराविदैर्यदुक्तानि पद्यान्यादाय शोभनम्।
संमील्य सोमयोग्यानि लेखयि(खि)ष्यामि शिशोः मुदे ॥

४. इसकी ५ पत्रों की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में है।

होरा नाम महाविद्या वक्तव्यं च भवद्धितम्।
ज्योतिर्ज्ञानकरं सारं भूषणं बुधपोषणम्॥

'होरा' के कई अर्थ होते हैं :

१. होरा याने ढाई घटी अर्थात् एक घण्टा।

२. एक राशि या लग्न का अर्धभाग।

३. जन्मकुण्डली।

४. जन्मकुण्डली के अनुसार भविष्य कहने की विद्या अर्थात् जन्मकुण्डली का फल बतानेवाला शास्त्र। यह शास्त्र लग्न के आधार पर शुभ-अशुभ फलों का निर्देश करता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में हेमप्रकरण, दाम्यप्रकरण, शिलाप्रकरण, मृत्तिकाप्रकरण, वृक्षप्रकरण, कर्पास-गुल्म-वल्कल-तृण-रोम-चर्म-पटप्रकरण, संख्याप्रकरण, नष्टद्रव्य-प्रकरण, निर्वाहप्रकरण, अपत्यप्रकरण, लाभालाभप्रकरण, स्वरप्रकरण, स्वप्नप्रकरण, वास्तुविद्याप्रकरण, भोजनप्रकरण, देहलोहदीक्षाप्रकरण, अंजनविद्याप्रकरण, विष-विद्याप्रकरण आदि अनेक प्रकरण हैं। ये प्रकरण कल्याणवर्मा की 'सारावली' से मिलते-जुलते हैं। दक्षिण में रचना होने से कर्णाटक प्रदेश के ज्योतिष का इसपर काफी प्रभाव है। बीच-बीच में विषय स्पष्ट करने के लिये कन्नड़ भाषा का भी उपयोग किया गया है। चन्द्रसेन मुनि ने अपना परिचय देते हुए इस प्रकार कहा है :

आगमः सदृशो जैनः चन्द्रसेनसमो मुनिः।
केवली सदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे॥

यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

यन्त्रराज :

आचार्य मदनसूरि के शिष्य महेन्द्रसूरि ने ग्रहगणित के लिये उपयोगी 'यन्त्रराज' नामक ग्रंथ की रचना शक सं० १२९२ (वि० सं० १४२७) में की है। ये बादशाह फिरोजशाह तुगलक के प्रधान सभापंडित थे।

इस ग्रन्थ की उपयोगिता बताते हुए स्वयं ग्रन्थकार ने कहा है :

यथा भटः प्रौढरणोत्कटोऽपि शस्त्रैर्विमुक्तः परिभूतिमेति।
तद्वन्महाज्योतिषनिस्तुषोऽपि यन्त्रेण हीनो गणकस्तथैव॥

यह ग्रन्थ पाँच अध्यायों में विभक्त है : १. गणिताध्याय, २. यन्त्रघटनाध्याय, ३. यन्त्ररचनाध्याय, ४. यन्त्रशोधनाध्याय और ५. यन्त्रविचारणाध्याय। इसमें कुल मिलाकर १८२ पद्य हैं।

इस ग्रन्थ की अनेक विशेषताएँ हैं। इसमें नाडीवृत्त के धरातल में गोल-पृष्ठस्थ सभी वृत्तों का परिणमन बताया गया है। क्रमोत्क्रमज्यानयन, भुजकोटिज्या का चापसाधन, क्रान्तिसाधन, द्युज्याखंडसाधन, द्युज्याफलानयन, सौम्य यन्त्र के विभिन्न गणित के साधन, अक्षांश से उन्नतांश साधन, ग्रन्थ के नक्षत्र, ध्रुव आदि से अभीष्ट वर्षों के ध्रुवादि साधन, नक्षत्रों का दृक्कर्मसाधन, द्वादश राशियों के विभिन्न वृत्तसम्बन्धी गणित के साधन, इष्ट शंकु से छायाकरणसाधन, यन्त्र-शोधनप्रकार और तदनुसार विभिन्न राशियों और नक्षत्रों के गणित के साधन, द्वादशभावों और नवग्रहों के गणित के स्पष्टीकरण का गणित और विभिन्न यन्त्रों द्वारा सभी ग्रहों के साधन का गणित अतीव सुन्दर रीति से प्रतिपादित किया गया है। इस ग्रन्थ के ज्ञान से बहुत सरलता से पंचांग बनाया जा सकता है।

यन्त्रराज-टीका :

'यन्त्रराज'[1] पर आचार्य महेन्द्रसूरि के शिष्य आचार्य मलयेन्दुसूरि ने टीका लिखी है। इन्होंने मूल ग्रन्थ में निर्दिष्ट यन्त्रों को उदाहरणपूर्वक समझाया है। इसमें ७५ नगरों के अक्षांश दिये गये हैं। वेधोपयोगी ३२ तारों के सायन भोग-शर भी दिये गये हैं। अयनवर्षगति ५४ विकला मानी गई है।

ज्योतिष्रत्नाकर :

मुनि लब्धिविजय के शिष्य महिमोदय मुनि ने 'ज्योतिष्रत्नाकर' नामक कृति की रचना की है। मुनि महिमोदय वि० सं० १७२२ में विद्यमान थे। वे गणित और फलित दोनों प्रकार की ज्योतिर्विद्या के मर्मज्ञ विद्वान् थे।

यह ग्रंथ फलित ज्योतिष का है। इसमें संहिता, मुहूर्त और जातक—इन तीन विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ छोटा होते हुए भी अत्यन्त उपयोगी है। यह प्रकाशित नहीं हुआ है।

---

१. यह ग्रंथ राजस्थान प्राच्यविद्या शोध-संस्थान, जोधपुर से टीका के साथ प्रकाशित हुआ है। सुधाकर द्विवेदी ने यह ग्रंथ काशी से छपवाया है। यह बंबई से भी छपा है।

पञ्चाङ्गानयनविधि :

उपर्युक्त महिमोदय मुनि ने 'पञ्चाङ्गानयनविधि' नामक ग्रंथ की रचना वि० सं० १७२२ के आस-पास की है। ग्रन्थ के नाम से ही विषय स्पष्ट है। इसमें अनेक सारणियाँ दी हैं जिससे पञ्चांग के गणित में अच्छी सहायता मिलती है। यह ग्रन्थ भी प्रकाशित नहीं हुआ है।

तिथिसारणी :

पार्श्वचन्द्रगच्छीय वाघजी मुनि ने 'तिथिसारणी' नामक महत्त्वपूर्ण ज्योतिष-ग्रंथ की वि० सं० १७८३ में रचना की है। इसमें पञ्चांग बनाने की प्रक्रिया बताई गई है। यह ग्रन्थ 'मकरन्दसारणी' जैसा है। लींबडी के जैन ग्रन्थ-भंडार में इसकी प्रति है।

यशोराजीपद्धति :

मुनि यशस्वत्सागर, जिनको जसवंतसागर भी कहते थे, व्याकरण, दर्शन और ज्योतिष के धुरंधर विद्वान् थे। उन्होंने वि० सं० १७६२ में जन्मकुंडली-विषयक 'यशोराजीपद्धति' नामक व्यवहारोपयोगी ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध में जन्मकुण्डली की रचना के नियमों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है तथा उत्तरार्ध में जातकपद्धति के अनुसार संक्षिप्त फल बताया गया है। ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

त्रैलोक्यप्रकाश :

आचार्य देवेन्द्रसूरि के शिष्य हेमप्रभसूरि ने 'त्रैलोक्यप्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना वि० सं० १३०५ में की है। ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ का नाम 'त्रैलोक्य-प्रकाश' क्यों रखा इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है :

त्रीन् कालान् त्रिषु लोकेषु यस्माद् बुद्धिः प्रकाशते ।
तत् त्रैलोक्यप्रकाशाख्यं ध्यात्वा शास्त्रं प्रकाश्यते ॥

यह ताजिक-विषयक चमत्कारी ग्रन्थ १२५० श्लोकात्मक है। कर्ता ने लग्नशास्त्र का महत्त्व बताते हुए ग्रंथ के प्रारंभ में ही कहा है :

म्लेच्छेषु विस्तृतं लग्नं कलिकालप्रभावतः ।
प्रभुप्रसादमासाद्य जैने धर्मेऽवतिष्ठते ॥

इस ग्रन्थ में ज्योतिष-योगों के शुभाशुभ फलों के विषय में विचार किया गया है और मानवजीवनसम्बन्धी अनेक विषयों का फलादेश बताया गया है।

इसमें मुथशिल, मचकूल, शूलांव-उत्तरलाव आदि संज्ञाओं के प्रयोग मिलते हैं, जो मुस्लिम प्रभाव की सूचना देते हैं। इसमें निम्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है :

स्थानबल, कायबल, दृष्टिबल, दिक्फल, ग्रहावस्था, ग्रहमैत्री, राशिवैचित्र्य, षड्वर्गशुद्धि, लग्नज्ञान, अंशकफल, प्रकारान्तर से जन्मदशाफल, राजयोग, ग्रहस्वरूप, द्वादश भावों की तत्त्वचिंता, केन्द्रविचार, वर्षफल, निधानप्रकरण, सेवधिप्रकरण, भोजनप्रकरण, ग्रामप्रकरण, पुत्रप्रकरण, रोगप्रकरण, जायाप्रकरण, सुरतप्रकरण, परचंक्रामण, गमनागमन, गज अश्व खड्ग आदि चक्रयुद्धप्रकरण, संधिविग्रह, पुष्पनिर्णय, स्थानदोष, जीवितमृत्युफल, प्रवहणप्रकरण, वृष्टिप्रकरण, अर्घकांड, स्त्रीलाभप्रकरण आदि।[1]

ग्रन्थ के एक पद्य में कर्ता ने अपना नाम इस प्रकार गुम्फित किया है :

श्रीहेलाशालिनां योग्यमप्रभीकृतभास्करम्।
भसूक्ष्मेक्षिकया चक्रेऽरिभिः शास्त्रमदूषितम्॥

इस श्लोक के प्रत्येक चरण के आदि के दो वर्णों में 'श्रीहेमप्रभसूरिभिः' नाम अन्तर्निहित है।

जोइसहीर (ज्योतिषहीर) :

'जोइसहीर' नामक प्राकृत भाषा के ग्रंथ-कर्ता का नाम ज्ञात नहीं हुआ है। इसमें २८७ गाथाएँ हैं। ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि 'प्रथमप्रकीर्णं समाप्तम्'। इससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ अधूरा है। इसमें शुभाशुभ तिथि, ग्रह की सबलता, शुभ घड़ियाँ, दिनशुद्धि, स्वरज्ञान, दिशाशूल, शुभाशुभ योग, व्रत आदि ग्रहण करने का मुहूर्त, क्षौर कर्म का मुहूर्त और ग्रह-फल आदि का वर्णन है।[2]

ज्योतिस्सार (जोइसहीर) :

'ज्योतिस्सार' (जोइसहीर) नामक ग्रन्थ की रचना खरतरगच्छीय उपाध्याय देवतिलक के शिष्य मुनि हीरकलश ने वि० सं० १६२१ में प्राकृत में की है।

---

१. यह ग्रन्थ कुशल एस्ट्रोलॉजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, लाहौर से हिन्दी-अनुवादसहित प्रकाशित हुआ है। पं० भगवानदास जैन ने 'जैन सत्य-प्रकाश' वर्ष १२, अंक १२ में अनुवाद में बहुत भूलें होने के सम्बन्ध में 'त्रैलोक्यप्रकाश का हिन्दी अनुवाद' शीर्षक लेख लिखा है।

२. यह ग्रन्थ पं० भगवानदास जैन द्वारा हिन्दी में अनूदित होकर नरसिंह प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

लालचन्द्रीपद्धति :

मुनि कल्याणनिधान के शिष्य लब्धिचन्द्र ने 'लालचन्द्रीपद्धति' नामक ग्रंथ वि० सं० १७५१ में रचा है।

इस ग्रन्थ में जातक के अनेक विषय हैं। कई सारणियाँ दी हैं। अनेक ग्रन्थों के उद्धरणों और प्रमाणों से यह ग्रंथ परिपूर्ण है।[1]

टिप्पनकविधि :

मतिविशाल गणि ने 'टिप्पनकविधि' नामक ग्रंथ[2] प्राकृत में लिखा है। इसका रचना-समय ज्ञात नहीं है।

इस ग्रंथ में पञ्चांगतिथिकर्पण, संक्रांतिकर्पण, नवग्रहकर्पण, वक्रातीचार, सरव्गतिकर्पण, पञ्चग्रहास्तमितोदितकथन, भद्राकर्पण, अधिकमासकर्पण, तिथि-नक्षत्र-योगवर्धन-घटनकर्पण, दिनमानकर्पण आदि १३ विषयों का विशद वर्णन है।

होरामकरन्द :

आचार्य गुणाकरसूरि ने 'होरामकरन्द' नामक ग्रंथ की रचना की है। रचना-समय ज्ञात नहीं है परन्तु १५ वीं शताब्दी होगा ऐसा अनुमान है। होरा अर्थात् राशि का द्वितीयांश।

इस ग्रन्थ में ३१ अध्याय हैं: १. राशिप्रभेद, २. ग्रहस्वरूपबलनिरूपण, ३. वियोनिजन्म, ४. निषेक, ५. जन्मविधि, ६. रिष्ट, ७. रिष्टभंग, ८. सर्वग्रहारिष्टभंग, ९. आयुर्दा, १०. दशम-अध्याय (?), ११. अन्तर्दशा, १२. अष्टकवर्ग, १३. कर्माजीव, १४. राजयोग, १५. नाभसयोग, १६. वोसिवेस्युभयचरी-योग, १७. चन्द्रयोग, १८. ग्रहप्रव्रज्यायोग, १९. देवनक्षत्रफल, २०. चन्द्रराशिफल, २१. सूर्यादिराशिफल, २२. रश्मिचिन्ता, २३. दृष्ट्यादिफल, २४. भावफल, २५. आश्रयाध्याय, २६. कारक, २७. अनिष्ट, २८. स्त्रीजातक, २९. निर्याण, ३०. द्रेष्काणस्वरूप, ३१. प्रश्नजातक।

---

१. इसकी १४८ पत्रों की १८ वीं शती में लिखी गई प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में है।

२. इसकी १ पत्र की वि० सं० १६९४ में लिखी गई प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर के संग्रह में है।

यह ग्रन्थ छपा नहीं है।[1]

हायनसुन्दर :

आचार्य पद्मसुन्दरसूरि ने 'हायनसुन्दर' नामक ज्योतिषविषयक ग्रन्थ[2] की रचना की है।

विवाहपटल :

'विवाहपटल' नाम के एक से अधिक ग्रन्थ हैं। अजैन कृतियों में शार्ङ्गधर ने शक सं० १४०० (वि० सं० १५३५) में और पीताम्बर ने शक सं० १४४४ (वि० सं० १५७९) में इनकी रचना की है। जैन कृतियों में 'विवाहपटल' के कर्ता अभयकुशल या उभयकुशल का उल्लेख मिलता है। इसकी जो हस्तलिखित प्रति मिली है उसमें १३० पद्य हैं, बीच-बीच में प्राकृत गाथाएँ उद्धृत की गई हैं। इसमें निम्नोक्त विषयों की चर्चा है :

> योनि-नाडीगणश्चैव स्वामिमित्रैस्तथैव च।
> जुञ्जा प्रीतिश्च वर्णश्च लीहा सप्तविधा स्मृता ॥

नक्षत्र, नाडीवेधयन्त्र, राशिस्वामी, ग्रहशुद्धि, विवाहनक्षत्र, चन्द्र-सूर्य-स्पष्टीकरण, एकार्गल, गोधूलिकाफल आदि विषयों का विवेचन है।

यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

करणराज :

रुद्रपल्लीगच्छीय जिनसुन्दरसूरि के शिष्य मुनिसुन्दर ने वि० सं० १६५५ में 'करणराज' नामक ग्रन्थ[3] की रचना की है।

यह ग्रन्थ दस अध्यायों, जिनको कर्ता ने 'व्यय' नाम से उल्लिखित किया है, में विभाजित है : १. ग्रहमध्यमसाधन, २. ग्रहस्पष्टीकरण, ३. प्रश्नसाधक, ४. चन्द्रग्रहण-साधन, ५. सूर्यसाधक, ६. त्रुटित होने से विषय ज्ञात नहीं होता, ७. उदयास्त, ८. ग्रहयुद्धनक्षत्रसमागम, ९. पाताव्यय, १०. निमिशक (?)। अन्त में प्रशस्ति है।

---

१. इसकी ४१ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर के संग्रह में है।

२. इसकी प्रति बीकानेरस्थित अनूप संस्कृत लायब्रेरी के संग्रह में है।

३. इसकी ७ पत्रों की अपूर्ण प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर में है।

दीक्षा-प्रतिष्ठाशुद्धि :

उपाध्याय समयसुन्दर ने 'दीक्षा-प्रतिष्ठाशुद्धि' नामक ज्योतिषविषयक ग्रन्थ[1] की वि० सं० १६८५ में रचना की है।

यह ग्रन्थ १२ अध्यायों में विभाजित है : १. ग्रहगोचरशुद्धि, २. वर्षशुद्धि, ३. अयनशुद्धि, ४. मासशुद्धि, ५. पक्षशुद्धि, ६. दिनशुद्धि, ७. वारशुद्धि, ८. नक्षत्रशुद्धि, ९. योगशुद्धि, १०. करणशुद्धि, ११. लग्नशुद्धि और १२. ग्रहशुद्धि।

कर्ता ने प्रशस्ति में कहा है कि वि० सं० १६८५ में लूणकरणसर में प्रशिष्य वाचक जयकीर्ति, जो ज्योतिष-शास्त्र में विचक्षण थे, की सहायता से इस ग्रन्थ की रचना की। प्रशस्ति इस प्रकार है :

> दीक्षा-प्रतिष्ठाया या शुद्धिः सा निगदिता हिताय नृणाम्।
> श्रीलूणकरणसरसि स्मरशर-वसु-षड्डुपति (१६८५) वर्षे ॥ १ ॥
> ज्योतिष्शास्त्रविचक्षणवाचकजयकीर्तिसहायैः।
> समयसुन्दरोपाध्यायसंदर्भितो ग्रन्थः ॥ २ ॥

विवाहरत्न :

खरतरगच्छीय आचार्य जिनोदयसूरि ने 'विवाहरत्न' नामक ग्रन्थ[2] की रचना की है।

इस ग्रन्थ में १५० श्लोक हैं, १३ पत्रों की प्रति जैसलमेर में वि० सं० १८३३ में लिखी गई है।

ज्योतिप्रकाश :

आचार्य ज्ञानभूषण ने 'ज्योतिप्रकाश' नामक ग्रन्थ[3] की रचना वि० सं० १७५५ के बाद कभी की है।

---

१. इसकी एकमात्र प्रति बीकानेर के खरतरगच्छ के आचार्यशाखा के उपाश्रय-स्थित ज्ञानभंडार में है।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति मोतीचन्द खजांची के संग्रह में है।

३. इसकी हस्तलिखित प्रति देहली के धर्मपुरा के मन्दिर में संगृहीत है।

यह ग्रन्थ सात प्रकरणों में विभक्त है : १. तिथिद्वार, २. वार, ३. तिथिघटिका, ४. नक्षत्रसाधन, ५. नक्षत्रघटिका, ६. इस प्रकरण का पत्रांक ४४ नष्ट होने से स्पष्ट नहीं है, ७. इस प्रकरण के अन्त में 'इति चतुर्दश, पंचदश, ...सप्तदश, रूपैश्चतुर्भिर्द्वारैः संपूर्णोऽयं ज्योतिप्रकाशः ।' ऐसा उल्लेख है।

सात प्रकरण पूर्ण होने के पश्चात् ग्रन्थ की समाप्ति का सूचन है परन्तु प्रशस्ति के कुछ पद्य अपूर्ण रह जाते हैं।

ग्रन्थ में 'चन्द्रप्रज्ञप्ति', 'ज्योतिष्करण्डक' की मलयगिरि-टीका आदि के उल्लेख के साथ एक जगह विनयविजय के 'लोकप्रकाश' का भी उल्लेख है। अतः इसकी रचना वि० सं० १७३० के बाद ही सिद्ध होती है।[1]

ज्ञानभूषण का उल्लेख प्रत्येक प्रकाश के अन्त में पाया जाता है और अकबर का भी उल्लेख कई बार हुआ है।

खेटचूला :

आचार्य ज्ञानभूषण ने 'खेटचूला' नामक ग्रंथ की रचना की, ऐसा उल्लेख उनके स्वरचित ग्रन्थ 'ज्योतिप्रकाश' में है।

षष्टिसंवत्सरफल :

दिगंबराचार्य दुर्गदेवरचित 'षष्टिसंवत्सरफल' नामक संस्कृत ग्रंथ की ६ पत्रों की प्रति[2] में संवत्सरों के फल का निर्देश है।

लघुजातक-टीका:

'पञ्चसिद्धान्तिका' ग्रन्थ की शक-सं० ४२७ (वि० सं० ५६२) में रचना करनेवाले वराहमिहिर ने 'लघुजातक' की रचना की है। यह होराशाखा के 'बृहज्जातक' का संक्षिप्त रूप है। ग्रन्थ में लिखा है :

> होराशास्त्रं वृत्तैर्मया निबद्धं निरीक्ष्य शास्त्राणि ।
> यत्तस्याप्यार्याभिः सारमहं संप्रवक्ष्यामि ॥

---

१. द्वितीय प्रकाश में वि० सं० १७२५, १७३०, १७३५, १७४०, १७४५, १७५०, १७५५ के भी उल्लेख हैं। इसके अनुसार वि० सं० १७५५ के बाद में इसकी रचना सम्भव है।

२. यह प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

इस पर खरतरगच्छीय मुनि भक्तिलाभ ने वि० सं० १५७१ में विक्रमपुर में टीका की रचना की है तथा मतिसागर मुनि ने वि० सं० १६०२ में भाषा में वचनिका और उपकेशगच्छीय खुशालसुन्दर मुनि ने वि० सं० १८३९ में स्तबक लिखा है। मुनि मतिसागर ने इस ग्रन्थ पर वि० सं० १६०५ में वार्तिक रचा है। लघुश्यामसुन्दर ने भी 'लघुजातक' पर टीका लिखी है।

जातकपद्धति-टीका :

श्रीपति ने 'जातकपद्धति' की रचना करीब वि० सं० ११०० में की है। इस पर अंचलगच्छीय हर्षरत्न के शिष्य मुनि सुमतिहर्ष ने वि० सं० १६७३ में पद्मावतीपत्तन में 'दीपिका' नामक टीका की रचना की है। आचार्य जिनेश्वरसूरि ने भी इस ग्रंथ पर टीका लिखी है।

सुमतिहर्ष ने 'बृहत्पर्वमाला' नामक ज्योतिष-ग्रन्थ की भी रचना की है। इन्होंने ताजिकसार, करणकुतूहल और होरामकरन्द नामक ग्रंथों पर भी टीकाएँ रची हैं।

ताजिकसार-टीका :

'ताजिक' शब्द की व्याख्या करते हुए किसी विद्वान् ने इस प्रकार बताया है : **यवनाचार्येण पारसीकभाषया ज्योतिष्शास्त्रैकदेशरूपं वार्षिकादिनानाविध-फलादेशफलकशास्त्रं ताजिकशब्दवाच्यम्।**

इसका अभिप्राय यह है कि जिस समय मनुष्य के जन्मकालीन सूर्य के समान सूर्य होता है अर्थात् जब उसकी आयु का कोई भी सौर वर्ष समाप्त होकर दूसरा सौर वर्ष लगता है उस समय के लग्न और ग्रह-स्थिति द्वारा मनुष्य को उस वर्ष में होनेवाले सुख-दुःख का निर्णय जिस पद्धति द्वारा किया जाता है उसे 'ताजिक' कहते हैं।

उपर्युक्त व्याख्या से यह भी भलीभांति मालूम हो जाता है कि यह ताजिक-शाखा मुसलमानों से आई है। शक-सं० १२०० के बाद इस देश में मुसलमानी राज्य होने पर हमारे यहाँ ताजिक-शाखा का प्रचलन हुआ। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि वर्ष-प्रवेशकालीन लग्न द्वारा फलादेश कहने की कल्पना और कुछ पारिभाषिक नाम यवनों से लिये गये। जन्मकुंडली और उसके फल के नियम ताजिक में प्रायः जातकसदृश हैं और वे हमारे ही हैं यानी इस भारत देश के ही हैं।

हरिभट्ट नामक विद्वान् ने 'ताजिकसार' नामक ग्रन्थ की रचना वि० सं० १५८० के आसपास में की है। हरिभट्ट को हरिभद्र नाम से भी पहिचाना जाता है। इस ग्रन्थ पर अंचलगच्छीय मुनि सुमतिहर्ष ने वि० सं० १६७७ में विष्णुदास राजा के राज्यकाल में टीका लिखी है।[१]

करणकुतूहल-टीका :

ज्योतिर्गणितज्ञ भास्कराचार्य ने 'करणकुतूहल' की रचना वि० सं० १२४० के आसपास में की है। उनका यह ग्रंथ करण-विषयक है। इसमें मध्यमग्रहसाधन अहर्गण द्वारा किया गया है। ग्रन्थ में निम्नोक्त दस अधिकार हैं : १. मध्यम, २. स्पष्ट, ३. त्रिप्रश्न, ४. चन्द्र-ग्रहण, ५. सूर्य-ग्रहण, ६. उदयास्त, ७. शृंगोन्नति, ८. ग्रहयुति, ९. पात और १०. ग्रहणसंभव। कुल मिलाकर १३९ पद्य हैं। इस पर सोढल, नार्मदात्मज पद्मनाभ, शङ्कर कवि आदि की टीकाएँ हैं।

इस 'करणकुतूहल' पर अंचलगच्छीय हर्षरत्न मुनि के शिष्य सुमतिहर्ष मुनि ने वि० सं० १६७८ में हेमाद्रि के राज्य में 'गणककुमुदकौमुदी' नामक टीका रची है। इसमें उन्होंने लिखा है :

करणकुतूहलवृत्तावेतस्यां सुमतिहर्षरचितायाम्।
गणककुमुदकौमुद्यां विवृता स्फुटता हि खेटानाम्॥

इस टीका का ग्रन्थाग्र १८५० श्लोक है।[२]

ज्योतिर्विदाभरण-टीका :

'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ज्योतिषशास्त्र का ग्रंथ 'रघुवंश' आदि काव्यों के कर्ता कवि कालिदास की रचना है, ऐसा ग्रन्थ में लिखा है परन्तु यह कथन ठीक नहीं है। इसमें ऐन्द्रयोग का तृतीय अंश व्यतीत होने पर सूर्य-चन्द्रमा का क्रांतिसाम्य बताया गया है, इससे इसका रचनाकाल शक-सं० ११६४ (वि० सं० १२९९) निश्चित होता है। अतः रघुवंशादि काव्यों के निर्माता कालिदास इस ग्रन्थ के कर्ता नहीं हो सकते। ये कोई दूसरे ही कालिदास होने चाहिये। एक विद्वान् ने तो यह 'ज्योतिर्विदाभरण' ग्रंथ १६ वीं शताब्दी का होने का निर्णय किया है। यह ग्रंथ मुहूर्तविषयक है।

---

१. यह टीका-ग्रंथ मूल के साथ वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित हुआ है।

२. लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद के संग्रह में इसकी २९ पत्रों की प्रति है।

इस पर पूर्णिमागच्छ के भावरत्न (भावप्रभसूरि) ने सन् १७१२ में सुबोधिनी-वृत्ति रची है। यह अभीतक अप्रकाशित है।

महादेवीसारणी टीका :

महादेव नामक विद्वान् ने 'महादेवीसारणी' नामक ग्रहसाधन-विषयक ग्रंथ की शक सं० १२३८ (वि० सं० १३७३) में रचना की है। कर्ता ने लिखा है :

चक्रेश्वरारब्धनभश्चराशुसिद्धिं महादेव ऋषींश्च नत्वा।

इससे अनुमान होता है कि चक्रेश्वर नामक ज्योतिषी के आरम्भ किये हुए इस अपूर्ण ग्रन्थ को महादेव ने पूर्ण किया। महादेव पद्मनाभ ब्राह्मण के पुत्र थे। वे गोदावरी तट के निकट राक्षिण गांव के निवासी थे परन्तु उनके पूर्वजों का मूल स्थान गुजरातस्थित सूरत के निकट का प्रदेश था।

इस ग्रंथ में लगभग ४३ पद्य हैं। उनमें केवल मध्यम और स्पष्ट ग्रहों का साधन है। क्षेपक मध्यम-मेषसंक्रांतिकालीन है और अहर्गण द्वारा मध्यम ग्रह-साधन करने के लिये सारणियां बनाई हैं।

इस ग्रंथ पर अंचलगच्छीय मुनि भोजराज के शिष्य मुनि धनराज ने दीपिका-टीका की रचना वि० सं० १६९२ में पद्मावतीपत्तन में की है।[1] टीका में सिरोही का देशान्तर साधन किया है। टीका का प्रमाण १५०० श्लोक है। 'जिनरत्नकोश' के अनुसार मुनि भुवनराज ने इस पर टिप्पण लिखा है। मुनि तत्त्वसुन्दर ने इस ग्रंथ पर विवृति रची है। किसी अज्ञात विद्वान् ने भी इस पर टीका लिखी है।

विवाहपटल-बालावबोध :

अज्ञातकर्तृक 'विवाहपटल' पर नागोरी-तपागच्छीय आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने 'बालावबोध' नाम से टीका रची है।

आचार्य सोमसुन्दरसूरि के शिष्य अमरमुनि ने 'विवाहपटल' पर 'बोध' नाम से टीका रची है।

मुनि विद्याहेम ने वि० सं० १८७३ में 'विवाहपटल' पर 'अर्थ' नाम से टीका रची है।

---

१. इस टीका की प्रति ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद के संग्रह में है।

ग्रहलाघव-टीका :

गणेश नामक विद्वान् ने 'ग्रहलाघव' की रचना की है। वे बहुत बड़े ज्योतिषी थे। उनके पिता का नाम था केशव और माता का नाम था लक्ष्मी। वे समुद्रतटवर्ती नांदगांव के निवासी थे। सोलहवीं शती के उत्तरार्ध में वे विद्यमान थे।

ग्रहलाघव की विशेषता यह है कि इसमें ज्याचाप का संबंध बिलकुल नहीं रखा गया है तथापि स्पष्ट सूर्य लाने में करणग्रंथों से भी यह बहुत सूक्ष्म है। यह ग्रंथ निम्नलिखित १४ अधिकारों में विभक्त है : १. मध्यमाधिकार, २. स्पष्टाधिकार, ३. पञ्चताराधिकार, ४. त्रिप्रश्न, ५. चन्द्रग्रहण, ६. सूर्यग्रहण, ७. मासग्रहण, ८. स्थूलग्रहसाधन, ९. उदयास्त, १०. छाया, ११. नक्षत्र-छाया, १२. शृंगोन्नति, १३. ग्रहयुति और १४. महापात। सब मिलाकर इसमें १८७ श्लोक हैं।

इस 'ग्रहलाघव' ग्रन्थ पर चारित्रसागर के शिष्य कल्याणसागर के शिष्य यशस्वत्सागर (जसवंतसागर) ने वि० सं० १७६० में टीका रची है।

इस 'ग्रहलाघव' पर राजसोम मुनि ने टिप्पण लिखा है।

मुनि यशस्वत्सागर ने जैनसप्तपदार्थी (सं० १७५७), प्रमाणवादार्थ (सं० १७५९), भावसप्ततिका (सं० १७४०), यशोराजपद्धति (सं० १७६२), वादार्थनिरूपण, स्याद्वादमुक्तावली, स्तवनरत्न आदि ग्रंथ रचे हैं।

चन्द्रार्की-टीका :

मोढ दिनकर ने 'चन्द्रार्की' नामक ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में ३३ श्लोक हैं, सूर्य और चन्द्रमा का स्पष्टीकरण है। ग्रंथ में आरंभ वर्ष शक सं० १५०० है।

इस 'चन्द्रार्की' ग्रन्थ पर तपागच्छीय मुनि कृपाविजयजी ने टीका रची है।

षट्पञ्चाशिका-टीका :

प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वराहमिहिर के पुत्र पृथुयश ने 'षट्पञ्चाशिका' की रचना की है। यह जातक का प्रामाणिक ग्रंथ गिना जाता है। इसमें ५६ श्लोक हैं। इस 'षट्पञ्चाशिका' पर भट्ट उत्पल की टीका है।

इस ग्रंथ पर खरतरगच्छीय लब्धिविजय के शिष्य महिमोदय मुनि ने एक टीका लिखी है। इन्होंने वि० सं० १७२२ में ज्योतिष्रत्नाकर, पञ्चांगानयन-विधि, गणितसाठसो आदि ग्रंथ भी रचे हैं।

भुवनदीपक-टीका :

पंडित हरिभट्ट ने लगभग वि० सं० १५७० में 'भुवनदीपक' ग्रंथ की रचना की है।

इस 'भुवनदीपक' पर खरतरगच्छीय मुनि लक्ष्मीविजय ने वि० सं० १७६७ में टीका रची है।

चमत्कारचिन्तामणि-टीका :

राजर्षि भट्ट ने 'चमत्कारचिन्तामणि' ग्रंथ की रचना की है। इसमें मुहूर्त और जातक दोनों अंगों के विषय में उपयोगी बातों का वर्णन किया गया है।

इस 'चमत्कारचिन्तामणि' ग्रंथ पर खरतरगच्छीय मुनि पुण्यहर्ष के शिष्य अभयकुशल ने लगभग वि० सं० १७३७ में बालावबोधिनी-वृत्ति की रचना की है।

मुनि मतिसागर ने वि० सं० १८२७ में इस ग्रंथ पर 'टबा' की रचना की है।

होरामकरन्द-टीका :

अज्ञातकर्तृक 'होरामकरन्द' नामक ग्रंथ पर मुनि सुमतिहर्ष ने करीब वि० सं० १६७८ में टीका रची है।

वसन्तराजशाकुन-टीका :

वसन्तराज नामक विद्वान् ने शकुनविषयक एक ग्रंथ की रचना की है। इसे 'शकुन-निर्णय' अथवा 'शकुनार्णव' कहते हैं।

इस ग्रंथ पर उपाध्याय भानुचन्द्रगणि ने १७ वीं शती में टीका लिखी है।[१]

---

१. यह वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित है।

दसवाँ प्रकरण

शकुन

शकुनरहस्य :

वि० सं० १२७० में 'विवेकविलास' की रचना करनेवाले वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि ने 'शकुनरहस्य' नामक शकुनशास्त्रविषयक ग्रंथ की रचना की है। आचार्य जिनदत्तसूरि 'कविशिक्षा' नामक ग्रंथ की रचना करनेवाले आचार्य अमरचन्द्रसूरि के गुरु थे।

'शकुनरहस्य' नौ प्रस्तावों में विभक्त पद्यात्मक कृति है। इसमें संतान के जन्म, लग्न और शयनसंबंधी शकुन, प्रभात में जाग्रत होने के समय के शकुन, दतून और स्नान करने के शकुन, परदेश जाने के समय के शकुन और नगर में प्रवेश करने के शकुन, वर्षा-संबंधी परीक्षा, वस्तु के मूल्य में वृद्धि और कमी, मकान बनाने के लिये जमीन की परीक्षा, जमीन खोदते हुए निकली हुई वस्तुओं का फल, स्त्री को गर्भ नहीं रहने का कारण, संतानों की अपमृत्युविषयक चर्चा, मोती, हीरा आदि रत्नों के प्रकार और तदनुसार उनके शुभाशुभ फल आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।[1]

शकुनशास्त्र :

'शकुनशास्त्र', जिसका दूसरा नाम 'शकुनसारोद्धार' है, की वि० सं० १३३८ में आचार्य माणिक्यसूरि ने रचना की है।[2] इस ग्रंथ में १. दिक्स्थान, २. ग्राम्यनिमित्त, ३. तित्तिरि, ४. दुर्गा, ५. लट्वागृहोलिकाक्षुत, ६. वृक, ७. रात्रेय

---

१. पं० हीरालाल हंसराज ने सानुवाद 'शकुनरहस्य' का 'शकुनशास्त्र' नाम से सन् १८९९ में जामनगर से प्रकाशन किया है।

२. सारं गरीयः शकुनार्णवेभ्यः पीयूषमेतद् रचयांचकार।
माणिक्यसूरिः स्वगुरुप्रसादाद् यत्पानतः स्याद् विबुधप्रमोदः॥ ४१ ॥
वसु-वह्नि-वह्नि-चन्द्रेऽब्दे श्वकयुजि पूर्णिमातिथौ रचितः।
शकुनानामुद्धारोऽभ्यासवशादस्तु चिद्रूपः ॥ ४२ ॥

८. हरिण, ९. भषण, १०. मिश्र और ११. संग्रह–इस प्रकार ११ विषयों का वर्णन है। कर्ता ने अनेक शाकुनविषयक ग्रंथों के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

शकुनरत्नावलि-कथाकोश :

आचार्य अभयदेवसूरि के शिष्य वर्धमानसूरि ने 'शकुनरत्नावलि' नामक ग्रंथ की रचना की है।

शकुनावलि :

'शकुनावलि' नाम के कई ग्रंथ हैं।

एक 'शकुनावलि' के कर्ता गौतम महर्षि थे, ऐसा उल्लेख मिलता है।

दूसरी 'शकुनावलि' के कर्ता आचार्य हेमचन्द्रसूरि माने जाते हैं।

तीसरी 'शकुनावलि' किसी अज्ञात विद्वान् ने रची है।

तीनों के कर्ताविषयक उल्लेख संदिग्ध हैं। ये प्रकाशित भी नहीं हैं।

सउणदार (शकुनद्वार) :

'सउणदार' नामक ग्रंथ[1] प्राकृत भाषा में है। यह अपूर्ण है। इसमें कर्ता का नाम नहीं दिया गया है।

शकुनविचार :

'शकुनविचार' नामक कृति[2] ३ पत्रों में है। इसकी भाषा अपभ्रंश है। इसमें किसी पशु के दाहिनी या बायीं ओर होकर गुजरने के शुभाशुभ फल के विषय में विचार किया गया है। यह अज्ञातकर्तृक रचना है।

---

१. यह पाटन के भंडार में है।

२. इसकी प्रति पाटन के जैन भंडार में है।

ग्यारहवां प्रकरण

निमित्त

जयपाहुड :

'जयपाहुड'[1] निमित्तशास्त्र का ग्रंथ है। इसके कर्ता का नाम अज्ञात है। इसे जिनभाषित कहा गया है। यह ईसा की १० वीं शताब्दी के पूर्व की रचना है। प्राकृत में रचा हुआ यह ग्रंथ अतीत, अनागत आदि से सम्बन्धित नष्ट, मुष्टि, चिंता, विकल्प आदि अतिशयों का बोध कराता है। इससे लाभ–अलाभ का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें ३७८ गाथाएँ हैं जिनमें संकट–विकटप्रकरण, उत्तराधरप्रकरण, अभिघात, जीवसमास, मनुष्यप्रकरण, पक्षिप्रकरण, चतुष्पद, धातुप्रकृति, धातुयोनि, मूलभेद, मुष्टिविभागप्रकरण-वर्ण, गंध-रस-स्पर्शप्रकरण, नष्टिकाचक्र, चिंताभेदप्रकरण, तथा लेखगंडिकाधिकार में संख्याप्रमाण, कालप्रकरण, लाभगंडिका, नक्षत्रगंडिका, स्ववर्गसंयोगकरण, परवर्गसंयोगकरण, सिंहावलोकितकरण, गजविलुलित, गुणाकारप्रकरण, अक्ष-विभागप्रकरण आदि से सम्बन्धित विवेचन है।

निमित्तशास्त्र :

इस 'निमित्तशास्त्र' नामक ग्रन्थ[2] के कर्ता है ऋषिपुत्र। ये गर्ग नामक आचार्य के पुत्र थे। गर्ग स्वयं ज्योतिष के प्रकांड पंडित थे। पिता ने पुत्र को ज्योतिष का ज्ञान विरासत में दिया। इसके सिवाय ग्रंथकर्ता के संबंध में और कुछ पता नहीं लगता। ये कब हुए, यह भी ज्ञात नहीं है।

इस ग्रन्थ में १८७ गाथाएँ हैं जिनमें निमित्त के भेद, आकाश-प्रकरण, चंद्र-प्रकरण, उत्पात-प्रकरण, वर्षा-उत्पात, देव-उत्पातयोग, राज-उत्पातयोग,

---

१. यह ग्रन्थ चूडामणिसार-सटीक के साथ सिंघी जैन ग्रंथमाला, बंबई से प्रकाशित हुआ है।

२. यह पं० लालाराम शास्त्री द्वारा हिंदी में अनूदित होकर वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, सोलापुर से सन् १९४१ में प्रकाशित हुआ है।

इन्द्रधनुष द्वारा शुभ-अशुभ का ज्ञान, गन्धर्वनगर का फल, विद्युल्लतायोग और मेघयोग का वर्णन है।

'बृहत्संहिता' की भट्टोत्पली टीका में इस आचार्य का अवतरण दिया है।

निमित्तपाहुड :

'निमित्तपाहुड' शास्त्र द्वारा केवली, ज्योतिष और स्वप्न आदि निमित्तों का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। आचार्य भद्रेश्वर ने अपनी 'कहावली' में और शीलांकसूरि ने अपनी 'सूत्रकृताङ्ग-टीका' में 'निमित्तपाहुड' का उल्लेख किया है।[1]

जोणिपाहुड :

'जोणिपाहुड' (योनिप्राभृत) निमित्तशास्त्र का अति महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। दिगंबर आचार्य धरसेन ने इसकी प्राकृत में रचना की है। वे प्रज्ञाश्रमण नाम से भी विख्यात थे। वि० सं० १५५६ में लिखी गई 'बृहट्टिप्पणिका' नामक ग्रंथ-सूची के अनुसार वीर-निर्वाण के ६०० वर्ष पश्चात् धरसेनाचार्य ने इस ग्रंथ की रचना की थी।[2]

कूष्मांडी देवी द्वारा उपदिष्ट इस पद्यात्मक कृति की रचना आचार्य धरसेन ने अपने शिष्य पुष्पदंत और भूतबलि के लिये की। इसके विधान से ज्वर, भूत, शाकिनी आदि दूर किये जा सकते हैं। यह समस्त निमित्तशास्त्र का उद्गमरूप है। समस्त विद्याओं और धातुवाद के विधान का मूलभूत कारण है। आयुर्वेद का साररूप है। इस कृति को जाननेवाला कलिकालसर्वज्ञ और चतुर्वर्ग का अधिष्ठाता बन सकता है। बुद्धिशाली लोग इसे सुनते हैं तब मंत्र-तंत्रवादी मिथ्यादृष्टियों का तेज निष्प्रभ हो जाता है। इस प्रकार इस कृति का प्रभाव वर्णित है। इसमें एक जगह कहा गया है कि प्रज्ञाश्रमण मुनि ने 'बालतंत्र' संक्षेप में कहा है।

---

१. देखिए—प्रो० हीरालाल र० कापडिया : पाइय भाषाओ अने साहित्य, पृ० १६७-१६८.

२. योनिप्राभृतं वीरात् ६०० धारसेनम्।
—बृहट्टिप्पणिका, जैन साहित्य संशोधक १, २ : परिशिष्ट; 'षट्खंडागम' की प्रस्तावना, भा० १, पृ० ३०.

'धवला-टीका' में उल्लेख है कि 'योनिप्राभृत' में मंत्र-तंत्र की शक्ति का वर्णन है और उसके द्वारा पुद्गलानुभाग जाना जा सकता है। आगमिक व्याख्याओं के उल्लेखानुसार आचार्य सिद्धसेन ने 'जोणिपाहुड' के आधार से अश्व बनाये थे। इसके बल से महिषों को अचेतन किया जा सकता था और धन पैदा किया जा सकता था। 'विशेषावश्यक-भाष्य' (गाथा १७७५) की मलधारी हेमचन्द्र-सूरिकृत टीका में अनेक विजातीय द्रव्यों के संयोग से सर्प, सिंह आदि प्राणी और मणि, सुवर्ण आदि अचेतन पदार्थ पैदा करने का उल्लेख मिलता है। कुवलयमालाकार के कथनानुसार 'जोणिपाहुड' में कही गई बात कभी असत्य नहीं होती। जिनेश्वरसूरि ने अपने 'कथाकोशप्रकरण' के सुन्दरीदत्तकथानक में इस शास्त्र का उल्लेख किया है।[1] 'प्रभावकचरित' (५, ११५-१२७) में इस ग्रन्थ के बल से मछली और सिंह बनाने का निर्देश है। कुलमण्डनसूरि द्वारा वि० सं० १४७३ में रचित 'विचारामृतसंग्रह' (पृ० ९) में 'योनिप्राभृत' को पूर्वश्रुत से चला आता हुआ स्वीकार किया गया है।[2] 'योनिप्राभृत' में इस प्रकार उल्लेख है :

> अग्गेणिपुव्वनिग्गयपाहुडसत्थस्स मज्झयारम्मि।
> किंचि उद्देसदेसं धरसेणो वज्जियं भणइ॥
> गिरिउज्जिंतठिएण पच्छिमदेसे सुरट्ठगिरिनयरे।
> बुड्ढंतं उद्धरियं दूसमकालप्पयावम्मि॥
>
> —प्रथम खण्ड

> अट्ठावीससहस्सा गाहाणं जत्थ वन्निया सत्थे।
> अग्गेणिपुव्वमज्झे संखेवं वित्थरे मुत्तुं॥
>
> —चतुर्थ खण्ड

इस कथन से ज्ञात होता है कि अग्रायणीय पूर्व का कुछ अंश लेकर धरसेनाचार्य ने इस ग्रंथ का उद्धार किया। इसमें पहले अठाईस हजार गाथाएँ थीं, उन्हींको संक्षिप्त करके 'योनिप्राभृत' में रखा है।[3]

---

१. जिणभासियपुव्वगए जोणीपाहुडसुए समुद्दिट्ठं।
   एयंपि संवच्छे कायव्वं धीरपुरिसेहिं॥
२. देखिये—हीरालाल र० कापडिया : आगमोनुं दिग्दर्शन, पृ० २३३-२३५.
३. इस अप्रकाशित ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति भांडारकर इंस्टीट्यूट, पूना में मौजूद है।

सिद्धादेश :

'सिद्धादेश' नामक कृति संस्कृत भाषा में ६ पत्रों में है। इसकी प्रति पाटन के भंडार में है। इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। इसमें वृष्टि, वायु और बिजली के शुभाशुभ विषयों का विचार किया गया है।

उवस्सुइदार (उपश्रुतिद्वार) :

'उवस्सुइदार' नामक ३ पत्रों की प्राकृत भाषा की कृति पाटन के जैन ग्रंथ-भंडार में है। कर्ता का नाम निर्दिष्ट नहीं है। इसमें सुने गये शब्दों के आधार पर शुभाशुभ फलों का निर्णय किया गया है।

छायादार (छायाद्वार) :

किसी अज्ञातनामा विद्वान् द्वारा प्राकृत भाषा में रची हुई 'छायादार' नामक २ पत्रों की १२३ गाथात्मक कृति अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। प्रति पाटन के जैन भंडार में है। इसमें छाया के आधार पर शुभ-अशुभ फलों का विचार किया गया है।

नाडीदार (नाडीद्वार) :

किसी अज्ञातनामा विद्वान् द्वारा रची हुई 'नाडीदार' नामक प्राकृत भाषा की ४ पत्रों की कृति पाटन के जैन भंडार में विद्यमान है। इसमें इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाम की नाडियों के बारे में विचार किया गया है।

निमित्तदार (निमित्तद्वार) :

'निमित्तदार' नामक प्राकृत भाषा की ४ पत्रों की कृति किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने रची है। प्रति पाटन के ग्रंथ-भंडार में है। इसमें निमित्तविषयक विवरण है।

रिट्ठदार (रिष्टद्वार) :

'रिट्ठदार' नामक प्राकृत भाषा की ७ पत्रों की कृति किसी अज्ञात विद्वान् द्वारा रची गई है। प्रति पाटन के भंडार में है। इसमें भविष्य में होनेवाली घटनाओं का—जीवन-मरण के फलादेश का निर्देश किया गया है।

पिपीलियानाण (पिपीलिकाज्ञान) :

किसी जैनाचार्य द्वारा रची हुई 'पिपीलियानाण' नाम की प्राकृतभाषा की ४ पत्रों की कृति पाटन के जैन भंडार में है। इसमें किस रंग की चीटियां किस

स्थान की ओर जाती हैं, यह देखकर भविष्य में होनेवाली शुभाशुभ घटनाओं का वर्णन किया गया है।

प्रणष्टलाभादि :

'प्रणष्टलाभादि' नामक प्राकृत भाषा में रची हुई ५ पत्रों की प्रति पाटन के जैन ग्रंथ-भंडार में है। मंगलाचरण में 'सिद्धे, जिणे' आदि शब्दों का प्रयोग होने से इस कृति के जैनाचार्यरचित होने का निर्णय होता है। इसमें गतवस्तु-लाभ, बंध-मुक्ति और रोगविषयक चर्चा है। जीवन और मरणसंबंधी विचार भी किया गया है।

नाडीवियार (नाडीविचार) :

किसी अज्ञात विद्वान् द्वारा प्राकृत भाषा में रची हुई 'नाडीविचार' नामक कृति पाटन के जैन भंडार में है। इसमें किस कार्य में दायीं या बायीं नाडी शुभ किंवा अशुभ है, इसका विचार किया गया है।

मेघमाला :

अज्ञात ग्रंथकार द्वारा प्राकृत भाषा में रची हुई ३२ गाथाओं की 'मेघ-माला' नाम की कृति पाटन के जैन ग्रंथ-भंडार में है। इसमें नक्षत्रों के आधार पर वर्षा के चिह्नों और उनके आधार पर शुभ-अशुभ फलों की चर्चा है।

छींकविचार :

'छींकविचार' नामक कृति प्राकृत भाषा में है। लेखक का नाम निर्दिष्ट नहीं है। इसमें छींक के शुभ-अशुभ फलों के बारे में वर्णन है। इसकी प्रति पाटन के भंडार में है।

प्रियंकरनृपकथा (पृ० ६–७) में किसी प्राकृत ग्रंथ का अवतरण देते हुए प्रत्येक दिशा और विदिशा में छींक का फल बताया गया है।

सिद्धपाहुड (सिद्धप्राभृत) :

जिस ग्रंथ में अञ्जन, पादलेप, गुटिका आदि का वर्णन था वह 'सिद्धपाहुड' ग्रंथ आज अप्राप्य है।

पादलिप्तसूरि और नागार्जुन पादलेप करके आकाशमार्ग से विचरण करते थे। आर्य सुस्थितसूरि के दो क्षुल्लक शिष्य आंखों में अंजन लगाकर अदृश्य होकर दुष्काल में चंद्रगुप्त राजा के साथ में बैठकर भोजन करते थे। 'समरा-

इच्चकहा' (भव ६, पत्र ५२१) में चंडरुद्र का कथानक आता है। वह 'परदिट्ठिमोहिणी' नामक चोरगुटिका को पानी में घिस कर आंखों में आंजता था, जिससे लक्ष्मी अदृश्य हो जाती थी।

आर्य समितसूरि ने योगचूर्ण से नदी के प्रवाह को रोककर ब्रह्मद्वीप के पांच सौ तापसों को प्रतिबोध दिया था। ऐसे जो अंजन, पादलेप और गुटिका के दृष्टांत मिलते हैं वह 'सिद्धपाहुड' में निर्दिष्ट बातों का प्रभाव था।

प्रश्नप्रकाश :

'प्रभावकचरित' (शृंग ५, श्लो० ३४७) के कथनानुसार 'प्रश्नप्रकाश' नामक ग्रंथ के कर्ता पादलिप्तसूरि थे। आगमों की चूर्णियों को देखने से मालूम होता है कि पादलिप्तसूरि ने 'कालज्ञान' नामक ग्रंथ की रचना की थी।

आचार्य पादलिप्तसूरि ने 'गाहाजुअलेण' से शुरू होनेवाले 'वीरथय' की रचना की है और उसमें सुवर्णसिद्धि तथा व्योमसिद्धि (आकाशगामिनी विद्या) का विवरण गुप्त रीति से दिया है। यह स्तव प्रकाशित है।

पादलिप्तसूरि संगमसिंह के शिष्य वाचनाचार्य मंडनगणि के शिष्य थे। स्कंदिलाचार्य के वे गुरु थे। 'कल्पचूर्णि' में इन्हें वाचक बताया गया है। हरिभद्रसूरि ने 'आवस्सयणिज्जुत्ति' (गा. ९४४) की टीका में वैनयिकी बुद्धि का उदाहरण देते हुए पादलिप्तसूरि का उल्लेख किया है।

वग्गकेवली (वर्गकेवली) :

वाराणसी-निवासी वासुकि नामक एक जैन श्रावक 'वग्गकेवली' नामक ग्रंथ लेकर याकिनीधर्मसूनु आचार्य हरिभद्रसूरि के पास आया था। ग्रंथ को लेकर आचार्यश्री ने उस पर टीका लिखी थी। बाद में ऐसे रहस्यमय ग्रंथ का दुरुपयोग होने की संभावना से आचार्यश्री ने वह टीका-ग्रंथ नष्ट कर दिया, ऐसा उल्लेख 'कहावली' में है।

नरपतिजयचर्या :

'नरपतिजयचर्या' के कर्ता धारानिवासी आम्रदेव के पुत्र जैन गृहस्थ नरपति हैं। इन्होंने वि० सं० १२३२ में जब अणहिल्लपुर में अजयपाल का शासन था तब यह कृति आशापल्ली में बनाई।

कर्ता ने इस ग्रंथ में मातृका आदि स्वरों के आधार पर शकुन देखने की और विशेषतः मांत्रिक यंत्रों द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त करने के हेतु शकुन देखने

की विधियों का वर्णन किया है। इसमें ब्रह्मयामल आदि सात यामलों का उल्लेख तथा उपयोग किया गया है। विषय का मर्म ८४ चक्रों के निदर्शन द्वारा सुस्पष्ट कर दिया गया है।

तांत्रिकों में प्रचलित मारण, मोहन, उच्चाटन आदि षट्कर्मों तथा मंत्रों का भी इसमें उल्लेख किया गया है।[1]

नरपतिजयचर्या-टीका :

हरिवंश नामक किसी जैनेतर विद्वान् ने 'नरपतिजयचर्या' पर संस्कृत में टीका रची है। कहीं-कहीं हिंदी भाषा और हिंदी पद्यों के अवतरण भी दिये हैं। यह टीका आधुनिक है। शायद ४०–५० वर्ष पहले लिखी गई होगी।

हस्तकांड :

'हस्तकांड' नामक ग्रंथ की रचना आचार्य चन्द्रसूरि के शिष्य पार्श्वचन्द्र ने १०० पद्यों में की है। प्रारंभ में वर्धमान जिनेश्वर को नमस्कार करके उत्तर और अधर-संबंधी परिभाषा बताई है। इसके बाद लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवित-मरण, भूभंग (जमीन और छत्र का पतन), मनोगत विचार, वर्णों का धर्म, संन्यासी वगैरह का धर्म, दिशा, दिवस आदि का काल-निर्णय, अर्घकांड, गर्भस्थ संतान का निर्णय, गमनागमन, वृष्टि और शल्योद्धार आदि विषयों की चर्चा है। यह ग्रंथ अनेक ग्रंथों के आधार से रचा गया है।[2]

मेघमाला :

हेमप्रभसूरि ने 'मेघमाला' नामक ग्रंथ वि० सं० १३०५ के आस-पास में रचा है। इसमें दशगर्भ का बलविशोधक, जलमान, वातस्वरूप, विद्युत् आदि विषयों पर विवेचन है। कुल मिलाकर १९९ पद्य हैं।

ग्रंथ के अंत में कर्ता ने लिखा है :

देवेन्द्रसूरिशिष्यैस्तु श्रीहेमप्रभसूरिभिः।
मेघमालाभिधं चक्रे त्रिभुवनस्य दीपकम्॥

यह ग्रंथ छपा नहीं है।

---

1. यह ग्रंथ वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित हुआ है।
2. श्रीचन्द्राचार्यशिष्येण पार्श्वचन्द्रेण धीमता।
उद्धृत्यानेकशास्त्राणि हस्तकाण्डं विनिर्मितम्॥१००॥

श्वानशकुनाध्याय :

संस्कृत भाषा में रची हुई २२ पद्यों की 'श्वानशकुनाध्याय' नामक कृति ५ पत्रों में है।[1] इसमें कर्ता का निर्देश नहीं है। इस ग्रंथ में कुत्ते की हलन-चलन और चेष्टाओं के आधार पर घर से निकलते हुए मनुष्य को प्राप्त होनेवाले शुभाशुभ फलों का निर्देश किया गया है।

नाडीविज्ञान :

'नाडीविज्ञान' नामक संस्कृत भाषा की ८ पत्रों की कृति ७८ पद्यों में है। 'नत्वा वीरं' ऐसा उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि यह कृति किसी जैनाचार्य द्वारा रची गई है। इसमें देहस्थित नाडियों की गतिविधि के आधार पर शुभाशुभ फलों का विचार किया गया है।

---

१. यह प्रति पाटन के जैन भंडार में है।

बारहवां प्रकरण

स्वप्न

सुविणदार (स्वप्नद्वार) :

प्राकृत भाषा की ६ पत्रों की 'सुविणदार' नाम की कृति पाटन के जैन भंडार मे है। उसमें कर्ता का नाम नहीं है परंतु अंत में 'पंचनमोक्कारमंत-सरणाओ' ऐसा उल्लेख होने से इसके जैनाचार्य की कृति होने का निर्णय होता है। इसमें स्वप्नों के शुभाशुभ फलों का विचार किया गया है।

स्वप्नशास्त्र :

'स्वप्नशास्त्र' के कर्ता जैन गृहस्थ विद्वान् मंत्री दुर्लभराज के पुत्र थे। दुर्लभराज और उनका पुत्र दोनों गुर्जरेश्वर कुमारपाल के मंत्री थे।[1]

यह ग्रन्थ दो अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अधिकार में १५२ श्लोक शुभ स्वप्नों के विषय में हैं और दूसरे अधिकार में १५९ श्लोक अशुभ स्वप्नों के बारे में हैं। कुल मिलाकर ३११ श्लोकों में स्वप्नविषयक चर्चा की गई है।

सुमिणसत्तरिया (स्वप्नसप्ततिका) :

किसी अज्ञात विद्वान् ने 'सुमिणसत्तरिया' नामक कृति प्राकृत भाषा में ७० गाथाओं में रची है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

सुमिणसत्तरिया-वृत्ति :

'सुमिणसत्तरिया' पर खरतरगच्छीय सर्वदेवसूरिने वि० सं० १२८७ में जैसलमेर में वृत्ति की रचना की है और उसमें स्वप्न-विषयक विशद विवेचन किया है। यह टीका-ग्रंथ भी अप्रकाशित है।

सुमिणवियार (स्वप्नविचार) :

'सुमिणवियार' नामक ग्रन्थ जिनपालगणि ने प्राकृत में ८७५ गाथाओं में रचा है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

---

१. श्रीमान् दुर्लभराजस्तदपत्यं बुद्धिधामसुकविरभूत्।
यं कुमारपालो महत्तमं क्षितिपतिः कृतवान्॥

स्वप्नप्रदीप :

'स्वप्नप्रदीप' का दूसरा नाम 'स्वप्नविचार' है। इस ग्रन्थ की रुद्रपल्लीय-गच्छ के आचार्य वर्धमानसूरि ने रचना की है। कर्ता का समय ज्ञात नहीं है।

इस ग्रन्थ में ४ उद्योत हैं : १. दैवतस्वप्नविचार श्लोक ४४, २. द्वासप्ततिमहास्वप्न श्लो० ४५ से ८०, ३. शुभस्वप्नविचार श्लो० ८१ से १२२ और ४. अशुभस्वप्नविचार श्लोक १२३ से १६२। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

इनके अलावा स्वप्नचिंतामणि, स्वप्नलक्षण, स्वप्नसुभाषित, स्वप्नाधिकार, स्वप्नाध्याय, स्वप्नावली, स्वप्नाष्टक आदि ग्रन्थों के नाम भी मिलते हैं।

तेरहवां प्रकरण

चूडामणि

अर्हच्चूडामणिसार :

'अर्हच्चूडामणिसार' का दूसरा नाम है 'चूडामणिसार' या 'ज्ञानदीपक'।[1] इसमें कुल मिलाकर ७४ गाथाएँ हैं। इसके कर्ता भद्रबाहुस्वामी के होने का निर्देश किया गया है।

इस पर संस्कृत में एक छोटी-सी टीका भी है।

चूडामणि :

'चूडामणि' नामक ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है। गुणचन्द्रगणि ने 'कहारयणकोस' में चूडामणिशास्त्र का उल्लेख किया है। इसके आधार पर तीनों कालों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था।

'सुपासनाहचरिय' में चंपकमाला के अधिकार में इस ग्रंथ की महिमा बतायी गई है। चंपकमाला 'चूडामणिशास्त्र' की विदुषी थी। उसका पति कौन होगा और उसे कितनी संतानें होंगी, यह सब वह जानती थी।[2]

इस ग्रन्थ के आधार पर भद्रलक्षण ने 'चूडामणिसार' नामक ग्रंथ की रचना की है और पार्श्वचन्द्र मुनि ने भी इसी ग्रन्थ के आधार पर अपने 'हस्त-काण्ड' की रचना की है।

कहा जाता है कि द्रविड देश में दुर्विनीत नामक राजा ने पांचवीं सदी में ९६००० श्लोक-प्रमाण 'चूडामणि' नामक ग्रंथ गद्य में रचा था।

---

१. यह ग्रंथ सिंघी सिरीज में प्रकाशित 'जयपाहुड' के परिशिष्ट के रूप में छपा है।

२. देखिए—लक्ष्मणगणिरचित सुपासनाहचरिय, प्रस्ताव २, सम्यक्त्वप्रशंसा-कथानक।

चन्द्रोन्मीलन :

'चन्द्रोन्मीलन' चूडामणि-विषयक ग्रंथ है। इसके कर्ता कौन थे और इसकी रचना कब हुई, यह ज्ञात नहीं हुआ है।

इस ग्रंथ में ५५ अधिकार हैं जिनमें मूलमंत्रार्थसंबंध, वर्णवर्गपञ्च, स्वराक्षरानयन, प्रश्नोत्तर, अष्टक्षिप्रसमुद्धार, जीवित-मरण, जय-पराजय, धनागमनागमन, जीव-धातु-मूल, देवभेद, स्वरभेद, मनुष्ययोनि, पक्षिभेद, नारकभेद, चतुष्पदभेद, अपदभेद, कीटयोनि, घटितलोहभेद; धाम्याधम्ययोनि, मूलयोनि, चिन्ताढ्रकाश्चतुर्भेद, नामाक्षर-स्वरवर्णप्रमाणसंख्या, स्वरसंख्या, अक्षरसंख्या, गणचक्र, अभिघातप्रश्ने सिंहावलोकितचक्र, धूमितप्रश्ने अश्वावलोकितचक्र, दग्धप्रश्ने मंडूकप्लुतचक्र, वर्गानयन, अक्षरानयन, महाशास्त्रार्थविवरप्रकरण, शल्योद्धारनभश्चक्र, तस्करागमनप्रकरण, कालज्ञान, गमनागमन, गर्भागर्भप्रकरण, मैथुनाध्याय, भोजनाध्याय, छत्रभंग, राष्ट्रनिर्णय, कोटभंग, सुभिक्षवर्णन प्रावृट्कालजलदागम, कूपजलोद्देशप्रकरण, आरामप्रकरण, गृहप्रकरण, गुह्यज्ञानप्रकरण, पत्रलेखनज्ञान, पारधिप्रकरण, संधियुद्धप्रकरण, विवाहप्रकरण, नष्ट-जातकप्रकरण, सफल-निष्फल-विचार, मित्रभावप्रकरण, अन्ययोनिप्रकरण, ज्ञातनिर्णय, शिक्षाप्रकरण आदि का विचार किया गया है।[१]

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि :

'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' नामक शास्त्र के रचयिता आचार्य समन्तभद्र माने जाते हैं। इस ग्रंथ के संपादक और अनुवादक पं० नेमिचन्द्रजी ने बताया है कि ये समंतभद्र 'आप्तमीमांसा' के कर्ता से भिन्न हैं। उन्होंने इनके 'अष्टांग-आयुर्वेद' और 'प्रतिष्ठातिलक' के कर्ता नेमिचन्द्र के भाई विजयप के पुत्र होने की संभावना की है।

अक्षरों के वर्गीकरण से इस ग्रंथ का प्रारंभ होता है। इसमें कार्य की सिद्धि, लाभालाभ, चुराई हुई वस्तु की प्राप्ति, प्रवासी का आगमन, रोगनिवारण, जय-पराजय आदि का विचार किया गया है। नष्ट जन्मपत्र बनाने की विधि भी इसमें बताई गई है। कहीं-कहीं तद्विषयक प्राकृत ग्रंथों के उद्धरण भी मिलते हैं।[२]

---

१. इस ग्रंथ की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

२. यह ग्रंथ भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् १९५० में प्रकाशित हुआ है।

अक्षरचूडामणिशास्त्र :

'अक्षरचूडामणिशास्त्र' नामक ग्रन्थ का निर्माण किसने किया, यह ज्ञात नहीं है परंतु यह ग्रन्थ किसी जैनाचार्य का रचा हुआ है, यह ग्रन्थ के अंतरंग-निरीक्षण से स्पष्ट होता है। यह श्वेतांबराचार्यकृत है या दिगंबराचार्यकृत, यह कहा नहीं जा सकता। इस ग्रन्थ में ३० पत्र हैं। भाषा संस्कृत है और कहीं-कहीं पर प्राकृत पद्य भी दिये गये हैं। ग्रंथ पूरा पद्य में होने पर भी कहीं-कहीं कर्ता ने गद्य मे भी लिखा है। ग्रन्थ का प्रारंभ इस प्रकार है :

नमामि पूर्णचिद्रूपं नित्योदितमनावृतम्।
सर्वाकारा च भाषिण्याः सत्कालिङ्गितमीश्वरम्॥
ज्ञानदीपकमालायाः वृत्तिं कृत्वा सदक्षरैः।
स्वरस्नेहेन संयोज्यं ज्वालयेदुत्तराधरैः॥

इसमें द्वारगाथा इस प्रकार है :

अथातः संप्रवक्ष्यामि उत्तराधरमुत्तमम्।
येन विज्ञातमात्रेण त्रैलोक्यं दृश्यते स्फुटम्॥

इस ग्रन्थ में उत्तराधरप्रकरण, लाभालाभप्रकरण, सुख-दुःखप्रकरण, जीवित-मरणप्रकरण, जयचक्र, जयाजयप्रकरण, दिनसंख्याप्रकरण, दिनवक्तव्यताप्रकरण, चिन्ताप्रकरण (मनुष्ययोनिप्रकरण, चतुष्पदयोनिप्रकरण, जीवयोनिप्रकरण, धाम्यधातुप्रकरण, धातुयोनिप्रकरण), नामबन्धप्रकरण, अकडमविवरण, स्थापना, सर्वतोभद्रचक्रविवरण, कचटादिवर्णाक्षरलक्षण, अहिवलये द्रव्यशल्याधिकार, इदाचक्र, पञ्चचक्रव्याख्या, वर्गचक्र, अर्घकाण्ड, जलयोग, नष्टोत्तर, जीव-धातु-मूलाक्षर, आलिंगितादिक्रम आदि विषयों का विवेचन है। ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

[illegible] एक [illegible] रचना है। यह फलादेश का एक अत्यन्त [illegible] है, जो सांस्कृतिक सामग्री से भरपूर है। 'अंगविद्या' का उल्लेख अनेक [illegible] ग्रन्थों में मिलता है।[1] यह लोक प्रचलित विद्या थी, जिससे शरीर के [illegible] अथवा अन्य प्रकार के निमित्त या मनुष्य की विविध चेष्टाओं [illegible] फलों का विचार किया जाता था। 'अंगविद्या' के अनुसार [illegible], लक्षण, व्यंजन, स्वप्न, छींक, भौम और अंतरिक्ष—ये आठ निमित्त के [illegible] हैं और इन आठ महानिमित्तों द्वारा भूत, भविष्य का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

यह 'अंगविज्जा' पूर्वाचार्य द्वारा गद्य-पद्यमिश्रित प्राकृत भाषा में प्रणीत है [illegible] शताब्दी के पूर्व का ग्रन्थ है। इसमें ६० अध्याय हैं। आरंभ में अंगविद्या की प्रशंसा की गई है और उसके द्वारा सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, जीवन-मरण आदि बातों का ज्ञान होना बताया गया है। ३० पटलों में विभक्त आठवें अध्याय में आसनों के अनेक भेद बताये गये हैं। नौवें अध्याय में १८६८ गाथाएँ हैं, जिनमें २७० विषयों का निरूपण है। इन विषयों में अनेक प्रकार की शय्या, आसन, यान, कुड्य, खंभ, वृक्ष, वस्त्र, [illegible], बर्तन, सिक्के आदि का वर्णन है। ग्यारहवें अध्याय में स्थापत्यसंबं[illegible] महत्त्वपूर्ण [illegible] हुए तत्संबंधी शब्दों की विस्तृत सूची दी [illegible] अध्याय [illegible] [illegible] शिल्पी और उनके उपकरणों के संदर्भ [illegible]। इसी

विजयद्वार नामक है जिसमें जय-पराजयसंबंधी कथन है। बाईसवें अध्याय में उत्तम फलों की सूची दी गई है। पचीसवें अध्याय में गोत्रों का विस्तृत उल्लेख है। छब्बीसवें अध्याय में नामों का वर्णन है। सत्ताईसवें अध्याय में राजा, मन्त्री, नायक, भाण्डागारिक, आसनस्थ, महानसिक, गजाध्यक्ष आदि राजकीय अधिकारियों के पदों की सूची है। अट्ठाईसवें अध्याय में उद्योगी लोगों की महत्त्वपूर्ण सूची है। उनतीसवां अध्याय नगरविजय नाम का है, इसमें प्राचीन भारतीय नगरों के संबंध में बहुत-सी बातों का वर्णन है। तीसवें अध्याय में आभूषणों का वर्णन है। बत्तीसवें अध्याय में धान्य के नाम हैं। तैंतीसवें अध्याय में वाहनों के नाम दिये गये हैं। छत्तीसवें अध्याय में दोहद-संबंधी विचार है। सैंतीसवें अध्याय में १२ प्रकार के लक्षणों का प्रतिपादन किया गया है। चालीसवें अध्याय में भोजनविषयक वर्णन है। इकतालीसवें अध्याय मे मूर्तियां, उनके प्रकार, आभूषण और अनेक प्रकार की क्रीडाओं का वर्णन है। तैंतालीसवें अध्याय में यात्रासंबंधी वर्णन है। छियालीसवें अध्याय में गृहप्रवेश-सम्बन्धी शुभ-अशुभफलों का वर्णन है। सैंतालीसवें अध्याय में राजाओं की सैन्ययात्रा-संबंधी शुभाशुभफलों का वर्णन है। चौवनवें अध्याय मे सार और असार वस्तुओं का विचार है। पचपनवें अध्याय मे जमीन में गड़ी हुई धनराशि की खोज करने के संबंध में विचार है। अट्ठावनवें अध्याय में जैनधर्म में निर्दिष्ट जीव और अजीव का विस्तार से वर्णन किया गया है। साठवें अध्याय में पूर्वभव जानने की तरकीब सुझाई गई है।[1]

करलक्खण (करलक्षण) :

'करलक्खण' प्राकृत भाषा में रचा हुआ सामुद्रिक शास्त्रविषयक अज्ञातकर्तृक ग्रन्थ है। आद्य पद्य में भगवान् महावीर को नमस्कार किया गया है। इसमें ६१ गाथाएँ हैं। इस कृति का दूसरा नाम 'सामुद्रिकशास्त्र' है।

इस ग्रन्थ मे हस्तरेखाओं का महत्त्व बताते हुए पुरुषों के लक्षण, पुरुषों का दाहिना और स्त्रियों का बायां हाथ देखकर भविष्य-कथन आदि विषयों का वर्णन किया गया है। विद्या, कुल, धन, रूप और आयु-सूचक पांच रेखाएँ होती हैं। हस्त-रेखाओं से भाई-बहन, संतानों की संख्या का भी पता चलता है। कुछ रेखाएँ धन और व्रत-सूचक भी होती हैं। ६०वीं गाथा में वाचनाचार्य, उपा-

१ यह ग्रंथ मुनि श्री पुण्यविजयजी द्वारा संपादित होकर प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी मे सन् १९५७ में प्रकाशित हुआ है।

ध्याय और सुरिपद प्राप्त होने का 'यव' कहाँ होता है, यह बताया गया है। *अंत में मनुष्य की परीक्षा करके 'व्रत' देने की बात का स्पष्ट उल्लेख है।*[1]

कर्ता ने अपने नाम का या रचना-समय का कोई उल्लेख नहीं किया है।

सामुद्रिक :

'सामुद्रिक' नाम की प्रस्तुत कृति संस्कृत भाषा में है। पाटन के भंडार में विद्यमान इस कृति के ८ पत्रों में पुरुष-लक्षण ३८ श्लोकों में और स्त्री-लक्षण भी ३८ पद्यों में हैं। कर्ता का नामोल्लेख नहीं है परन्तु मंगलाचरण में 'आदिदेवं प्रणम्यादौ' उल्लिखित होने से यह जैनाचार्य की रचना मालूम होती है। इसमें पुरुष और स्त्री की हस्तरेखा और शारीरिक गठन के आधार पर शुभाशुभ फलों का निर्देश किया गया है।

सामुद्रिकतिलक :

'सामुद्रिकतिलक' के कर्ता जैन गृहस्थ विद्वान् दुर्लभराज हैं। ये गुर्जरनृपति भीमदेव के अमात्य थे। इन्होंने १. गजप्रबंध, २. गजपरीक्षा, ३. तुरंगप्रबंध, ४. पुरुष-स्त्रीलक्षण और ५. शकुनशास्त्र की रचना की थी, ऐसी मान्यता है। पुरुष-स्त्रीलक्षण की पूरी रचना नहीं हो सकी होगी इसलिये उनके पुत्र जगदेव ने उसका शेष भाग पूरा किया होगा, ऐसा अनुमान है।

इस ग्रन्थ में पुरुषों और स्त्रियों के लक्षण ८०० आर्याओं में दिये गये हैं। यह ग्रन्थ पांच अधिकारों में विभक्त है जो क्रमशः २९८, ९९, ४६, १८८ और १४९ पद्यों में हैं।

*प्रारम्भ में तीर्थंकर ऋषभदेव और ब्राह्मी की स्तुति करने के अनन्तर सामु-*द्रिकशास्त्र की उत्पत्ति बताते हुए क्रमशः कई ग्रन्थकारों के नामों का निर्देश किया गया है।

प्रथम अधिकार में २९८ श्लोकों में पादतल से लेकर सिर के बाल तक का वर्णन और उनके फलों का निरूपण है।

---

१. यह ग्रंथ संस्कृत छाया, हिंदी अनुवाद, क्वचित् स्पष्टीकरण और पारिभाषिक शब्दों की अनुक्रमणिकापूर्वक प्रो॰ प्रफुल्लकुमार मोदी ने संपादित कर भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् १९५४ में दूसरा संस्करण प्रकाशित किया है। प्रथम संस्करण सन् १९४७ में प्रकाशित हुआ था।

द्वितीय अधिकार में ९९ श्लोकों में क्षेत्रों की संहति, सार आदि आठ प्रकार और पुरुष के ३२ लक्षण निरूपित हैं।

तृतीय अधिकार में ४६ श्लोकों में आवर्त, गति, छाया, स्वर आदि विषयों की चर्चा है।

चतुर्थ अधिकार में १४९ श्लोकों में स्त्रियों के व्यञ्जन, स्त्रियों की देव वगैरह बारह प्रकृतियाँ, पद्मिनी आदि के लक्षण इत्यादि विषय हैं।

अन्त में १० पद्यों की प्रशस्ति है जो कवि जगदेव ने रची है। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

सामुद्रिकशास्त्र :

अज्ञातकर्तृक 'सामुद्रिकशास्त्र' नामक कृति में तीन अध्याय हैं जिनमें क्रमशः २४, १२७ और १२१ पद्य हैं। प्रारंभ में आदिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करके ३२ लक्षणों तथा नेत्र आदि का वर्णन करते हुए हस्तरेखा आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में शरीर के अवयवों का वर्णन है। तीसरे अध्याय में स्त्रियों के लक्षण, कन्या कैसी पसन्द करनी चाहिये एवं पद्मिनी आदि प्रकार वर्णित हैं।

१३ वीं शताब्दी में वायडगच्छीय जिनदत्तसूरिरचित 'विवेकविलास' के कई श्लोकों से इस रचना के पद्य साम्य रखते हैं। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

हस्तसंजीवन (सिद्धज्ञान) :

'हस्तसंजीवन' अपर नाम 'सिद्धज्ञान' ग्रन्थ के कर्ता उपाध्याय मेघविजयगणि हैं। इन्होंने वि० सं० १७३५ में ५१९ पद्यों में संस्कृत में इस ग्रन्थ की रचना की है। अष्टांग निमित्त को घटाने के उद्देश्य से समस्त ग्रन्थ को १. दर्शन, २. स्पर्शन, ३. रेखाविमर्शन और ४. विशेष—इन चार अधिकारों में विभक्त किया है। अधिकारों के पद्यों की संख्या क्रमशः १७७, ५४,२४१ और ४७ है।

प्रारम्भ में शंखेश्वर पार्श्वनाथ आदि को नमस्कार करके हस्त की प्रशंसा हस्तज्ञानदर्शन, स्पर्शन और रेखाविमर्शन—इन तीन प्रकारों में बताई है। हाथ की रेखाओं का ब्रह्मा द्वारा बनाई हुई अक्षय जन्मपत्री के रूप में उल्लेख किया गया है। हाथ में ३ तीर्थ और २४ तीर्थंकर हैं। पाँच अंगुलियों के नाम, गुरु को हाथ बताने की विधि और प्रसंगवश गुरु के लक्षण आदि बताये गये हैं।

उसके बाद तिथि, वार के १७ चक्रों की जानकारी और हाथ के वर्ण आदि का वर्णन है।

दूसरे स्पर्शन अधिकार में हाथ में आठ निमित्त किस प्रकार घट सकते हैं, यह बताया गया है जिससे शकुन, शकुनशलाका, पाशककेवली आदि का विचार किया जाता है। चूडामणि-शास्त्र का भी यहाँ उल्लेख है।

तीसरे अधिकार में भिन्न-भिन्न रेखाओं का वर्णन है। आयुष्य, संतान, स्त्री, भाग्योदय, जीवन की मुख्य घटनाओं और सांसारिक सुखों के बारे में गवेषणा-पूर्वक ज्ञान कराया गया है।

चतुर्थ अधिकार में विश्वा—लंबाई, नाखून, आवर्तन के लक्षण, स्त्रियों की रेखाएँ, पुरुष के बायें हाथ का वर्णन आदि बातें हैं।[1]

हस्तसंजीवन-टीका :

'हस्तसंजीवन' पर उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० सं० १७३५ में 'सामुद्रिक-लहरी' नाम से ३८०० श्लोक-प्रमाण स्वोपज्ञ टीका की रचना की है। कर्ता ने यह ग्रन्थ जीवराम कवि के आग्रह से रचा है।

इस टीकाग्रन्थ में सामुद्रिक-भूषण, शैव-सामुद्रिक आदि ग्रन्थों का परिचय दिया है। इसमें खास करके ४३ ग्रन्थों की साक्षी है। हस्तबिम्ब, हस्तचिह्नसूत्र, कररेहापयरण, विवेकविलास आदि ग्रन्थों का उपयोग किया है।

अङ्गविद्याशास्त्र :

किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने 'अंगविद्याशास्त्र' नामक ग्रंथ की रचना की है। ग्रंथ अपूर्ण है। ४४ श्लोक तक ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। इसकी टीका भी रची गई है परन्तु यह पता नहीं कि यह ग्रन्थकार की स्वोपज्ञ है या किसी अन्य विद्वान् द्वारा रचित है। ग्रंथ जैनाचार्यरचित मालूम होता है। यह 'अंगविज्जा' के अन्त में सटीक छपा है।

इस ग्रन्थ में अशुभस्थानप्रदर्शन, पुंसंज्ञक अंग, स्त्रीसंज्ञक अंग, भिन्न-भिन्न फलनिर्देश, चौरज्ञान, अपहृत वस्तु का लाभालाभज्ञान, पीडित का मरणज्ञान, भोजनज्ञान, गर्भिणीज्ञान, गर्भप्रश्न में कालज्ञान, गर्भिणी को किस नक्षत्र में सन्तान का जन्म होगा—इन सब विषयों पर विवेचन है।

---

१. यह ग्रन्थ सटीक मोहनलालजी ग्रन्थमाला, इंदौर से प्रकाशित हुआ है। मूल ग्रन्थ गुजराती अनुवाद के साथ साराभाई नवाब, अहमदाबाद ने भी प्रकाशित किया है।

पन्द्रहवां प्रकरण

रमल

पासों पर बिन्दु के आकार के कुछ चिह्न बने रहते हैं। पासे फेंकने पर उन चिह्नों की जो स्थिति होती है उसके अनुसार हरएक प्रश्न का उत्तर बताने की एक विद्या है। उसे पाशकविद्या या रमलशास्त्र कहते हैं।

'रमल' शब्द अरबी भाषा का है और इस समय संस्कृत में जो ग्रन्थ इस विषय के प्राप्त होते हैं उनमें अरबी के ही पारिभाषिक शब्द व्यवहृत किये मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि यह विद्या अरब के मुसलमानों से आयी है। अरबी ग्रन्थों के आधार पर संस्कृत में कई ग्रन्थ बने हैं, जिनके विषय में यहाँ कुछ जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

रमलशास्त्र :

'रमलशास्त्र' की रचना उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० सं० १७३५ में की है। उन्होंने अपने 'मेघमहोदय' ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है। अपने शिष्य मुनि मेघविजयजी के लिये उपाध्यायजी ने इस कृति का निर्माण किया था।

यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

रमलविद्या :

'रमलविद्या' नामक ग्रन्थ की रचना मुनि भोजसागर ने १८ वीं शताब्दी में की है। इस ग्रन्थ में कर्ता ने निर्देश किया है कि आचार्य कालकसूरि इस विद्या को यवनदेश से भारत में लाये। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

मुनि विजयदेव ने भी 'रमलविद्या' सम्बन्धी एक ग्रन्थ की रचना की थी, ऐसा उल्लेख मिलता है।

पाशककेवली :

'पाशककेवली' नामक ग्रंथ की रचना गर्गाचार्य ने की है। इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है :

जैन आसीद् जगद्वन्द्यो गर्गनामा महामुनिः।
तेन स्वयं निर्णीतं यत् सत्पाशाऽत्र केवली॥
एतज्ज्ञानं महाज्ञानं जैनर्षिभिरुदाहृतम्।
प्रकाश्य शुद्धशीलाय कुलीनाय महात्मभिः॥

'मदनकामरत्न' ग्रंथ में भी ऐसा उल्लेख मिलता है। यह ग्रन्थ संस्कृत में था या प्राकृत में, यह ज्ञात नहीं है। गर्ग मुनि कब हुए, यह भी अज्ञात है। ये अति प्राचीन समय में हुए होंगे, ऐसा अनुमान है। इन्होंने एक 'संहिता' ग्रन्थ की भी रचना की थी।

पाशाकेवली :

अज्ञातकर्तृक 'पाशाकेवली' ग्रन्थ[1] में संकेत के पारिभाषिक शब्द अदअ, अअय, अयय आदि के अक्षरों के कोष्ठक दिये गये हैं। उन कोष्ठकों के अ प्रकरण, व प्रकरण, य प्रकरण, द प्रकरण—इस प्रकार शीर्षक देकर शुभाशुभ फल संस्कृत भाषा में बताये गये हैं।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में इस प्रकार लिखा है :

संसारपाशछित्त्यर्थं नत्वा वीरं जिनेश्वरम्।
आशापाशावने मुक्तः पाशाकेवलिः कथ्यते॥

ग्रन्थ अप्रकाशित है।

१. इसकी १० पत्रों की प्रति ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

सोलहवां प्रकरण

लक्षण

लक्षणमाला :

आचार्य जिनभद्रसूरि ने 'लक्षणमाला' नामक ग्रंथ की रचना की है। भांडारकर की रिपोर्ट में इस ग्रंथ का उल्लेख है।

लक्षणसंग्रह :

आचार्य रत्नशेखरसूरि ने 'लक्षणसंग्रह' नामक ग्रंथ की रचना की है।[1] रत्नशेखरसूरि १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए हैं।

लक्ष्य-लक्षणविचार :

आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने 'लक्ष्य-लक्षणविचार' नामक ग्रंथ की रचना की है।[2] हर्षकीर्तिसूरि १७ वीं सदी में विद्यमान थे। इन्होंने कई ग्रंथ रचे हैं।

लक्षण :

किसी अज्ञातनामा मुनि ने 'लक्षण' नामक ग्रंथ की रचना की है।[3]

लक्षण-अवचूरि :

'लक्षण' ग्रंथ पर किसी अज्ञातनामा जैन मुनि ने 'अवचूरि' रची है।[4]

लक्षणपङ्क्तिकथा :

दिगंबराचार्य श्रुतसागरसूरि ने 'लक्षणपंक्तिकथा' नामक ग्रंथ की रचना की है।[5]

---

१. इसका उल्लेख जैन ग्रंथावली, पृ० ९६ में है।
२. इस ग्रंथ का उल्लेख सूरत-भंडार की सूची में है।
३. यह ग्रंथ बड़ौदा के हंसविजयजी ज्ञानमंदिर में है।
४. बड़ौदा के हंसविजयजी ज्ञानमंदिर में यह ग्रंथ है।
५. जिनरत्नकोश में इसका उल्लेख है।

सत्रहवां प्रकरण

आय

आयनाणतिलय (आयज्ञानतिलक) :

'आयनाणतिलय' प्रश्न-प्रणाली का ग्रंथ है। भट्ट वोसरि ने इस कृति को २५ प्रकरणों में विभाजित कर कुल ७५० प्राकृत गाथाओं में रचा है।

भट्ट वोसरि दिगम्बर जैनाचार्य दामनंदि के शिष्य थे। मल्लिषेणसूरि ने, जो सन् १०४३ में विद्यमान थे, 'आयज्ञानतिलक' का उल्लेख किया है। इससे भट्ट वोसरि उनसे पहिले हुए यह निश्चित है।

भाषा की दृष्टि से यह ग्रंथ ई० १०वीं शताब्दी में रचित मालूम होता है। प्रश्नशास्त्र की दृष्टि से यह कृति अतीव महत्त्वपूर्ण है। इसमें ध्वज, धूम, सिंह, गज, खर, स्वान, वृष और ध्वांक्ष—इन आठ आयों द्वारा प्रश्नफलों का रहस्यात्मक एवं सुंदर वर्णन किया है। ग्रंथ के अंत में इस प्रकार उल्लेख है : इति दिगम्बराचार्यपण्डितदामनन्दिशिष्यभट्टवोसरिविरचिते...।

यह ग्रंथ अप्रकाशित है।[1]

'आयज्ञानतिलक' पर भट्ट वोसरि ने १२०० श्लोक-प्रमाण स्वोपज्ञ टीका लिखी है, जो इस विषय में उनके विशद ज्ञान का परिचय देती है।

आयसद्भाव :

'आयसद्भाव' नामक संस्कृत ग्रंथ की रचना दिगम्बराचार्य जिनसेनसूरि के शिष्य आचार्य मल्लिषेण ने की है। ग्रंथकार संस्कृत, प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे। वे धारवाड़ जिले के अंतर्गत गदग ताल्लुके के निवासी थे। उनका समय सन् १०४३ (वि० सं० ११००) माना जाता है।

कर्ता ने प्रारंभ में ही सुग्रीव आदि मुनियों द्वारा 'आयसद्भाव' की रचना करने का उल्लेख इस प्रकार किया है :

---

१. इसकी वि० सं० १४४१ में लिखी गई हस्तलिखित प्रति मिलती है।

सुग्रीवादिमुनीन्द्रैः रचितं शास्त्रं यदायसद्भावम्।
तत् संप्रत्यर्थाभिर्विरच्यते मल्लिषेणेन॥

इन्होंने भट्ट वोसरि का भी उल्लेख किया है। उन ग्रंथों से सार ग्रहण करके मल्लिषेण ने १९५ श्लोकों में इस ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ २० प्रकरणों में विभक्त है। कर्ता ने इसमें अष्ट-आय—१. ध्वज, २. धूम, ३. सिंह, ४. मण्डल, ५. वृष, ६. खर, ७. गज, ८. वायस—के स्वरूप और फलों का सुंदर विवेचन किया है। आयों की अधिष्ठात्री पुलिन्दिनी देवी का इसमें स्मरण किया गया है।

ग्रंथ के अंत में कर्ता ने कहा है कि इस कृति से भूत, भविष्य और वर्तमान काल का ज्ञान होता है। अन्य व्यक्ति को विद्या नहीं देने के लिये भी अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है :

अन्यस्य न दातव्यं मिथ्यादृष्टेस्तु विशेषतः।
शपथं च कारयित्वा जिनवरदेव्याः पुरः सम्यक्॥

यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

आयसद्भाव-टीका :

'आयसद्भाव' पर १६०० श्लोक-प्रमाण अज्ञातकर्तृक टीका की रचना हुई है। यह टीका भी अप्रकाशित है।

अठारहवाँ प्रकरण

अर्घ

अग्घकंड (अर्घकाण्ड) :

आचार्य दुर्गदेव ने 'अग्घकंड' नामक ग्रंथ का ग्रहचार के आधार पर प्राकृत में निर्माण किया है। इस ग्रन्थ से यह पता लगाया जा सकता है कि कौन-सी वस्तु खरीदने से और कौन-सी वस्तु बेचने से लाभ हो सकता है।[1]

'अग्घकंड' का उल्लेख 'विशेषनिशीथचूर्णि' में मिलता है। ऐसी कोई प्राचीन कृति होगी जिसके आधार पर दुर्गदेव ने इस कृति का निर्माण किया है।

कई ज्योतिष-ग्रंथों में 'अर्घ' का स्वतन्त्र प्रकरण रहता है किन्तु स्वतन्त्र कृति के रूप में यही एक ग्रंथ प्राप्त हुआ है।

उन्नीसवाँ प्रकरण

कोष्ठक

कोष्ठकचिन्तामणि :

आगमगच्छीय आचार्य देवरत्नसूरि के शिष्य आचार्य शीलसिंहसूरि ने प्राकृत में १५० पद्यों में 'कोष्ठकचिन्तामणि' नामक ग्रंथ की रचना की है। संभवतः १३ वीं शताब्दी में इसकी रचना की गई होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

इस ग्रंथ में ९, १६, २० आदि कोष्ठकों में जिन-जिन अंकों को रखने का विधान किया है उनको चारों ओर से गिनने पर जोड़ एक समान आता है। इस प्रकार पंदरिया, बीसा, चौतीसा आदि शताधिक यन्त्रों के बारे में विवरण है।

यह ग्रंथ अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

कोष्ठकचिन्तामणि-टीका :

शीलसिंहसूरि ने अपने 'कोष्ठकचिंतामणि' ग्रंथ पर संस्कृत में वृत्ति भी रची है।[1]

---

1. मूल ग्रन्थसहित इस टीका की १०१ पत्रों की करीब १६ वीं शताब्दी में लिखी गई प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

बीसवाँ प्रकरण

आयुर्वेद

सिद्धान्तरसायनकल्प :

दिगम्बराचार्य उग्रादित्य ने 'कल्याणकारक' नामक वैद्यकग्रंथ की रचना की है। उसके बीसवें परिच्छेद (श्लो० ८६) में समंतभद्र ने 'सिद्धान्तरसायन-कल्प' की रचना की, ऐसा उल्लेख है। इस अनुपलब्ध ग्रन्थ के जो अवतरण यत्र-तत्र मिलते हैं वे यदि एकत्रित किये जायँ तो दो-तीन हजार श्लोक-प्रमाण हो जायँ। कई विद्वान् मानते हैं कि यह ग्रंथ १८००० श्लोक-प्रमाण था। इसमें आयुर्वेद के आठ अङ्गों—काय, बल, ग्रह, ऊर्ध्वांग, शल्य, दंष्ट्रा, जरा और विष—के विषय में विवेचन था जिसमें जैन पारिभाषिक शब्दों का ही उपयोग किया गया था। इन शब्दों के स्पष्टीकरण के लिये अमृतनंदि ने एक कोश-ग्रन्थ की रचना भी की थी जो पूरा प्राप्त नहीं हुआ है।

पुष्पायुर्वेद :

आचार्य समंतभद्र ने परागरहित १८००० प्रकार के पुष्पों के बारे में 'पुष्पायुर्वेद' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ आज नहीं मिलता है।

अष्टांगसंग्रह :

समंतभद्राचार्य ने 'अष्टाङ्गसंग्रह' नामक आयुर्वेद का विस्तृत ग्रंथ रचा था, ऐसा 'कल्याणकारक' के कर्ता उग्रादित्य ने उल्लेख किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि उस 'अष्टाङ्गसंग्रह' का अनुसरण करके मैंने 'कल्याणकारक' ग्रन्थ संक्षेप में रचा है।[1]

---

१. अष्टाङ्गमप्यखिलमत्र समन्तभद्रैः,
प्रोक्तं सविस्तरमथो विभवैः विशेषात्।
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्त्या,
कल्याणकारकमशेषपदार्थयुक्तम्॥

निम्नोक्त ग्रन्थों और ग्रंथकारों के नामों का उल्लेख कल्याणकारक-कार ने किया है :

१. शालाक्यतंत्र	—पूज्यपाद
२. शल्यतंत्र	—पात्रकेसरी
३. विष एवं उग्रग्रहशमनविधि	—सिद्धसेन
४. काय-चिकित्सा	—दशरथ
५. बाल-चिकित्सा	—मेघनाद
६. वैद्य, वृष्य तथा दिव्यामृत	—सिंहनाद

निदानमुक्तावली :

वैद्यक-विषयक 'निदानमुक्तावली' नामक ग्रन्थ में १. कालारिष्ट और २. स्वस्थारिष्ट—ये दो निदान हैं। मंगलाचरण में यह श्लोक है :

रिष्टं दोषं प्रवक्ष्यामि सर्वशास्त्रेषु सम्मतम्।
सर्वप्राणिहितं दृष्टं कालारिष्टं च निर्णयम्॥

ग्रन्थ में पूज्यपाद का नाम नहीं है परन्तु प्रकरण-समाप्ति-सूचक वाक्य 'पूज्यपादविरचितम्' इस प्रकार है।[1]

मदनकामरत्न :

'मदनकामरत्न' नामक ग्रन्थ को कामशास्त्र का ग्रन्थ भी कह सकते हैं क्योंकि हस्तलिखित प्रति के ६४ पत्रों में से केवल १२ पत्र तक ही महापूर्ण चंद्रोदय, लोह, अग्निकुमार, ज्वरबलफणिगरुड, कालकूट, रत्नाकर, उदयमार्तण्ड, सुवर्णमाल्य, प्रतापलंकेश्वर, बालसूर्योदय और अन्य ज्वर आदि रोगों के विनाशक रसों का तथा कर्पूरगुण, मृगहारभेद, कस्तूरीभेद, कस्तूरीगुण, कस्तूर्यनुपान, कस्तूरी-परीक्षा आदि का वर्णन है। शेष पत्रों में कामदेव के पर्यायवाची शब्दों के उल्लेख के साथ ३४ प्रकार के कामेश्वररस का वर्णन है। साथ ही वाजीकरण, औषध, तेल, लिंगवर्धनलेप, पुरुषवश्यकारी औषध, स्त्रीवश्यभैषज, मधुरस्वरकारी औषध और गुटिका के निर्माण की विधि बताई गई है। कामसिद्धि के लिये छः मंत्र भी दिये गये हैं।

समग्र ग्रंथ पद्यबद्ध है। इसके कर्ता पूज्यपाद माने जाते हैं परन्तु वे देवनंदि से भिन्न हों ऐसा प्रतीत होता है। ग्रन्थ अपूर्ण-सा दिखाई देता है।

---

[1] इसकी हस्तलिखित ६ पत्रों की प्रति मद्रास के राजकीय पुस्तकालय में है।

बीसवाँ प्रकरण

आयुर्वेद

सिद्धान्तरसायनकल्प :

दिगम्बराचार्य उग्रादित्य ने 'कल्याणकारक' नामक वैद्यकग्रंथ की रचना की है। उसके बीसवें परिच्छेद (श्लो० ८६) में समंतभद्र ने 'सिद्धान्तरसायन-कल्प' की रचना की, ऐसा उल्लेख है। इस अनुपलब्ध ग्रन्थ के जो अवतरण यत्र-तत्र मिलते हैं वे यदि एकत्रित किये जायँ तो दो-तीन हजार श्लोक-प्रमाण हो जायँ। कई विद्वान् मानते हैं कि यह ग्रंथ १८००० श्लोक-प्रमाण था। इसमें आयुर्वेद के आठ अङ्गों—काय, बल, ग्रह, ऊर्ध्वांग, शल्य, दंष्ट्रा, जरा और विष—के विषय में विवेचन था जिसमें जैन पारिभाषिक शब्दों का ही उपयोग किया गया था। इन शब्दों के स्पष्टीकरण के लिये अमृतनंदि ने एक कोश-ग्रन्थ की रचना भी की थी जो पूरा प्राप्त नहीं हुआ है।

पुष्पायुर्वेद :

आचार्य समंतभद्र ने परागरहित १८००० प्रकार के पुष्पों के बारे में 'पुष्पायुर्वेद' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। वह ग्रन्थ आज नहीं मिलता है।

अष्टांगसंग्रह :

समंतभद्राचार्य ने 'अष्टाङ्गसंग्रह' नामक आयुर्वेद का विस्तृत ग्रंथ रचा था, ऐसा 'कल्याणकारक' के कर्ता उग्रादित्य ने उल्लेख किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि उस 'अष्टाङ्गसंग्रह' का अनुसरण करके मैंने 'कल्याणकारक' ग्रन्थ संक्षेप में रचा है।[1]

---

१. अष्टाङ्गमप्यखिलमत्र समन्तभद्रैः,
प्रोक्तं सविस्तरमथो विभवैः विशेषात्।
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्त्या,
कल्याणकारकमशेषपदार्थयुक्तम्॥

निम्नोक्त ग्रन्थों और ग्रंथकारों के नामों का उल्लेख कल्याणकारक-कार ने किया है :

१. शालाक्यतंत्र —पूज्यपाद
२. शल्यतंत्र —पात्रकेसरी
३. विष एवं उग्रग्रहशमनविधि —सिद्धसेन
४. काय-चिकित्सा —दशरथ
५. बाल-चिकित्सा —मेघनाद
६. वैद्य, वृष्य तथा दिव्यामृत —सिंहनाद

निदानमुक्तावली :

वैद्यक-विषयक 'निदानमुक्तावली' नामक ग्रन्थ में १. कालारिष्ट और २. स्वस्थारिष्ट—ये दो निदान हैं। मंगलाचरण में यह श्लोक है :

रिष्टं दोषं प्रवक्ष्यामि सर्वशास्त्रेषु सम्मतम्।
सर्वप्राणिहितं दृष्टं कालारिष्टं च निर्णयम्॥

ग्रन्थ में पूज्यपाद का नाम नहीं है परन्तु प्रकरण-समाप्ति-सूचक वाक्य 'पूज्यपादविरचितम्' इस प्रकार है।[1]

मदनकामरत्न :

'मदनकामरत्न' नामक ग्रन्थ को कामशास्त्र का ग्रन्थ भी कह सकते हैं क्योंकि हस्तलिखित प्रति के ६४ पत्रों में से केवल १२ पत्र तक ही महापूर्ण चंद्रोदय, लोह, अग्निकुमार, ज्वरवलफणिगरुड, कालकूट, रत्नाकर, उदयमार्तण्ड, सुवर्णमाल्य, प्रतापलंकेश्वर, बालसूर्योदय और अन्य ज्वर आदि रोगों के विनाशक रसों का तथा कर्पूरगुण, मृगहारभेद, कस्तूरीभेद, कस्तूरीगुण, कस्तूर्यनुपान, कस्तूरी-परीक्षा आदि का वर्णन है। शेष पत्रों में कामदेव के पर्यायवाची शब्दों के उल्लेख के साथ ३४ प्रकार के कामेश्वररस का वर्णन है। साथ ही वाजीकरण, औषध, तेल, लिंगवर्धनलेप, पुरुषवश्यकारी औषध, स्त्रीवश्यभैषज, मधुरस्वरकारी औषध और गुटिका के निर्माण की विधि बताई गई है। कामसिद्धि के लिये छः मंत्र भी दिये गये हैं।

समग्र ग्रंथ पद्यबद्ध है। इसके कर्ता पूज्यपाद माने जाते हैं परन्तु वे देवनंदि से भिन्न हों ऐसा प्रतीत होता है। ग्रन्थ अपूर्ण-सा दिखाई देता है।

---

१. इसकी हस्तलिखित ६ पत्रों की प्रति मद्रास के राजकीय पुस्तकालय में है।

नाडीपरीक्षा :

आचार्य पूज्यपाद ने 'नाडीपरीक्षा' नामक ग्रन्थ की रचना की है, ऐसा 'जिनरत्नकोश' पृ० २१० में उल्लेख है। यह कृति उनके किसी वैद्यक-ग्रन्थ के विभाग के रूप में भी हो सकती है।

कल्याणकारक :

पूज्यपाद ने 'कल्याणकारक' नामक वैद्यक-ग्रंथ की रचना की थी। यह ग्रंथ अनुपलब्ध है। इसमें प्राणियों के देहज दोषों को नष्ट करने की विधि बतायी गई थी। ग्रन्थकार ने अपने ग्रंथ में जैन प्रक्रिया का ही अनुसरण किया था। जैन प्रक्रिया कुछ भिन्न है, जैसे—'सुतं केसरिगन्धकं मृगनवासारद्रुमम्'—यह रस-सिन्दूर तैयार करने का पाठ है। इसमें जैन तीर्थंकरों के भिन्न-भिन्न चिह्नों से परिभाषाएँ बतायी गई हैं। मृग से १६ का अर्थ लिया गया है क्योंकि सोलहवें तीर्थंकर का लाञ्छन मृग है।

मेरुदण्डतन्त्र :

गुम्मटदेव मुनि ने 'मेरुदण्डतंत्र' नामक वैद्यक-ग्रन्थ की रचना की है। इसमें उन्होंने पूज्यपाद के नाम का आदरपूर्वक उल्लेख किया है।

योगरत्नमाला-वृत्ति :

नागार्जुन ने 'योगरत्नमाला' नामक वैद्यकग्रन्थ की रचना की है। उस पर गुणाकरसूरि ने वि० सं० १२९६ में वृत्ति रची है, ऐसा पिटर्सन की रिपोर्ट[1] से ज्ञात होता है।

अष्टाङ्गहृदय-वृत्ति :

वाग्भट नामक विद्वान् ने 'अष्टाङ्गहृदय' नामक वैद्य-विषयक प्रामाणिक ग्रन्थ रचा है। उस पर आशाधर नामक दिगम्बर जैन गृहस्थ विद्वान् ने 'उद्योत' वृत्ति की रचना की है। यह टीका-ग्रन्थ करीब वि० सं० १२९६ (सन् १२४०) में लिखा गया है। पिटर्सन ने आशाधर के ग्रन्थों में इसका भी उल्लेख किया है।

योगशत-वृत्ति :

वररुचि नामक विद्वान् ने 'योगशत' नामक वैद्यक-ग्रन्थ की रचना की है। उस पर पूर्णसेन ने वृत्ति रची है। इसमें सभी प्रकार के रोगों के औषध बताये गये हैं।

---

१. पिटर्सन : रिपोर्ट ३, एपेण्डिक्स, पृ० ३३० और रिपोर्ट ४, पृ० २६.

योगचिन्तामणि :

नागपुरीय तपागच्छ के आचार्य चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने 'योगचिन्तामणि' नामक वैद्यक-ग्रन्थ की रचना करीब वि० सं० १६६० में की है। यह कृति 'वैद्यकसारसंग्रह' नाम से भी प्रसिद्ध है।

आत्रेय, चरक, वाग्भट, सुश्रुत, अश्वि, हारीतक,वृन्द, कलिक, भृगु, भेड आदि आयुर्वेद के ग्रंथों का रहस्य प्राप्त कर इस ग्रंथ का प्रणयन किया गया है, ऐसा ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है।[1]

इस ग्रन्थ के संकलन में ग्रन्थकार की उपकेशगच्छीय विद्यातिलक वाचक ने सहायता की थी।[2]

ग्रन्थ में २९ प्रकरण हैं, जिनमें निम्नलिखित विषय हैं :

१. पाकाधिकार, २. पुष्टिकारकयोग, ३. चूर्णाधिकार, ४. क्वाथाधिकार, ५. घृताधिकार, ६. तैलाधिकार, ७. मिश्रकाधिकार, ८. संखद्रावविधि, ९. गन्धकशोधन, १०. शिलाजित्सत्ववर्णादिधातु-मारणाधिकार, ११. मंडूरपाक, १२. अभ्रकमारण, १३. पारदमारणरादिको हिंगूलसे पारदसाधन, १४. हरतालमारण-नाग-तांबाकाढणविधि, १५. सोवनमाषीमणशिलादिशोधन-लोकनाथ-रस, १६. आसवाधिकार, १७. कल्याणगुल-जंबीरद्रवलेपाधिकार-केशकल्प-लेप-रोमशातन, १८. मलम-रुधिरस्राव, १९. वमन-विरेचनविधि, २०. चकारी अधूलौ नासिकायां मस्तकरोधबन्धन, २१. तक्रपानविधि, २२. ज्वरहरादि-साधारणयोग, २३. वर्धमान-हरीतकी-त्रिफलायोग-त्रिगड्ड-आसगन्ध, २४. काय-चिकित्सा-एरण्डतैल-हरीतकी-त्रिफलादिसाधारणयोग, २५. डंभ-विषचिकित्सा-स्त्री-कुक्षिरोग चिकित्सा, २६. गर्भनिवारण-कर्मविपाक, २७. (वन्ध्या) स्त्री-रोगाधिकार-सर्वरोग-सर्वदोषशान्तिकरण, २८. नाडीपरीक्षा-मूत्रपरीक्षा, २९. नेत्र-परीक्षा-जिह्वापरीक्षादि।

---

१. आत्रेयका चरक-वाग्भट-सुश्रुताश्वि-हारीत-वृन्द-कलिका-भृगु-भेड(ल)पूर्वाः।
येऽमी निदानयुतकर्मविपाकमुख्यास्तेषां मतं समनुसृत्य मया कृतोऽयम् ॥

२. श्रीमदुपकेशगच्छीयविद्यातिलकवाचकाः ।
किञ्चित् संकलितो योगवार्त्ता किञ्चिद् कृतानि च ॥

वैद्यवल्लभ :

मुनि हितरुचि[1] के शिष्य मुनि हस्तिरुचि ने वैद्यवल्लभ नामक आयुर्वेदविषयक ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ पद्य में है तथा आठ अध्यायों में विभक्त है। इनमें निम्नलिखित विषय हैं :

१. सर्वज्वरप्रतीकार (पद्य २८), २. सर्वस्त्रीरोगप्रतीकार (४१), ३. कास-क्षय-शोफ-फिरङ्ग-वायु-पामा-दद्रु-रक्त-पित्तप्रभृतिरोगप्रतीकार (३०), ४. धातु-प्रमेह-मूत्रकृच्छ्र-लिङ्गवर्धन-वीर्यवृद्धि-बहुमूत्रप्रभृतिरोगप्रतीकार (२६), ५. गुद-रोगप्रतीकार (२४), ६. कुष्ठविष-वरहल्ले-मन्दाग्नि-कमलोदरप्रभृतिरोगप्रतीकार (२६), ७. शिरकर्णाक्षिरोगप्रतीकार (४२), ८. पाक-गुटिकाद्यधिकार-शेष-योगनिरूपण।

द्रव्यावली-निघण्टु :

मुनि महेन्द्र ने 'द्रव्यावली-निघण्टु' नामक ग्रंथ की रचना की है। यह वनस्पतियों का कोशग्रन्थ मालूम पड़ता है। ग्रन्थ ९०० श्लोक-परिमाण है।

सिद्धयोगमाला :

सिद्धर्षि मुनि ने 'सिद्धयोगमाला' नामक वैद्यक-विषयक ग्रन्थ की रचना की है। यह कृति ५०० श्लोक-परिमाण है। 'उपमितिभवप्रपञ्चाकथा' के रचयिता सिद्धर्षि ही इस ग्रन्थ के कर्ता हों तो यह कृति १०वीं शताब्दी में रची गई, ऐसा कह सकते हैं।

रसप्रयोग :

सोमप्रभाचार्य ने 'रसप्रयोग' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमें रसका निरूपण और पारे के १८ संस्कारों का वर्णन होगा, ऐसा मालूम होता है। ये सोमप्रभाचार्य कब हुए यह अज्ञात है।

रसचिन्तामणि :

अनन्तदेवसूरि ने 'रसचिन्तामणि' नामक ९०० श्लोक-परिमाण ग्रंथ रचा है। ग्रंथ देखने में नहीं आया है।

---

१. तपागच्छ के विजयसिंहसूरि के शिष्य उदयरुचि के शिष्य का नाम भी हितरुचि था। ये वही हों तो इन्होंने 'षडावश्यक' पर वि० सं० १६९७ में व्याख्या लिखी है।

माघराजपद्धति :

माघचन्द्रदेव ने 'माघराजपद्धति' नामक १०००० श्लोक-प्रमाण ग्रंथ रचा है। यह ग्रंथ भी देखने में नहीं आया है।

आयुर्वेदमहोदधि :

सुषेण नामक विद्वान् ने 'आयुर्वेदमहोदधि' नामक ११०० श्लोक-प्रमाण ग्रंथ का निर्माण किया है। यह निघण्टु-कोशग्रंथ है।

चिकित्सोत्सव :

हंसराज नामक विद्वान् ने 'चिकित्सोत्सव' नामक १७०० श्लोक-प्रमाण ग्रंथ का निर्माण किया है। यह ग्रन्थ देखने में नहीं आया है।

निघण्टुकोश :

आचार्य अमृतनंदि ने जैन दृष्टि से आयुर्वेद की परिभाषा बताने के लिये 'निघुण्टुकोश' की रचना की है। इस कोश में २२००० शब्द हैं। यह सकार तक ही है। इसमें वनस्पतियों के नाम जैन परिभाषा के अनुसार दिये हैं।

कल्याणकारक :

आचार्य उग्रादित्य ने 'कल्याणकारक' नामक आयुर्वेदविषयक ग्रंथ की रचना की है, जो आज उपलब्ध है। ये श्रीनंदि के शिष्य थे। इन्होंने अपने ग्रंथ में पूज्यपाद, समंतभद्र, पात्रस्वामी, सिद्धसेन, दशरथगुरु, मेघनाद, सिंहसेन आदि आचार्यों का उल्लेख किया है। 'कल्याणकारक' की प्रस्तावना में ग्रंथकार का समय छठी शती से पूर्व होने का उल्लेख किया गया है परन्तु उग्रादित्य ने ग्रंथ के अन्त में अपने समय के राजा का उल्लेख इस प्रकार किया है : इत्यशेषविशेषविशिष्टदुष्टपिशिताशिवैद्यशास्त्रेषु मांसनिराकरणार्थमुग्रादित्याचार्येण नृपतुङ्गवल्लभेन्द्रसभायामुद्घोषितं प्रकरणम्।

नृपतुङ्ग राष्ट्रकूट अमोघवर्ष का नाम था और यह नवीं शताब्दी में विद्यमान था। इसलिये उग्रादित्य का समय भी नवीं शती ही हो सकता है। परन्तु इस ग्रंथ में निरूपित विषय की दृष्टि आदि से उनका यह समय भी ठीक नहीं जँचता, क्योंकि रसयोग की चिकित्सा का व्यापक प्रचार ११ वीं शती के बाद ही मिलता है। इसलिये यह ग्रंथ कदाचित् १२ वीं शती से पूर्व का नहीं है।

उग्रादित्य ने प्रस्तुत कृति में मधु, मद्य और मांस के अनुपान को छोड़कर औषध विधि बतायी है। रोगक्रम या रोग-चिकित्सा का वर्णन जैनेतर आयुर्वेद के ग्रंथों से भिन्न है। इसमें वात, पित्त और कफ की दृष्टि से रोगों का उल्लेख है। वातरोगों में वातसंबंधी सब रोग लिखने का यत्न किया है। पित्तरोगों में ज्वर, अतिसार का उल्लेख किया है। इसी प्रकार कफरोगों में कफ से संबंधित रोग हैं। नेत्ररोग, शिरोरोग आदि का क्षुद्र-रोगाधिकार में उल्लेख किया है। इस प्रकार ग्रंथकार ने रोगवर्णन में एक नया क्रम अपनाया है।

यह ग्रंथ २५ अधिकारों में विभक्त है: १. स्वास्थ्यरक्षणाधिकार, २. गर्भोत्पत्तिलक्षण, ३. सूत्रव्यावर्णन ४. धान्यादिगुणागुणविचार, ५. अन्नपानविधि, ६. रसायनविधि, ७. चिकित्सासूत्राधिकार, ८. वातरोगाधिकार, ९. पित्तरोगाधिकार, १०. कफरोगाधिकार, ११. महामायाधिकार, १२. वातरोगाधिकार, १३–१७. क्षुद्ररोगचिकित्सा, १८. बालग्रहभूततंत्राधिकार, १९. विषरोगाधिकार, २०. शास्त्रसंग्रहतंत्रयुक्ति, २१. कर्मचिकित्साधिकार, २२. भेषजकर्मोपद्रवचिकित्साधिकार, २३. सर्वौषधकर्मव्यापचिकित्साधिकार, २४. रसरसायनाधिकार, २५. कल्पाधिकार, परिशिष्ट—रिष्टाध्याय, हिताहिताध्याय।[1]

नाडीविचार :

अज्ञातकर्तृक 'नाडीविचार' नामक कृति ७८ पद्यों में है। पाटन के ज्ञानभंडार में इसकी प्रति विद्यमान है। इसका प्रारंभ 'नत्वा वीरं' से होता है अतः यह जैनाचार्य की कृति मालूम पड़ती है। संभवतः यह 'नाडीविज्ञान' से अभिन्न है।

नाडीचक्र तथा नाडीसंचारज्ञान :

'नाडीचक्र' और 'नाडीसंचारज्ञान'—इन दोनों ग्रंथों के कर्ताओं का कोई उल्लेख नहीं है। दूसरी कृति का उल्लेख 'बृहट्टिप्पणिका' में है, इसलिये यह ग्रंथ पांच सौ वर्ष पुराना अवश्य है।

नाडीनिर्णय :

अज्ञातकर्तृक 'नाडीनिर्णय' नामक ग्रंथ की ५ पत्रों की हस्तलिखित प्रति मिलती है। वि०सं० १८१२ में खरतरगच्छीय पं० मानशेखर मुनि ने इस ग्रंथ

---

१. यह ग्रन्थ हिंदी अनुवाद के साथ सेठ गोविंदजी रावजी दोशी, सखाराम नेमचंद ग्रन्थमाला, सोलापुर (अनु० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री) ने सन् १९४० में प्रकाशित किया है।

की प्रतिलिपि की है। अन्त में 'नाडीनिर्णय' ऐसा नाम दिया है। समग्र ग्रंथ पद्यात्मक है। ४१ पद्यों में ग्रंथ पूर्ण होता है। इसमें मूत्रपरीक्षा, तैलबिंदु की दोषपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा, मुखपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, रोगों की संख्या, ज्वर के प्रकार आदि से सम्बन्धित विवेचन है।

जगत्सुन्दरीप्रयोगमाला :

'योनिप्राभृत' और 'जगत्सुन्दरीप्रयोगमाला'—इन दोनों ग्रंथों की एक जीर्ण प्रति पूना के भांडारकर इन्स्टीट्यूट में है। दोनों ग्रंथ एक-दूसरे में मिश्रित हो गये हैं।

'जगत्सुन्दरीप्रयोगमाला' ग्रन्थ पद्यात्मक प्राकृतभाषा में है। बीच में कहीं-कहीं गद्य में संस्कृत भाषा और कहीं पर तो तत्कालीन हिंदी भाषा का भी उपयोग हुआ दिखाई देता है। इसमें ४३ अधिकार हैं और करीब १५०० गाथाएँ हैं।

इस ग्रंथ के कर्ता यशःकीर्ति मुनि हैं।[1] वे कब हुए और उन्होंने अन्य कौन से ग्रन्थ रचे, इस विषय में जानकारी नहीं मिलती। पूना की हस्तलिखित प्रति के आधार पर कहा जा सकता है कि यशःकीर्ति वि० सं० १५८२ के पहले कभी हुए हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में परिभाषाप्रकरण, ज्वराधिकार, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार, ग्रहणी, पाण्डु, रक्तपित्त आदि विषयों पर विवेचन है। इसमें १५ यन्त्र भी हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं : १. विद्याधरवापीयंत्र, २. विद्याधरीयंत्र, ३. वायुयंत्र, ४. गंगायंत्र, ५. एरावणयंत्र, ६. भेरुंडयंत्र, ७. राजाम्युदयंत्र, ८. गतप्रत्यागतयंत्र, ९. बाणगंगायंत्र, १०. जलदुर्गभयानकयंत्र, ११. उरयागासे पक्खि० म० महायंत्र, १२. हंसश्रवायंत्र, १३. विद्याधरीनृत्ययंत्र, १४. मेघनादभ्रमणवर्तयंत्र, १५. पाण्डवामलीयंत्र।[2]

इसमें जो मन्त्र हैं उनका एक नमूना इस प्रकार है :

---

१. जसइत्तिणामसुणिणा भणियं णाऊण कलिसरूवं च।
वाहिगहिय वि हु भव्वो जह मिच्छत्तेण संगिलइ ॥ १२ ॥

२. यह ग्रन्थ एस० के० कोटेचा ने धूलिया से प्रकाशित किया है। इसमें अशुद्धियाँ अधिक रह गई हैं।

ॐ नमो भगवते पार्श्वरुद्राय चंद्रहासेन खड्गेन गर्दभस्य सिरं छिन्दय छिन्दय, दुष्टव्रणं हन हन, लूतां हन हन, जालगर्दभं हन हन, गण्डमालां हन हन, विद्रधिं हन हन, विस्फोटकसर्वान् हन हन फट् स्वाहा ॥

ज्वरपराजय :

जयरत्नगणि ने 'ज्वरपराजय' नामक वैद्यक-ग्रन्थ की रचना की है। ग्रंथ के प्रारम्भ में ही इन्होंने आत्रेय, चरक, सुश्रुत, भेल, वाग्भट, वृन्द, अंगद, नागसिंह, पाराशर, सोढ्ल, हारीत, तिसट, माधव, पालकाप्य और अन्य ग्रंथों को देखकर इस ग्रन्थ की रचना की है,[1] इस प्रकार का पूर्वज आचार्यों और ग्रंथकारों का ऋण स्वीकार किया है।

इस ग्रन्थ में ४३९ श्लोक हैं। मंगलाचरण (श्लो० १ से ७), शिराप्रकरण (८–१६), दोषप्रकरण (१७–५१), ज्वरोत्पत्तिप्रकरण (५२–१२१), वात-पित्त के लक्षण (१२२–१४८), अन्य ज्वरों के भेद (१४९–१५६), देश-काल को देखकर चिकित्सा करने की विधि (१५७–२२४), बस्तिकर्माधिकार (२२५–३६९), पथ्याधिकार (३७०–३८९), संनिपात, रक्तष्ठिवि आदि (३९०–४३१), पूर्णाहुति (४३२–४३९)—इस प्रकार विविध विषयों का निरूपण है।

ग्रंथकार वैद्यक के जानकार और अनुभवी मालूम होते हैं।

जयरत्नगणि पूर्णिमापक्ष के आचार्य भावरत्न के शिष्य थे।[2] उन्होंने त्रंबावती (खंभात) में इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६६२ में की थी।[3]

---

१. आत्रेयं चरकं सुश्रुतमथो भेजा (ला)भिधं वाग्भटं,
सद्वृन्दाङ्गद-नागसिंहमतुलं पाराशरं सोढ्लम्।
हारीतं तिसटं च माधवमहाश्रीपालकाप्याधिकान्,
सद्ग्रंथानवलोक्य साधुविधिना चैतांस्तथाऽन्यानपि ॥

२. यः श्वेताम्बरमौलिमण्डनमणिः सत्पूर्णिमापक्षवान्,
यस्यास्ते वसतिः समृद्धनगरे त्र्यंबावतीनामके।
नत्वा श्रीगुरुभावरत्नचरणौ ज्ञानप्रकाशप्रदौ,
सद्बुद्ध्या जयरत्न आरचयति ग्रंथं भिषक्प्रीतये ॥ ६ ॥

३. श्रीविक्रमाद् द्वि-रस-षट्-शशिवत्सरेषु (१६६२),
यातेष्वथो नभसि मासि सिते च पक्षे।
तिथ्यामथ प्रतिपदि क्षितिसूनुवारे,
ग्रन्थोऽरचि ज्वरपराजय एष तेन ॥ ४३७ ॥

सारसंग्रह :

यह ग्रन्थ 'अकलंकसंहिता' नाम से प्रकाशित हुआ है। ग्रंथ का प्रारम्भ इस प्रकार है :

> नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
> कल्याणकारको ग्रन्थः पूज्यपादेन भाषितः॥
> ....।
> सर्वं लोकोपकारार्थं कथ्यते सारसंग्रहः॥
> श्रीमद् वाग्भट-सुश्रुतादिविमलश्रीवैद्यशास्त्रार्णवे,
> भास्वत्.......सुसारसंग्रहमहाबामान्विते संग्रहे।
> मन्त्रज्ञैरुपलभ्य सद्विजयणोपाध्यायसन्निर्मिते,
> ग्रन्थेऽस्मिन् मधुपाकसारनिचये पूर्णं भवेन्मङ्गलम्॥

ग्रंथगत इन पद्यों से तो इसका नाम 'सारसंग्रह' प्रतीत होता है।

इसमें पृष्ठ १ से ५ तक समंतभद्र के रस-संबंधी कई पद्य, ६ से ३२ तक पूज्यपादोक्त रस, चूर्ण, गुटिका आदि कई उपयोगी प्रयोग और ३३ से गोम्मटदेव के 'मेरुदण्डतंत्र' सम्बन्धी ग्रन्थ की नाडीपरीक्षा और ज्वरनिदान आदि कई भाग हैं। भिन्न-भिन्न प्रकरणों में सुश्रुत, वाग्भट, हरीतमुनि, रुद्रदेव आदि वैद्याचार्यों के मतों का संग्रह भी है।[1]

निबन्ध :

मंत्री धनराज के पुत्र सिंह द्वारा वि० सं० १५२८ की मार्गशीर्ष कृष्णा ५ के दिन[2] वैद्यकग्रन्थ की रचना करने का विधान श्री अगरचंदजी नाहटा ने किया है।[3] श्री नाहटाजी को इस ग्रंथ के अंतिम दो पत्र मिले हैं। उन पत्रों में १०९९ से ११२३ तक के पद्य हैं। अंतिम चार पद्यों में प्रशस्ति है। प्रशस्ति में इस ग्रंथ को 'निबंध' कहा है।[4] प्रस्तुत प्रति १७ वीं शताब्दी में लिखी गई है।

---

१. यह ग्रन्थ आरा के जैन सिद्धांतभवन से प्रकाशित हुआ है।

२. वसु-कर-शर-चन्द्रे (१५२८) वत्सरे राम-नन्द-
ज्वलन-शशि(१३९३) मिते च श्रीशके मासि मार्गे।
असितदलतिथौ वा पञ्चमी.........केऽर्के
गुरुमशुभदिनेऽसौ...................॥११२२॥

३. देखिए—जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १९, पृ. ११.

४. यावन्मेरौ कनकं तिष्ठतु तावन्निबन्धोऽयम् ॥ ११२३ ॥

ग्रन्थकार सिंह रणथंभोर के शासक अलाउद्दीन खिलजी (सन् १५३१) के मुख्य मंत्री पोरवाडज्ञातीय धनराज श्रेष्ठी का पुत्र था, यह इस ग्रंथ की प्रशस्ति (श्लो० ११२१) से[1] तथा कृष्णर्षिगच्छीय आचार्य जयसिंहसूरि द्वारा धनराज मंत्री के लिये रचित 'प्रबोधमाला' नामक कृति की प्रशस्ति से ज्ञात होता है। धनराज का दूसरा पुत्र श्रीपति था।[2] दोनों कुलदीपक, राजमान्य, दानी, गुणी और संघनायक थे,[3] ऐसा भी प्रशस्ति से मालूम होता है।

---

१. खलचिकुलमहीपश्रीमदल्लावदीनप्रबलभुजरक्षे श्रीरणस्तम्भदुर्गे।
सकलसचिवमुख्यश्रीधनेशस्य सूनुः समकुरुत निबन्धं सिंहनामा प्रभुर्यः ॥११२१॥

२. धरमिणि-धाहूनाम्ना स्त्रीयुगलं मन्त्रिधनराजस्य।
प्रथमोदरजौ सीहा-श्रीपतिपुत्रौ च विख्यातौ ॥ १० ॥

३. कुलदीपकौ द्वावपि राजमान्यौ सुदानृताळक्षणलक्षितांगौ।
गुणाकरौ द्वावपि संघनायकौ धनाङ्गजौ भूवलयेन नन्दताम् ॥

इक्कीसवाँ प्रकरण

अर्थशास्त्र

संघदासगणि-रचित 'वसुदेवहिंडी' के साथ जुड़ी हुई 'धम्मिल्लहिंडी' में 'भगवद्गीता', 'पोरागम' (पाकशास्त्र) और 'अर्थशास्त्र'—इन तीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का उल्लेख है। 'अत्थसत्थे य भणियं' ऐसा कहकर 'विसेसेण मायाए सत्थेण य हंतव्वो अप्पणो विवड्ढमाणो सत्तु त्ति' (पृ० ४५) (अर्थशास्त्र में कहा गया है कि विशेषतः अपने बढ़ते हुए शत्रु का कपट द्वारा तथा शस्त्र से नाश करना चाहिये।) यह उल्लेख किया गया है।

ऐसा दूसरा उल्लेख द्रोणाचार्यरचित 'ओघनिर्युक्तिवृत्ति' में है। 'चाणक्कए वि भणियं' ऐसा कह कर 'जइ काइयं न वोसिरइ तो अदोसो त्ति' (पत्र १५२ आ) (यदि मल-मूत्र का त्याग नहीं करता है तो दोष नहीं है।) यह उल्लेख किया गया है।

तीसरा उल्लेख है पादलिप्ताचार्य की 'तरंगवतीकथा' के आधार पर रची गई नेमिचन्द्रगणिकृत 'तरंगलोला' में। उसमें अत्थसत्थ–अर्थशास्त्र के विषय में निम्नलिखित निर्देश है :

> तो भणइ अत्थसत्थम्मि वण्णियं सुयणु ! सत्थयारेहिं।
> दूतीपरिभव दूती न होइ कज्जस्स सिद्धकरी॥
> एतो हु मन्तभेओ दूतीओ होज्ज कामनेमुक्का।
> महिला मुंचरहस्सा रहस्सकाले न संठाइ॥
> आभरणवेलायां नीणंति अवि य घेचति चिंता।
> होज्ज मंतभेओ गमणविघाओ अविव्वाणी॥

इन तीन उल्लेखों से यह सूचित होता है कि प्राचीन युग में प्राकृत भाषा में रचा हुआ कोई अर्थशास्त्र था।

निशीथचूर्णिकार जिनदासगणि ने अपनी 'चूर्णि' में भाष्यगाथाओं के अनुसार संक्षेप में 'धूर्ताख्यान' दिया है और आख्यान के अन्त में 'सेसं धुत्तक्खाण-

गाणुसारेण णेयमिति' ऐसा उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में 'धूर्ताख्यान' नामक प्राकृत भाषा में रचित व्यंसक-कथा थी।

उसी कथा का आधार लेकर आचार्य हरिभद्रसूरि ने 'धूर्ताख्यान' नामक कथा-ग्रन्थ की रचना की है। उसमें खंडपाणा को 'अर्थशास्त्र' की निर्मात्री बताई गई है, परन्तु उसका अर्थशास्त्र उपलब्ध नहीं हुआ है।

सम्भव है कि किसी जैनाचार्य ने 'अर्थशास्त्र' की प्राकृत में रचना की हो जो आज उपलब्ध नहीं है।

बाईसवाँ प्रकरण

नीतिशास्त्र

नीतिवाक्यामृत :

जिस तरह चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिये 'अर्थशास्त्र' की रचना की थी उसी प्रकार आचार्य सोमदेवसूरि ने 'नीतिवाक्यामृत' की रचना वि० सं० १०२५ में राजा महेन्द्र के लिये की थी। संस्कृत गद्य में सूत्रबद्ध शैली में रचित यह कृति ३२ समुद्देशों में विभक्त है : १. धर्मसमुद्देश, २. अर्थसमुद्देश, ३. कामसमुद्देश, ४. अरिषड्वर्ग, ५. विद्यावृद्ध, ६. आन्वीक्षिकी, ७. त्रयी, ८. वार्ता, ९. दण्डनीति, १०. मंत्री, ११. पुरोहित, १२. सेनापति, १३. दूत, १४. चार, १५. विचार, १६. व्यसन, १७. स्वामी, १८. अमात्य, १९. जनपद, २०. दुर्ग, २१. कोष, २२. बल, २३. मित्र, २४. राजरक्षा, २५. दिवसानुष्ठान, २६. सदाचार, २७. व्यवहार, २८. विवाद, २९. षाड्गुण्य, ३०. युद्ध, ३१. विवाह और ३२. प्रकीर्ण।

इस विषयसूची से यह मालूम पड़ता है कि इस ग्रन्थ में राजा और राज्य-शासन-व्यवस्थाविषयक प्रचुर सामग्री दी गई है। अनेक नीतिकारों और स्मृतिकारों के ग्रन्थों के आधार पर इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है। आचार्य सोमदेव ने अपने ग्रन्थ में कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' का आधार लिया है और कई जगह समानता होते हुए भी कहीं भी कौटिल्य के नाम का उल्लेख नहीं किया है।

आचार्य सोमदेव की दृष्टि कई जगह कौटिल्य से भिन्न और विशिष्ट भी है। सोमदेव के ग्रन्थ में क्वचित् जैनधर्म का उपदेश भी दिखाई पड़ता है। कितने ही सूत्र सुभाषित जैसे हैं और कौटिल्य की रचना से अल्पाक्षरी और मनोरम हैं।

'नीतिवाक्यामृत' के कर्ता आचार्य सोमदेवसूरि देवसंघ के यशोदेव के शिष्य नेमिदेव के शिष्य थे। ये दार्शनिक और साहित्यकार भी थे। इन्होंने त्रिवर्गमहेन्द्रमातलिसंजल्प, युक्तिचिंतामणि, षण्णवतिप्रकरण, स्याद्वादोपनिषत्, सूक्ति-

संचय आदि ग्रन्थ भी रचे हैं परन्तु इनमें से एक भी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ है। 'यशस्तिलकचम्पू' जो वि० सं० १०१६ में इन्होंने रचा वह उपलब्ध है। 'नीतिवाक्यामृत' की प्रशस्ति में जिस 'यशोधरचरित' का उल्लेख है वही यह 'यशस्तिलकचम्पू' है। यह ग्रंथ साहित्य-विषय में उत्कृष्ट है। इसमें कई कवियों, वैयाकरणों, नीतिशास्त्र-प्रणेताओं के नामों का उल्लेख है, जिनका ग्रंथकार ने अध्ययन-परिशीलन किया था।

नीतिशास्त्र के प्रणेताओं में गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पराशर, भीम, भीष्म, भारद्वाज आदि के उल्लेख हैं। यशोधर महाराजा का चरित्र-चित्रण करते हुए आचार्य ने राजनीति की बहुत ही विशद और विस्तृत चर्चा की है। 'यशस्तिलक' का तृतीय आश्वास राजनीति के तत्त्वों से भरा हुआ है।

सोमदेवसूरि अपने समय के विशिष्ट विद्वान् थे, यह उनके इन दो ग्रन्थों से स्पष्ट प्रतीत होता है।

नीतिवाक्यामृत-टीका :

'नीतिवाक्यामृत' पर हरिबल नामक विद्वान् ने वृत्ति की रचना की है। इसमें अनेक ग्रन्थों के उद्धरण देने से इसकी उपयोगिता बढ़ गई है। जिन कृतियों का इसमें उल्लेख है उनमें से कई आज उपलब्ध नहीं हैं। टीकाकार ने बहुश्रुत विद्वान् होने पर भी एक ही श्लोक को तीन-तीन आचार्यों के नाम से उद्धृत किया है।

उन्होंने 'काकतालीय' का विचित्र अर्थ किया है। 'स्ववधाय कृत्योत्थापनमिव...' इसमें 'कृत्योत्थापना' का भी विलक्षण अर्थ बताया है।[1]

संभवतः टीकाकार अजैन होने से कई परिभाषाओं से अनभिज्ञ थे, फलतः उन्होंने अपनी व्याख्या में ऐसी कई त्रुटियाँ की हैं।[2]

लघु-अर्हन्नीति :

प्राकृत में रचे गये 'बृहदर्हन्नीतिशास्त्र' के आधार पर आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने कुमारपाल महाराजा के लिये इस छोटे-से 'लघु-अर्हन्नीति' ग्रंथ का संस्कृत पद्य में प्रणयन किया था।

---

१. यह टीका-ग्रंथ मूलसहित निर्णयसागर प्रेस, बंबई से प्रकाशित हुआ था। फिर माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला से दो भागों में वि० सं० १९७९ में प्रकाशित हुआ है।

२. देखिये—'जैन सिद्धांत-भास्कर' भाग १५, किरण १.

इस ग्रंथ में धर्मानुसारी राजनीति का उपदेश दिया गया है। जैनागमों में निर्दिष्ट हाकार, माकार आदि सात नीतियों और आठवाँ द्रव्यदण्ड आदि भेद प्रकाशित किये गये है।[१]

कामन्दकीय-नीतिसार :

उपाध्याय भानुचन्द्र के शिष्य सिद्धिचन्द्र ने 'कामन्दकीय-नीतिसार' नामक ग्रन्थ का संकलन किया है। इसकी ३९ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के देवसा के पाडे में स्थित विमलगच्छ के भंडार में है।

जिनसंहिता :

मुनि जिनसेन ने 'जिनसंहिता' नामक नीतिविषयक ग्रन्थ रचा है।[२] इस ग्रन्थ में ६ अधिकार हैं : १. ऋणादान, २. दायभाग, ३. सीमानिर्णय, ४. क्षेत्रविषय, ५. निस्स्वामिवस्तुविषय और ६. साहस, स्तेय, भोजनादिकानुचित व्यवहार और सूतकाशौच।

राजनीति :

देवीदास नामक विद्वान् ने 'राजनीति' नामक ग्रंथ की प्राकृत में रचना की है। यह ग्रन्थ पूना के भांडारकर इन्स्टीट्यूट में है।

---

१. यह ग्रंथ गुजराती अनुवाद के साथ प्रकाशित हुआ है।

२. देखिए—केटेलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन सी० पी० एण्ड बरार, पृ० ६४४.

तेईसवां प्रकरण

शिल्पशास्त्र

वास्तुसार :

श्रीमालवंशीय ठक्कुर फेरू ने वि० सं० १३७२ में 'वास्तुसार' नामक वास्तु-शिल्प-शास्त्रविषयक ग्रंथ की प्राकृत भाषा में रचना की। वे कलश श्रेष्ठी के पौत्र और चंद्र श्रावक के पुत्र थे। उनकी माता का नाम चंद्रा था। वे धंधकुल में हुए थे और कन्नाणपुर में रहते थे। दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के वे खजांची थे।

इस ग्रंथ के गृहवास्तुप्रकरण में भूमिपरीक्षा, भूमिसाधना, भूमिलक्षण, मासफल, नींवनिवेशलग्न, गृहप्रवेशलग्न और सूर्यादिग्रहाष्टक का १५८ गाथाओं में वर्णन है। ५४ गाथाओं में बिम्बपरीक्षाप्रकरण और ६८ गाथाओं में प्रासादप्रकरण है। इस तरह इसमें कुल २८० गाथाएं हैं।[1]

शिल्पशास्त्र :

दिगंबर जैन भट्टारक एकसंधि ने 'शिल्पशास्त्र' नामक कृति की रचना की है, ऐसा जिनरत्नकोश, पृ० ३८३ में उल्लेख है।

---

१. यह ग्रन्थ 'रत्नपरीक्षादि-सप्तग्रन्थसंग्रह' में प्रकाशित है।

चौबीसवां प्रकरण

रत्नशास्त्र

प्राचीन भारत में रत्नशास्त्र एक विज्ञान माना जाता था। उसमें बहुत-सी बातें अनुश्रुतियों पर आधारित होती थीं। बाद के काल में रत्नशास्त्र के लेखकों ने अपने अनुभवों का संकलन करके उसे विशद बनाने का प्रयत्न किया है।

जैन आगमों में 'प्रज्ञापनासूत्र' (पत्र ७७, ७८) में वदूर, अंग (अंजण), पवाल, गोमेज्ज, रुचक, अंक, फलिह, लोहियक्ख, मरकय, मसारगल्ल, भूयमोयग, इन्द्रनील, हंसगब्भ, पुलक, सौगंधिक, चंद्रप्रह, वैडूर्य, जलकांत, सूर्यकांत आदि रत्नों के नाम आते हैं।

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के कोशप्रवेश्यप्रकरण (२-१०-२९) में रत्नों का वर्णन आता है। छठी शताब्दी के बाद होनेवाले अगस्ति ने रत्नों के बारे में अपना मत 'आगस्तीय-रत्नपरीक्षा' नाम से प्रकट किया है। ७ वीं-८ वीं शती के बुद्धभट्ट ने 'रत्नपरीक्षा' ग्रन्थ की रचना की है। 'गरुडपुराण' के ६८ से ७० अध्यायों में रत्नों का वर्णन है। 'मानसोल्लास' के भा० १ में कोशाध्याय में रत्नों का वर्णन मिलता है। 'रत्नसंग्रह', 'नवरत्नपरीक्षा' आदि कई ग्रंथ रत्नों का वर्णन करते हैं। संग्रामसिंह सोनी द्वारा रचित 'बुद्धिसागर' नामक ग्रन्थ में रत्नों की परीक्षा आदि विषय वर्णित हैं।

यहां जैन लेखकों द्वारा रचे हुए रत्नशास्त्रविषयक ग्रन्थों के विषय में परिचय दिया जा रहा है।

१. रत्नपरीक्षा :

श्रीमालवंशीय ठक्कुर फेरू ने वि० सं० १३७२ में 'रत्नपरीक्षा' नामक ग्रंथ की रचना की है। रत्नों के विषय में सुरमिति, अगस्त्य और बुद्धभट्ट ने जो ग्रंथ लिखे हैं उनको सामने रखकर फेरू ने अपने पुत्र हेमपाल के लिये १३२ गाथाओं में यह ग्रंथ प्राकृत में रचा है।

इस ग्रंथरचना में प्राचीन ग्रन्थों का आधार लेने पर भी ग्रन्थकार ने चौदहवीं शताब्दी के रत्न-व्यवसाय पर काफी प्रकाश डाला है। रत्नों के संबंध

में सुलतानयुग के किसी भी फारसी या अन्य ग्रन्थकार ने ठक्कुर फेरू जितने तथ्य नहीं दिये, इसलिये इस ग्रंथ का विशेष महत्त्व है। कई रत्नों के उत्पत्तिस्थान फेरू ने १४ वीं शती का आयात-निर्यात स्वयं देखकर निश्चित किये हैं। रत्नों के तौल और मूल्य भी प्राचीन शास्त्रों के आधार पर नहीं, बल्कि अपने समय में प्रचलित व्यवहार के आधार पर बताये हैं।

इस ग्रंथ में रत्नों के १. पद्मराग, २. मुक्ता, ३. विद्रुम, ४. मरकत, ५. पुष्पराज, ६. हीरा, ७. इन्द्रनील, ८. गोमेद और ९. वैडूर्य—ये नौ प्रकार गिनाए हैं (गाथा १४-१५)। इनके अतिरिक्त १०. लहसुनिया, ११. स्फटिक, १२. कर्केतन और १३. भीष्म नामक रत्नों का भी उल्लेख किया है; १४. लाल, १५. अकीक और १६. फिरोजा—ये पारसी रत्न हैं। इस प्रकार रत्नों की संख्या १६ है। इनमें भी महारत्न और उपरत्न—इन दो प्रकारों का निर्देश किया गया है।

इन रत्नों का १. उत्पत्तिस्थान, २. आकर, ३. वर्ण-छाया, ४. जाति, ५. गुण-दोष, ६. फल और ७. मूल्य बताते हुए विजाति रत्नों का विस्तार से वर्णन किया है।

शूर्पारक, कलिंग, कोशल और महाराष्ट्र में वज्र नामक रत्न; सिंहल और तुंबर आदि देशों में मुक्ताफल और पद्मरागमणि; मलयपर्वत और बर्बर देश में मरकतमणि; सिंहल में इन्द्रनीलमणि; विंध्यपर्वत, चीन, महाचीन और नेपाल में विद्रुम; नेपाल, कश्मीर और चीन आदि में लहसुनिया, वैडूर्य और स्फटिक मिलते हैं।

अच्छे रत्न स्वास्थ्य, दीर्घजीवन, धन और गौरव देनेवाले होते हैं तथा सर्प, जंगली जानवर, पानी, आग, विद्युत्, घाव और बीमारी से मुक्त करते हैं। खराब रत्न दुःखदायक होते हैं।

सूर्यग्रह के लिये पद्मराग, चंद्रग्रह के लिये मोती, मंगलग्रह के लिये मूंगा, बुधग्रह के लिये पन्ना, गुरुग्रह के लिये पुष्पराज, शुक्रग्रह के लिये हीरा, शनिग्रह के लिये नीलम, राहुग्रह के लिये गोमेद और केतुग्रह के लिये वैडूर्य—इस प्रकार ग्रहों के अनुसार रत्न धारण करने से ग्रह पीड़ा नहीं देते।

रत्नों के परीक्षक को मांडलिक कहा जाता था और ये लोग रत्नों का परस्पर मिलान करके उनकी परीक्षा करते थे।

पारसी रत्नों का विवरण तो फेरू का अपना मौलिक है। पद्मराग के प्राचीन भेद गिनाये हैं उसमें 'चुन्नी' का प्रयोग किया है, जिसका व्यवहार जौहरी

लोग आज भी करते हैं। इसी तरह घट्ट काले माणिक के लिये 'चिप्पडिया' (देश्य) शब्द का प्रयोग किया है। हीरे के लिये 'फार' शब्द का प्रयोग आज भी प्रचलित है।

मालूम होता है मालवा हीरों के व्यापार के लिये प्रसिद्ध था, क्योंकि फेरू ने शुद्ध हीरे के लिये 'मालवी' शब्द का प्रयोग किया है।

पन्ने के लिये बहुत-सी नयी बातें कही हैं। ठक्कुर फेरू के समय में नई और पुरानी खानों के पन्नों में भेद हो गया हो ऐसा मालूम होता है, क्योंकि फेरू ने गरुडोद्गार, कीडउठी, वासवती, मूगउनी और धूलिमराई—ऐसे तत्कालीन प्रचलित नामों का प्रयोग किया है।[1]

२. रत्नपरीक्षा :

सोम नामक किसी राजा ने 'रत्नपरीक्षा' नामक ग्रंथ[2] की रचना की है।

इसमें 'मौक्तिकपरीक्षा' के अंत में राजा के नाम का परिचायक श्लोक इस प्रकार है :

उत्पत्तिराकर-छाया-गुण-दोष-शुभाशुभम् ।
तोलनं मौल्यविन्यासः कथितः सोमभूभुजा ॥

ये सोम राजा कौन थे, कब हुए और किस देश के थे, यह ज्ञात नहीं हुआ है। ये जैन थे या अजैन, यह भी ज्ञात नहीं हो सका है। इनकी शैली अन्य रत्नपरीक्षा आदि ग्रंथों के समान ही है। प्रस्तुत ग्रंथ में १. रत्नपरीक्षा श्लोक २२, २. मौक्तिकपरीक्षा श्लोक ४८, ३. माणिक्यपरीक्षा श्लोक १७, ४. इन्द्रनील-परीक्षा श्लोक १५, ५. मरकतपरीक्षा श्लोक १२, ६. रत्नपरीक्षा श्लोक १७, ७. रत्नलक्षण श्लोक १५—इस प्रकार कुल मिलाकर १४६ अनष्टुप् श्लोक हैं। यह छोटा होने पर भी अतीव उपयोगी ग्रंथ है। इसमें रत्नों की उत्पत्ति, खान, छाया, गुण, दोष, शुभ, अशुभ, तौल और मूल्य का वर्णन किया गया है।

समस्तरत्नपरीक्षा :

जैन ग्रंथावली, पृ० ३६३ में 'समस्तरत्नपरीक्षा' नामक कृति का उल्लेख है। इसके ६०० श्लोकप्रमाण होने का भी निर्देश है, कर्ता के नाम आदि का कुछ भी उल्लेख नहीं है।

---

१. यह ग्रंथ 'रत्नपरीक्षादि-सप्तग्रंथसंग्रह' में प्रकाशित है। प्रकाशक है—राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६१.

२. इसकी हस्तलिखित प्रति पालीताना के विजयमोहनसूरीश्वरजी हस्तलिखित शास्त्रसंग्रह में है।

पचीसवाँ प्रकरण

मुद्राशास्त्र

द्रव्यपरीक्षा :

श्रीमालवंशीय ठक्कुर फेरू ने वि० सं० १३७५ में 'द्रव्यपरीक्षा' नामक ग्रंथ की अपने बन्धु और पुत्र के लिये प्राकृत भाषा में रचना की है।

'द्रव्यपरीक्षा' में ग्रन्थकार ने सिक्कों के मूल्य, तौल, द्रव्य, नाम और स्थान का विशद परिचय दिया है। पहले प्रकरण में चासनी का वर्णन है। दूसरे प्रकरण में स्वर्ण, रजत आदि मुद्राशास्त्रविषयक भिन्न-भिन्न धातुओं के शोधन का वर्णन किया है। इन दो प्रकरणों से ठक्कुर फेरू के रसायनशास्त्रसम्बन्धी गहरे ज्ञान का परिचय होता है। तीसरे प्रकरण में मूल्य का निर्देश है। चौथे प्रकरण में सब प्रकार की मुद्राओं का परिचय दिया हुआ है। इस ग्रन्थ में प्राकृत भाषा की १४९ गाथाओं में इन सभी विषयों का समावेश किया गया है।

भारत में मुद्राओं का प्रचलन अति प्राचीन काल से है। मुद्राओं और उनके विनिमय के बारे में साहित्यिक ग्रंथों, उनकी टीकाओं और जैन-बौद्ध अनुश्रुतियों में प्रसंगवशात् अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं। मुस्लिम तवारीखों में कहीं-कहीं टकसालों का वर्णन प्राप्त होता है। परन्तु मुद्राशास्त्र के समस्त अंग-प्रत्यंगों पर अधिकारपूर्ण प्रकाश डालनेवाला सिवाय इसके कोई ग्रंथ अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुआ है। इस दृष्टि से मुद्राविषयक ज्ञान के क्षेत्र में समग्र भारतीय साहित्य में एक मात्र कृति के रूप में यह ग्रन्थ मूर्धन्यकोटि में स्थान पाता है।

छः-सात सौ वर्ष पहले मुद्राशास्त्र-विषयक साधनों का सर्वथा अभाव था। उस समय फेरू ने इस विषय पर सर्वांगपूर्ण ग्रंथ लिख कर अपनी इतिहास-विषयक अभिरुचि का अच्छा परिचय दिया है।

ठक्कुर फेरू ने अपने ग्रंथ में सूचित किया है कि दिल्ली की टकसाल में स्थित सिक्कों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्तकर तथा मुद्राओं की परीक्षा कर उनका

तौल, मूल्य, धातुगत परिमाण, सिक्कों के नाम और स्थानसूचन आदि आवश्यक विषयों का मैंने इस ग्रन्थ में निरूपण किया है।

यद्यपि 'द्रव्यपरीक्षा' में बहुत प्राचीन मुद्राओं की सूचना नहीं है तथापि मध्यकालीन मुद्राओं का ज्ञान प्राप्त करने में इससे पर्याप्त सहायता मिलती है। ग्रंथ में लगभग २०० मुद्राओं का परिचय दिया हुआ है। उदाहरणार्थ पूतली, खीमली, कजानी, आदनी, रीणी, रूवाई, खुराजमी, वालिष्ट–इन मुद्राओं का तौल के साथ में वर्णन दिया हुआ है, लेकिन इनका सम्बन्ध किस राजवंश या देश से था यह जानना कठिन है। कई मुद्राओं के नाम राजवंशों से सम्बन्धित हैं, जैसे कुमरु-तिहुणगिरि।

इस प्रकार गुर्जर देश से सम्बन्धित मुद्राओं में कुमरपुरी, अजयपुरी, भीमपुरी, लाखापुरी, अर्जुनपुरी, विसलपुरी आदि नामवाली मुद्राएँ गुजरात के राजाओं—कुमारपाल वि० सं० ११९९ से १२२९, अजयपाल सं० १२२९ से १२३२, भीमदेव, लाखा राणा, अर्जुनदेव सं० १३१८ से १३३१, विसलदेव सं० १३०२ से १३१८—के नाम से प्रचलित मालूम होती हैं। प्रबन्ध ग्रन्थों में भीमप्रिय और विसलप्रिय नामक सिक्कों का उल्लेख मिलता है। मालवीमुद्रा, चंदेरिकापुर-मुद्रा, जालंधरीयमुद्रा, ढिल्लिकासत्कमुद्रा, अश्वपतिमहानरेन्द्रपातसाही-अल्लाउद्दीन-मुद्रा आदि कई मुद्राओं के नाम तौलमान के साथ बताये गये हैं। कुतुबुद्दीन बादशाह की स्वर्णमुद्रा, रूप्यमुद्रा और साहिमुद्रा का भी वर्णन किया गया है।[1]

जिन मुद्राओं का इस ग्रंथ में उल्लेख है वैसी कई मुद्राएँ संग्रहालयों में संगृहीत मिलती हैं, जैसे—लाहडरी, लगामी, समोसी, मगुदी, अव्दुली, फदुली, दीनार आदि। दीनार अलाउद्दीन का प्रधान सिक्का था।

जिन मुद्राओं का इस ग्रंथ में वर्णन है वैसी कई मुद्राओं का उल्लेख प्रसंगवश साहित्यिक ग्रन्थों में आता है, जैसे—केशरी का उल्लेख हेमचन्द्रसूरिकृत 'द्वयाश्रयमहाकाव्य' में, जइथल का उल्लेख 'युगप्रधानाचार्यगुर्वावली' में, द्रम्म का उल्लेख द्वयाश्रयमहाकाव्य, युगप्रधानाचार्यगुर्वावली आदि कई ग्रन्थों में आता है। दीनार का उल्लेख 'हरिवंशपुराण', 'प्रबन्धचिन्तामणि' आदि में आता है।

---

१. यह कृति 'रत्नपरीक्षादि-सप्तग्रंथसंग्रह' में प्रकाशित है। प्रकाशक है—राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६१.

छब्बीसवाँ प्रकरण

धातुविज्ञान

धातूत्पत्ति :

श्रीमालवंशीय ठक्कुर फेरू ने लगभग वि० सं० १३७५ में 'धातूत्पत्ति' नामक ग्रंथ की प्राकृत भाषा में रचना की है। इस ग्रन्थ में ५७ गाथाएँ हैं। इनमें पीतल, तांबा, सीसा, रांगा, कांसा, पारा, हिंगुलक, सिंदूर, कर्पूर, चन्दन, मृगनाभि आदि का विवेचन है।[1]

धातुवादप्रकरण :

सोमराजा-रचित 'रत्नपरीक्षा' के अन्त में 'धातुवादप्रकरण' नामक २५ श्लोकों का परिशिष्ट प्राप्त होता है। इसमें तांबे से सोना बनाने की विधि का निरूपण किया गया है। इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है।

भूगर्भप्रकाश :

श्रीमालवंशीय ठक्कुर फेरू ने करीब वि० सं० १३७५ में 'भूगर्भप्रकाश' नामक ग्रन्थ की प्राकृत भाषा में रचना की है। इस ग्रंथ में ताम्र, सुवर्ण, रजत, हिंगुल वगैरह बहुमूल्य द्रव्यवाली पृथ्वी का उपरिभाग कैसा होना चाहिये, किस रंग की मृत्तिका होनी चाहिये और कैसा स्वाद होने से कितने हाथ नीचे क्या-क्या धातुएँ निकलेंगी, इसका सविस्तर वर्णन देकर ग्रंथकार ने भारतीय भूगर्भ-शास्त्र के साहित्य में उल्लेखनीय अभिवृद्धि की है। यद्यपि प्राचीन साहित्यिक कृतियों में इस प्रकार के उल्लेख दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु उनसे विस्तृत जानकारी नहीं होती। इस दृष्टि से यह ग्रंथ भारतीय साहित्य के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है।[2]

---

१. यह ग्रन्थ 'रत्नपरीक्षादि-सप्तग्रन्थसंग्रह' में प्रकाशित है।

२. यह भी 'रत्नपरीक्षादि-सप्तग्रन्थसंग्रह' में प्रकाशित है।

सत्ताईसवाँ प्रकरण

प्राणिविज्ञान

आयुर्वेद में पशुपक्षियों की शरीररचना, स्वभाव, ऋतुचर्या, रोग और उनकी चिकित्सा के विषय में काफी लिखा गया है। 'अग्निपुराण' में गवायुर्वेद, गज-चिकित्सा, अश्वचिकित्सा आदि प्रकरण हैं। पालकाप्य नामक विद्वान् का 'हस्ति-आयुर्वेद' नामक एक प्राचीन ग्रन्थ है। नीलकंठ ने 'मातंगलीला' में हाथियों के लक्षण बड़ी अच्छी रीति से बताये हैं। जयदेव ने 'अश्ववैद्यक' नामक ग्रंथ में घोड़ों के लिये लिखा है। 'शालिहोत्र' नामक ग्रन्थ भी अश्वों के बारे में अच्छी जानकारी देता है। कुर्माचल (कुमाऊं) के राजा रुद्रदेव ने 'श्यैनिकशास्त्र' नामक एक ग्रंथ लिखा है, जिसमें बाज पक्षियों का वर्णन किया गया है और उनके द्वारा शिकार करने की रीति बताई गई है।

मृगपक्षिशास्त्र :

हंसदेव नामक जैन कवि (? यति) ने १३ वीं शताब्दी में पशु-पक्षियों के प्रकार, स्वभाव इत्यादि पर प्रकाश डालनेवाले 'मृग-पक्षिशास्त्र' नामक सुंदर और विशिष्ट ग्रन्थ की रचना की है।[1] इसमें अनुष्टुप् छंद में १७०० श्लोक हैं।

इस ग्रन्थ में पशु-पक्षियों के ३६ वर्ग बताए हैं। उनके रूप-रंग, प्रकार, स्वभाव, बाल्यावस्था, संभोगकाल, गर्भधारण-काल, खान-पान, आयुष्य और अन्य कई विशेषताओं का वर्णन किया है। सत्त्व-गुण पशु-पक्षियों में नहीं होता। उनमें रजोगुण और तमोगुण—ये दो ही गुण दीख पड़ते हैं। पशु-पक्षियों में भी उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन प्रकार बताये हैं। सिंह, हाथी, घोड़ा,

---

१. मद्रास के श्री राघवाचार्य को सबसे पहले इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति मिली थी। उन्होंने उसे त्रावनकोर के महाराजा को भेंट किया। डा० के० सी० वुड उसकी प्रतिलिपि करके अमेरिका ले गये। सन् १९२५ में श्री सुन्दराचार्य ने उसका अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित किया। मूल ग्रन्थ अभी छपा नहीं है, ऐसा मालूम होता है।

गाय, बैल, हंस, सारस, कोयल, कबूतर वगैरह उत्तम प्रकार के राजस गुण वाले हैं। चीता, बकरा, मृग, बाज आदि मध्यम राजस गुण वाले हैं। रीछ, गैंडा, भैंस आदि में अधम राजस गुण होता है। इसी प्रकार ऊँट, भेड़, कुत्ता, मुरगा आदि उत्तम तामस गुण वाले हैं। गिद्ध, तीतर वगैरह मध्यम तामस गुणयुक्त होते हैं। गधा, सूअर, बन्दर, गीदड़, बिल्ली, चूहा, कौआ वगैरह अधम तामस गुण वाले हैं।

पशु-पक्षियों की अधिकतम आयुष्य-मर्यादा इस प्रकार बताई गई है: हाथी १०० वर्ष, गैंडा २२, ऊँट ३०, घोड़ा २५, सिंह-भैंस-गाय-बैल वगैरह २०, चीता १६, गधा १२, बन्दर-कुत्ता-सूअर १०, बकरा ९, हंस ७, मोर ६, कबूतर ३ और चूहा तथा खरगोश १½ वर्ष।

इस ग्रन्थ में कई पशु-पक्षियों का रोचक वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ सिंह का वर्णन इस प्रकार है:

सिंह छः प्रकार के होते हैं—१. सिंह, २. मृगेंद्र, ३. पंचास्य, ४. हर्यक्ष, ५. केसरी और ६. हरि। उनके रूप-रंग, आकार-प्रकार और काम में कुछ भिन्नता होती है। कई घने जंगलों में तो कई ऊँची पहाड़ियों में रहते हैं। उनमें स्वाभाविक बल होता है। जब उनकी ६–७ वर्ष की उम्र होती है तब उनको काम बहुत सताता है। वे मादा को देखकर उसका शरीर चाटते हैं, पूंछ हिलाते हैं और कूद-कूद कर खूब जोरों से गर्जते हैं। संभोग का समय प्रायः आधी रात को होता है। गर्भावस्था में थोड़े समय तक नर और मादा साथ-साथ घूमते हैं। उस समय मादा की भूख कम हो जाती है। शरीर में शिथिलता आने पर शिकार के प्रति रुचि कम हो जाती है। ९ से १२ महीने के बाद प्रायः वसंत के अंत में और ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में प्रसव होता है। यदि शरद् ऋतु में प्रसूति हो जाय तो बच्चे कमजोर रहते हैं। एक से लेकर पांच तक की संख्या में बच्चों का जन्म होता है।

पहले तो वे माता के दूध पर पलते हैं। तीन-चार महीने के होते ही वे गर्जने लगते हैं और शिकार के पीछे दौड़ना शुरू करते हैं। चिकने और कोमल मांस की ओर उनकी ज्यादा रुचि होती है। दूसरे-तीसरे वर्ष से उनकी किशोरावस्था का आरंभ होता है। उस समय से उनके क्रोध की मात्रा बढ़ती रहती है। वे भूख सहन नहीं कर सकते, भय तो वे जानते ही नहीं। इसी से तो वे पशुओं के राजा कहे जाते हैं।

इस प्रकार के साधारण वर्णन के बाद उनके छः प्रकारों में से प्रत्येक की विशेषता बताई गई है:

१. सिंह की गरदन के बाल खूब घने होते हैं, रंग सुनहरी किन्तु पिछली ओर कुछ श्वेत होता है। वह शर की तरह खूब तेजी से दौड़ता है।

२. मृगेन्द्र की गति मंद और गंभीर होती है, उसकी आँखें सुनहरी और मूंछें खूब बड़ी होती हैं, उसके शरीर पर भाँति-भाँति के कई चकत्ते होते हैं।

३. पंचास्य उछल-उछल कर चलता है, उसकी जीभ मुँह से बाहर लटकती ही रहती है, उसे नींद खूब आती है, जब कभी देखिए वह निद्रा में ही दिखाई देता है।

४. हर्यश्व को हर समय पसीना ही छूटता रहता है।

५. केसरी का रंग लाल होता है जिसमें धारियाँ पड़ी हुई दीख पड़ती हैं।

६. हरि का शरीर बहुत छोटा होता है।

अंत में ग्रन्थकार ने बताया है कि पशुओं का पालन करने से और उनकी रक्षा करने से बड़ा पुण्य होता है। वे मनुष्य की सदा सहायता करते रहते हैं। गाय की रक्षा करने से पुण्य प्राप्त होता है।

पुस्तक के दूसरे भाग में पक्षियों का वर्णन है। प्रारंभ में ही बताया गया है कि प्राणी को अपने कर्मानुसार ही अंडज योनि प्राप्त होती है। पक्षी बड़े चतुर होते हैं। अंडों को कब फोड़ना चाहिये, इस विषय में उनका ज्ञान देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। पक्षी जंगल और घर का शृंगार है। पशुओं की तरह वे भी कई प्रकार से मनुष्यों के सहायक होते हैं।

ऋषियों ने बताया है कि जो पक्षियों को प्रेम से नहीं पालते और उनकी रक्षा नहीं करते वे इस पृथ्वी पर रहने योग्य नहीं हैं।

इसके बाद हंस, चकवाक, सारस, गरुड, कौआ, बगुला, तोता, मोर, कबूतर वगैरह के कई प्रकार के भेदों का सुन्दर और रोचक वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ में कुल मिलाकर करीब २२५ पशु-पक्षियों का वर्णन है।

तुरंगप्रबन्ध :

मंत्री दुर्लभराज ने 'तुरंगप्रबन्ध' नामक कृति की रचना की है किन्तु यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसमें अश्वों के गुणों का वर्णन होगा। रचना-समय वि० सं० १२१५ के लगभग है।

हस्तिपरीक्षा :

जैन गृहस्थ विद्वान् दुर्लभराज (वि० सं० १२१५ के आसपास) ने हस्तिपरीक्षा अपरनाम गजप्रबन्ध या गजपरीक्षा नामक ग्रन्थ की रचना १५०० श्लोक-प्रमाण की है। जैन ग्रन्थावली, पृ० ३६१ में इसका उल्लेख है।

अनुक्रमणिका

आ

शब्द — पृष्ठ

सहायक ग्रंथों की सूची

अनेकांत (मासिक)—सं० जुगलकिशोर मुख्तार–वीरसेवा-मन्दिर, दरियागंज, दिल्ली.

आगमोनुं दिग्दर्शन—हीरालाल र० कापड़िया–विनयचंद्र गुलाबचंद शाह, भावनगर, सन् १९४८.

आवश्यकनिर्युक्ति—आगमोदय समिति, बंबई, सन् १९२८.

आवश्यकवृत्ति—हरिभद्रसूरि–आगमोदय समिति, मेहसाना, सन् १९१६.

कथासरित्सागर—सोमदेव–सं० दुर्गाप्रसाद–निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३०.

काव्यमीमांसा—राजशेखर–सं० सी० डी० दलाल तथा आर० अनन्तकृष्ण शास्त्री–गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ौदा, सन् १९१६.

गुर्वावली—मुनिसुन्दरसूरि–यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, सन् १९०५.

ग्रन्थभंडार-सूची—छाणी (हस्तलिखित).

जयदामन्—वेलणकर–हरितोषमाला ग्रन्थावली, बम्बई, सन् १९४९.

जिनरत्नकोश—हरि दामोदर वेलणकर–भांडारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना, सन् १९४४.

जैन गूर्जर कविओ—मोहनलाल द० देसाई–जैन श्वेतांबर कान्फरेन्स, बम्बई, सन् १९२६.

जैन ग्रन्थावली—जैन श्वेतांबर कान्फरेन्स, बम्बई, वि० सं० १९६५.

जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास—हीरालाल र० कापड़िया–मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, बड़ौदा, सन् १९५६.

जैन सत्यप्रकाश (मासिक)—प्रका० चीमनलाल गो० शाह–अहमदाबाद.

जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी–हिन्दी ग्रन्थरत्न कार्यालय, बम्बई, सन् १९४२.

जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास—मोहनलाल दलीचंद देसाई–जैन श्वेतांबर कान्फरेन्स, बम्बई, सन् १९३३.

जैन साहित्य संशोधक (त्रैमासिक)—जिनविजयजी–भारत जैन विद्यालय, पूना, सन् १९२४.

जैन सिद्धांत भास्कर (षाण्मासिक)—जैन सिद्धांत भवन, आरा.

जैसलमेर-जैन-भांडागारीयग्रन्थानां सूचीपत्रम्—सं० सी० डी० दलाल तथा पं० लालचन्द्र भ० गांधी–गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ौदा, सन् १९२३.

जैसलमेर-ज्ञानभंडार-सूची—मुनि पुण्यविजयजी (अप्रकाशित).

डेला-ग्रन्थभंडार-सूची—हस्तलिखित.

निबन्धनिचय—कल्याणविजयजी–कल्याणविजय शास्त्रसंग्रह समिति, जालोर, सन् १९६५.

पत्तनस्थ प्राच्य जैन भाण्डागारीय ग्रन्थसूची—सी० डी० दलाल तथा ला० भ० गांधी–गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ौदा, सन् १९३७.

पाइयभाषाओ अने साहित्य—हीरालाल र० कापड़िया–सूरत.

पुरातत्त्व (त्रैमासिक)—गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद.

प्रबन्धचिन्तामणि—मेरुतुङ्गसूरि–सिंघी जैन ग्रंथमाला, कलकत्ता, सन् १९३३.

प्रबन्धपारिजात—कल्याणविजयजी–कल्याणविजय शास्त्र-संग्रह समिति, जालोर, सन् १९६६.

प्रभावकचरित—प्रभाचन्द्रसूरि–सिंघी जैन ग्रंथमाला, अहमदाबाद, सन् १९४०.

प्रमालक्ष्म—जिनेश्वरसूरि—तत्त्वविवेचक सभा, अहमदाबाद.

प्रमेयकमलमार्तण्ड—प्रभाचन्द्रसूरि–सं० महेन्द्रकुमार शास्त्री—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९४१.

प्रशस्तिसंग्रह—भुजबली शास्त्री–जैन सिद्धान्त भवन, आरा, सन् १९४२.

प्राकृत साहित्य का इतिहास—जगदीशचन्द्र जैन–चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९६१.

प्राचीन जैन लेखसंग्रह—जिनविजयजी–आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर, सन् १९२१.

भारतीय ज्योतिष्—नेमिचन्द्र शास्त्री–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९५२.

भारतीय विद्या (त्रैमासिक)—भारतीय विद्याभवन, बम्बई.

भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान—हीरालाल जैन–मध्यप्रदेश शासन साहित्य-परिषद्, भोपाल, सन् १९६२.

राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रन्थसूची—कस्तूरचन्द कासलीवाल–दि० जै० अतिशय क्षेत्र, जयपुर, सन् १९५४.

लांबडीस्थ हस्तलिखित जैन ज्ञानभंडार-सूचीपत्र—मुनि चतुरविजयजी–आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९२८.

शब्दानुशासन—मलयगिरि–सं० बेचरदास दोशी–ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, सन् १९६७.

संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास—युधिष्ठिर मीमांसक–वैदिक साधनाश्रम, देहरादून, वि० सं० २००७.

सरस्वतीकंठाभरण—भोजदेव–सं० केदारनाथ शर्मा तथा वा० ल० पणशीकर–निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९६४.

Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute—Poona, 1931–32.

Bhandarkar Mss. Reports—Poona, 1879–80 to 1887–91.

Bhandarkar Oriental Research Institute Catalogues—Poona.

Catalogue of Manuscripts in Punjab Jain Bhandars—Lahore.

Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts—L. D. Bharatiya Sanskriti Vidyamandir, Ahmedabad.

Epigraphia Indica—Delhi.

History of Classical Literature—Krishnamachary—Madras.

Indian Historical Quarterly—Calcutta.

Peterson Reports—Royal Asiatic Society, 1882 to 1898, Bombay.

Systems of Sanskrit Grammar—S. K. Belvalkar—Poona, 1915.

पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला
: १४ :

सम्पादक :
पं० दलसुख मालवणिया
डा० मोहनलाल मेहता

जैन साहित्य
का
बृहद् इतिहास

भाग ५

लाक्षणिक साहित्य

लेखक :
पं० अंबालाल प्रे० शाह

सच्चं लोगम्मि सारभूयं

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
जैनाश्रम
हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी-५
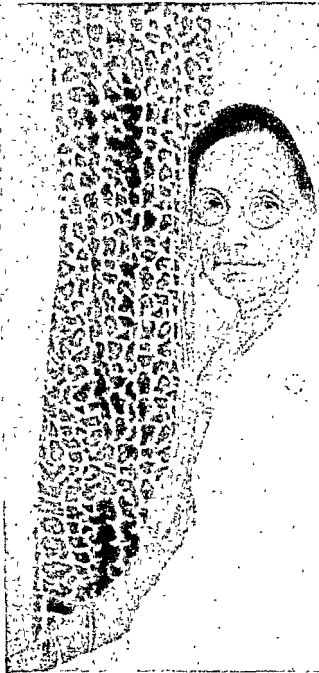
स्वर्गीय श्रीमती लाभ देवी जैन धर्मपत्नी श्री हरजसराय जैन

प्रकाशकीय

जैन साहित्य-निर्माण योजना के अन्तर्गत जैन साहित्य के बृहद् इतिहास का यह पांचवां भाग है। जैनों द्वारा प्राचीन काल से लिखा गया लाक्षणिक (Technical) साहित्य इसका विषय है। इसे प्रस्तुत करते हमें बड़ी खुशी और संतोष हो रहा है।

सदैव से जैन विचारक और विद्वान् इस क्षेत्र में भी भारतीय दाय को समृद्ध करते आए हैं। वे अपने लेख अपने-अपने समय में प्रसिद्ध और बोली जानेवाली भाषाओं में सर्वहितार्थ लिखते रहे हैं। यह सब ज्ञातव्य था। साधारण जैन जिनमें अक्सर साधुवर्ग भी शामिल है, इस ऐतिहासिक परिचय से अपरिचित-सा है। जब हम जानते ही नहीं कि पूर्व या भूत काल में हमारी जड़ें हैं और वर्तमान में हम तब से चले आ रहे हैं तो हमारा मन किस सिद्धि पर आश्चर्य अनुभव करे। गर्व का कारण ही कैसे प्रेरित हो।

यह पांचवां भाग उपर्युक्त आन्तरिक आन्दोलन का उत्तर है। हम यह नहीं कहते कि लाक्षणिक विद्याओं (Technical Sciences) के सम्बन्ध में यह परिश्रम जैन योगदान की पूरी कथा प्रस्तुत करता है। यह तो पहली ही कोशिश है जो आज तक किसी दिशा से हुई थी। तो भी लेखक ने बड़ी रुचि, मेहनत और अध्ययन से इस ग्रन्थ को रचा है। इसके लिये हम उन्हें बधाई देते हैं। ग्रन्थ में जगह-जगह पर लेखक ने निर्देश किया है कि अमुक-ग्रन्थ मिलता नहीं है या प्रकाशित नहीं हुआ है, इत्यादि। अब अन्य जैन विद्वानों और शोध या खोज-कर्ताओं पर यह उत्तरदायित्व है कि वे अनुपलब्ध या अप्रकाशित सामग्री को प्रकाश में लाएं। साधारण जैन भी समझे कि उसके धन के उपयोग के लिये एक बेहतर या बेहतरीन क्षेत्र उपस्थित हो गया है।

इसी प्रकार के निर्देश या संकेत इस इतिहास के पूर्व के चार भागों में भी कई स्थलों पर उनके लेखकों ने प्रकट किये हैं। जब समाज अपने उपलब्ध साधनों को इस ओर प्रेरित करेगा तो सम्पूर्णता-प्राप्ति कठिन न

रह जाएगी। हम अपने लिये भी अपने बुजुर्गों का गौरव अनुभव कर सकेंगे। वह दिन खुशी का होगा।

इस ग्रन्थ में लेखक ने २७ लाक्षणिक विषयों के साहित्य का वृत्तांत प्रस्तुत किया है। पूर्वजों के युग-युगादि में ये सब विषय प्रचलित थे। उन लोगों के अध्ययन के भी विषय थे। उन समयों में शिक्षा-दीक्षा के ये भी साधन थे। काल-परिवर्तन में पुराने माध्यम और ढंग बिलकुल बदल गए हैं, यद्यपि विषय लुप्त नहीं हो गए हैं। वे तो विद्याएँ थीं। अब भी नए जमाने में नए नामों से वे विषय समझे जाते हैं। पुराने नामों और तौर-तरीके से उनका साधारण परिचय कराना भी असम्भव-सा है। वर्तमान सदा बलवान् है। उसके साथ चलना श्रेष्ठ है। उसके विपरीत चलने का प्रयत्न करना हेय है।

इस वर्तमान युग में सारे संसार में इतिहास का मान किसी अन्य विषय से कम नहीं है। इसकी जरूरत सब विद्वज्जगत् और उसके अधिकारी मानते हैं। पुराने निशानों और शृंखलाओं की तलाश चारों दिशाओं में हो रही है। सभी को इतिहास जानने की कामना निरन्तर बनी है।

इस इतिहास में पाठक गणित आदि विषयों के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय से ही चकित होंगे कि उन महानुभावों के ज्ञान और अनुभव में बड़े गहरे प्रश्न आ चुके थे।

इस ग्रन्थ के विद्वान् लेखक पंडित अंबालाल प्रे० शाह अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में कार्य करते हैं। सम्पादन पं० श्री दलसुखभाई मालवणिया और डा० मोहनलाल मेहता ने किया है। पं० श्री मालवणिया कई वर्षों तक बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में जैन दर्शन पढ़ाते रहे हैं। हाल में ही आप कैनेडा में टोरन्टो यूनिवर्सिटी में १६ मास तक कार्य करके लौटे हैं। डा० मेहता पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी के अध्यक्ष और बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में जैन-अध्ययन के सम्मान्य प्राध्यापक हैं। इनकी रचना 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' के तीसरे भाग के लिये इन्हें उत्तर-प्रदेश सरकार से १५००) रुपये का रवींद्र पुरस्कार मिला है। इससे पहले भी ये राजस्थान सरकार से पुरस्कृत हुए थे। तब 'जैन दर्शन' ग्रन्थ पर १०००) रुपये और स्वर्ण-पदक इन्हें मिला था।

हम उपर्युक्त सब सज्जनों के आभारी हैं। उनकी सहायता हमें सदैव प्राप्त होती रहती है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का खर्च स्व० श्रीमती लाभदेवी हरजसराय जैन की वसीयत के निष्पादक (Executor) श्री अमरचंद्र जैन, राजहंस प्रेस, दिल्ली ने वहन किया है। स्व० महिला का निधन १९६० में मई १९ को ठीक विवाह-तिथि वाले दिन हो गया था। वे साधारणतया किसी पाठशाला या स्कूल से शिक्षित नहीं थीं। उनके कथनानुसार उनकी माता की भरसक कामना रही कि वे अपनी सन्तान में किसी को पुस्तकें बगल में दबाए स्कूल जाते देखें परन्तु ऐसा हुआ नहीं। स्वर्गीया ने हिन्दी अक्षर-ज्ञान बाद में संचित किया, इच्छा उर्दू और अंग्रेजी पढ़ने की भी रही पर लिखने का अभ्यास उनके लिये अशक्य था। नहीं किया तो वह ज्ञान भी नहीं हुआ। प्रतिदिन सामायिक के समय वे अपने ढंग और रुचि की धर्म-पुस्तकें और भजन आदि पढ़ती रहीं। चिन्तन करते-करते उन्हें यह प्रश्न प्रत्यक्ष हुआ कि क्या स्थानकवासी जैन ही मुक्ति पाएंगे ? फिर कभी यह जानने की उत्कण्ठा हुई कि 'हम' में और 'दिगम्बर-विचार' में भेद क्या है? उन्हें समझाया जाए। स्वयं वे दृढ़ साधुमार्गी स्थानकवासी जैन-श्रद्धा की थीं। धर्मार्थ काम के लिये उन्होंने वसीयत में प्रबन्ध किया था। उनके परिवार ने उस राशि का विस्तार कर दिया था। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन का खर्च श्रीमती लाभदेवी धर्मार्थ खाते से हुआ है। इस सहायता के लिये प्रकाशक अनेकशः धन्यवाद प्रकट करते हैं।

रूपमहल
फरीदाबाद
३१. १२. ६९

हरजसराय जैन
मन्त्री,
श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति
अमृतसर

प्राचीन भारत की विमान-विद्या

प्राचीन भारत की आत्म-विद्या, इसका दार्शनिक विवेक और विचारों की महिमा तथा गरिमा तो सर्व स्वीकृत ही है। पश्चिम देशों के दार्शनिक विचारकों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा के रूप में छोटे-बड़े अनेकों ग्रंथ लिखे हैं। जहाँ भारत अपनी अध्यात्मशिक्षा में जगद्‌गुरु रहा वहाँ अपनी वैज्ञानिक विद्या, वैभव और समृद्धि में भी अद्वितीय था, यह इतिहाससिद्ध बात है। नालंदा तथा तक्षशिला विश्वविद्यालय इस बात के ज्वलन्त साक्षी हैं। प्राचीन भारत के व्यापारी जब चहुँ ओर देश-देशान्तरों में अपने विकसित विज्ञान से उत्पादित अनेक प्रकार की सामग्री लेकर जाते थे तो उन देशों के निवासी भारत को एक अति विकसित तथा समृद्ध देश स्वीकारते थे और इस देश की ओर खिंचे आते थे। कोलम्बस इसी भारत की खोज में निकला था परन्तु दिशा भूलने के कारण ही उसे अमरीका देश मिला और उसके समीपवर्ती द्वीपों को वह भारत समझा तथा वहाँ के लोगों को 'इण्डियन' और द्वीपों को बाद में पश्चिम भारत (West Indies) पुकारा जाने लगा। उसे अपनी भूल का पता बाद में लगा। इसी भारत को प्राप्त करने किंवा उसके वैभव को लूटने के निमित्त से ही एलेग्जैण्डर और मुहम्मद गोरी तथा गज़नी इस ओर आकृष्ट हुए थे। कहने का भाव यह है कि प्राचीन भारत विज्ञान-विद्या तथा कला-कौशल में भी प्रवीणता और पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। इसकी वस्त्र-कलाएँ अदृश्य वस्त्र उत्पन्न करती थीं यानी विश्व में अनुपमेय वस्त्र तैयार करती थीं ये भी ऐतिहासिक बातें हैं। महाराज भोज के काल में भी अनेकों प्रकार की कलाओं, यंत्रों तथा वाहनों का वर्णन प्राप्त होता है। सौ योजन प्रतिघंटा भागने वाला 'अश्व', स्वयं चलने वाला 'पंखा' आदि का भी वर्णन मिलता है। उस समय के उपलब्ध ग्रंथों में यह भी लिखा है कि राजे-महाराजों के पास निजी विमान होते थे।

ऋग्वेद (८. ९१. ७ तथा १. ११८. १, ४) में खेरथ, खेऽनसः अर्थात् आकाशगामी रथ, या श्येन बाज पक्षी आदि की गतिवाले आकाशगामी यान बनाने का विधान कई स्थलों में मिलता है। वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि श्रीरामचन्द्र जी रावण पर विजय पाकर, उसके भाई विभीषण तथा अन्य अनेकों मित्रों के साथ में एक ही विशालकाय 'पुष्पक' विमान में बैठकर अयोध्या लौटे थे। रामायण में उक्त घटना निम्नोक्त शब्दों मे वर्णित है :—

अभिषिच्य च लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणं···
···············अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥
(बालकांड १. ८६)

इसी प्रकार अयोध्या नगरी के वर्णन के प्रसंग में कवि कहता है कि वह नगरी विचित्र आठ भागों में विभक्त है, उत्तम व श्रेष्ठ गुणों से युक्त नर-नारियों से अधिवासित है तथा अनेक प्रकार के रत्नों से सुसज्जित और विमान-गृहों से सुशोभित है (चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणायुताम् । सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम्–बाल० ५. १६) । श्लोक में निर्दिष्ट 'विमानगृह' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं । एक वास्तुविद्या (Architecture) के अर्थ में वह गृह जो उड़ते हुए विमानों के समान अत्यन्त ऊँचे तथा अनेक भूमियों (मंजिलों) वाले गगनचुंबी भवन जिनके ऊपर बैठे हुए लोगों को पृथिवीस्थ वस्तुएँ बहुत ही छोटी-छोटी दीखें जैसे विमान में बैठने वालों को प्रायः दीखती हैं । अर्थात् उस समय लोगों ने विमान में बैठकर ऊपर से ऐसे ही दृश्य देखे होंगे । दूसरा अर्थ 'विमान-गृह' से यह हो सकता है कि जिन्हें आज हम Hangers कहते हैं अर्थात् जहाँ विमान रखे जाते हैं । उस समय में विमान थे तथा रखे जाते थे और उनको बनाया जाता था यह इसी सर्ग के १९ वें श्लोक से प्रमाणित होता है :—

'विमानमिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि' ।

अयोध्या नगरी की नगर-रचना (Town Planning) के विषय में वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह नगरी ऐसी बसी या विकसित नहीं थी कि कहीं भूमि रिक्त पड़ी हो, न कहीं अति घनी बसी थी, वरञ्च वह इतनी संतुलित व सुसज्जित रूप में बनी हुई थी जैसे–'तपसा सिद्धानां दिवि अधिगतं विमानम् इव ।' अर्थात् विमान-निर्माण विद्या में तपे हुए सिद्धशिल्पियों द्वारा आकाश में उड़ता विमान हो । पतंग उड़ाने वाला एक बालक भी यह जानता है कि यदि पतंग का एक पक्ष (पासा) दूसरे पक्ष की अपेक्षा भारी हुआ या संतुलित दोनों पक्ष न हुए तो उसकी पतंग ऊँची न उड़कर एक ओर को झुककर नीचे गिर पड़ेगी । इसी भाव को अभिव्यक्त करने के लिए विमान के दोनों पक्ष सिद्ध हों ऐसा दृष्टांत देकर नगरी के दोनों पक्षों को समविकसित दर्शाने के लिए विमान की उपमा दी गई है । प्राचीन भारत में वास्तुविद्या में प्रवीण शिल्पी (Expert Architects) नगरों को जलाशयों, नदियों या समुद्रतटों के साथ-साथ निर्माण करते थे । पाटलीपुत्र (पटना) नदी के किनारे १८

योजन लम्बा नगर बना हुआ था। अयोध्या भी सरयू-तट पर १२ योजन लंबी बनी लिखी है। नगर के मध्यभाग में राजगृह, संवगृहादि होते और दोनों पक्षों में अन्य भवन, गृहादि बनाये जाते थे। नगर का आकार, पंखों को फैलाकर उड़ते श्येन (बाज पक्षी) या गीध पक्षी के समान होता था।

महाराजा भोज के काल में भी वायुयान या विमान उड़ते थे। उनके काल में रचित एक ग्रंथ 'समराङ्गणसूत्रधार' में पारे से उड़ाये जानेवाले विमान का उल्लेख आता है :—

लघुदारुमयं महाविहङ्गं दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य।
उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य चाति (ग्नि) पूर्णम्॥
(समरा० यन्त्रविधान ३१. ९५)

अर्थात् उसका शरीर अच्छी तरह जुड़ा हुआ और अतिदृढ़ होना चाहिए, उस विमान के उदर (Belly) में पारायन्त्र स्थित हो और उसे गर्म करने का आधार और अग्निपूर्ण (बारूद, Combustible Powder) का प्रबन्ध उसमें हो।

'युक्तिकल्पतरु' में भी इसी प्रकार वर्णन है :—

'व्योमयानं विमानं वा पूर्वमासीन्महीभुजाम्' (युक्तियान० ५०)

इससे स्पष्ट होता है कि उस समय के राजाओं के पास व्योमयान तथा विमान होते थे। हमारी समझ में व्योमयान तथा विमान शब्दों से विमानों में भिन्नता प्रदर्शित की गई है। व्योमयान से विमान कहीं अधिक गति तथा वेग-वान् थे।

जिस प्रकार काल की विकराल गाल में देशों के विकसित नगर तथा अपरिमित विभूतियाँ भूमि में दब कर नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार भारत की समृद्धि तथा उसका संमृद्ध साहित्य भी विदेशी आततायियों के विप्लवी आक्रमणों और उनकी बरबरता के कारण, उसके असंख्यों ग्रन्थों का लोप और विध्वंस हो गया। जिस प्रकार आजकल भारतीय राजकीय पुरातत्व विभाग भारत की दबी हुई भूमिगत सभ्यता को खोद-खोद कर प्रदर्शित कर रहा है, खेद है उतना ध्यान भारत के दबे हुए साहित्य को खोजने में नहीं देता। हमारी धारणा है अभी भी बहुत साहित्य लुप्त पड़ा है। कुछ काल पूर्व ही श्री वामनराव डा० कोकटनूर ने अमेरिकन केमिकल सोसाइटी के अधिवेशन में पढ़े एक निबन्ध में हस्तलिखित "अगस्त्य-संहिता" का नाम दिया और उसमें विमान के उड़ाने का वर्णन

किया तथा यह भी कहा कि 'पुष्पक विमान' के आविष्कारक महर्षि अगस्त्य थे। इस विषय में कुछ लेख पुनः विश्ववाणी में भी प्रकाशित हुए थे।

प्राचीन भारत के लुप्त तथा अज्ञात साहित्य की खोज के लिए ब्रह्ममुनि जी ने निश्चय किया कि अगस्त्य-संहिता ढूँढ़ी जाय। इसी खोज में वे बड़ौदा के राजकीय पुस्तकालय में पहुँचे। वहाँ उन्हें अगस्त्य-संहिता तो नहीं मिली पर महर्षि भरद्वाज के 'यंत्रसर्वस्व' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का बोधानन्द यति की वृत्ति-सहित "वैमानिक-प्रकरण" अपूर्ण भाग प्राप्त हुआ। उस भाग की उन्होंने प्रतिलिपि की। उक्त पुस्तकालय में बोधानन्द वृत्तिकार के अपने हाथ की लिखी नहीं वरन् पश्चात् की प्रतिलिपि है। बोधानन्द ने बड़ी विद्वत्तापूर्ण श्लोकबद्ध वृत्ति लिखी है परंतु प्रतिलिपिकार ने लिखने में कुछ अशुद्धियाँ तथा त्रुटियाँ की हैं। ब्रह्ममुनि जी ने उसका हिन्दी में अनुवाद कर सन् १९४३ में छपवाया और लेखक को भी एक प्रति उपहारस्वरूप भेजी। चूँकि यह 'विमान-शास्त्र' एक अति वैज्ञानिक पुस्तिका थी अतः हमने इसे हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस में अपने एक परिचित प्राध्यापक के पास, इस ग्रन्थ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों, कलाओं को अपने वैज्ञानिक शिल्पियों की सहायता लेकर कुछ नई खोज करने को भेजा। परन्तु हमारी एक वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त यह ग्रन्थ हमारे पास यह उपाधि देकर लौटा दिया गया कि इस पर परिश्रम करना व्यर्थ है। हमने इसे पुनः अलीगढ़ विश्वविद्यालय में भी छः मास के लिये विज्ञानकोविदों के पास रखा। पर उन्होंने भी कोई रुचि न दिखाई। इस प्रकार यह लुप्त साहित्य हमारे पास लगभग ९ वर्ष पड़ा रहा।

१९५२ की ग्रीष्मऋतु में एक अंग्रेज विमानशास्त्री (Aeronautic Engineer) हमारे सम्पर्क में आये। उनका नाम है श्री हॉले (Wholey)। जब हमने उनके सन्मुख इस पुस्तिका का वर्णन किया तो उन्होंने बड़ी रुचि प्रकट की। सायं जब वह इस ग्रंथ के विषय में जानकारी करने आये तो अपने साथ एक अन्य शिल्पी श्री वर्गीज को ले आये जो संस्कृत जानने का भी दावा रखते थे। चूँकि यह प्रतिलिपि किसी अर्वाचीन हस्तलिखित प्रतिलिपि की भी प्रतिलिपि थी अतः श्री वर्गीज ने यह व्यंग किया कि "यह तो किसी आधुनिक पंडित ने आजकल के विमानों को देखकर श्लोक व सूत्रबद्ध कर दिया है इत्यादि।" हमने कहा—श्रीमान्! यदि इस तुच्छ ग्रन्थ में वह लिखा हो जो आप के आजकल के विमान भी न कर पायें तो आप की धारणा सर्वथा मिथ्या हो जायेगी। इस पर

उन्होंने कोई उदाहरण देने को कहा। हमने अनायास ही पुस्तिका खोली। जैसा उसमें लिखा था, पढ़ कर सुनाया। उसमें एक पाठ था :—

संकोचनरहस्यो नाम—यंत्रांगोपसंहाराधिकोक्तरीत्या अंतरिक्षे अति वेगात् पलायमानानां विस्तृतखेटयानानामपाय सम्भवे विमानस्थ सप्तमकीलीचालनद्वारा तदंगोपसंहारक्रिया रहस्यम्।

अर्थात् यदि आकाश में आपका विमान अनेकों अतिवेग से भागने वाले शत्रु-विमानों से घिर जाय और आप के विमान के निकल भागने या नाश से बचने का कोई उपाय न दिखाई दे तो आप अपने विमान में लगी सात नम्बर की कीली (Lever) को चलाइए। इससे आप के विमान का एक-एक अंग सिकुड़ कर छोटा हो जायेगा और आप के विमान की गति अति तेज हो जायेगी और आप निकल जायेंगे। इस पाठ को सुन कर श्री ह्वॅले उत्तेजित और चकित होकर कुर्सी से उठ खड़े हुए और बोले—"वर्मा जी, क्या तुमने कभी चील को नीचे झपटते नहीं देखा है, उस समय कैसे वह अपने शरीर तथा पैरों को सिकुड़ कर अति तीव्र गति प्राप्त करती है, यही सिद्धान्त इस यन्त्र द्वारा प्रकट किया है। इस प्रकार के अनेकों स्थल जब उन्हें सुनाये तो वह इस ग्रंथिका के साथ मानो चिपट ही गये। उन्होंने हमारे साथ इस ग्रंथ के केवल एक सूत्र (दूसरे) ही पर लगभग एक महीना काम किया। विदा होने के समय हमने संदेह प्रकट करते हुए उनसे पूछा—"क्या इस परिश्रम को व्यर्थ भी समझा जा सकता है?" उन्होंने बड़े गंभीर भाव से उत्तर दिया—"मेरे विचार में व्यक्ति के जीवन में ऐसी घटना शायद दस लाख में एक बार आती है (It is a chance one out of a million)"। पाठक इस ग्रंथ की उपयोगिता का एक विदेशी विद्वान् के परिश्रम और शब्दों से अनुमान लगा सकते हैं। इसमें से उसे जो नये-नये भाव लेने थे, ले गया। हम लोगों के पास तो वे सूखे पन्ने ही पड़े हैं।

विमानप्रकरणम् :

ग्रन्थ परिचय—यह विमानप्रकरण भरद्वाज ऋषि के महाग्रन्थ 'यन्त्रसर्वस्व' का एक भाग है। 'यन्त्रसर्वस्व' महाग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इसके 'विमान-प्रकरण' पर यति बोधानन्द ने व्याख्या वृत्ति के रूप में लिखी, उसका कुछ भाग हस्तलिखित प्राप्त पुस्तिका में बोधानन्द यूँ लिखते हैं :—

"पूर्वाचार्यकृतान् शास्त्रानवलोक्य यथामति।
सर्वलोकोपकराय सर्वानर्थविनाशकम्॥

त्रयी हृदयसन्दोहसाररूपं सुखप्रदम् ।
सूत्रैः पञ्चशतैर्युक्तं शताधिकरणैस्तथा ॥
अष्टाध्यायसमायुक्तमति गूढं मनोहरम् ।
जगतामतिसंधानकारणं शुभदं नृणाम् ॥
अनायासाद् व्योमयानस्वरूपज्ञानसाधनम् ।
वैमानिकाधिकरणं कथ्यतेऽस्मिन् यथामति ॥
संग्रहाद् वैमानिकाधिकरणस्य यथाविधि ।
लिलेख बोधानन्दवृत्त्याख्यां व्याख्यां मनोहरम् ॥"

अर्थात् अपने से पूर्व आचार्यों के शास्त्रों का पूर्णरूप से अध्ययन कर सबके हित और सौकर्य के लिये इस 'वैमानिक अधिकरण' को ८ अध्याय, १०० अधिकरण और ५०० सूत्रों में विभाजित किया गया है और व्याख्या श्लोकों में निबद्ध की है। आगे लिखते हैं :—

"तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकारे सम्प्रदर्शितम् ।
नानाविमानवैचित्र्यरचनाक्रमबोधकम् ॥"

भाव है : भरद्वाज ऋषि ने अति परिश्रम कर मनुष्यों के अभीष्ट फलप्रद ४० अधिकारों से युक्त 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रंथ रचा और उसमें भिन्न-भिन्न विमानों की विचित्रता और रचना का बोध ८ अध्याय, ५०० सूत्रों द्वारा कराया।

इतना विशाल वैमानिक साहित्य ग्रंथ था जो लुप्त है और इस समय केवल बड़ौदा पुस्तकालय से एक लघु हस्तलिखित प्रतिलिपि केवल ५ सूत्रों की ही मिली है। शेष सूत्र न मालूम गुम हो गये या किसी दूसरे के हाथ लगे। हमारे एक मित्र एन० वी० गाद्रे ने हमें ताञ्जौर से एकबार लिखा था कि वहाँ एक निर्धन ब्राह्मण के पास इस विमान-शास्त्र के १५ सूत्र हैं, परन्तु हमें खेद है कि हम श्री गाद्रे की प्रेरणा के होते हुए भी उन सूत्रों को मोल भी न ले सके। उसने नहीं दिये। कितनी शोचनीय कथा तथा अवस्था है।

इस प्राप्त लघु पुस्तिका में सबसे पहिले प्राचीन विमानसम्बन्धी २५ विज्ञान-ग्रंथों की सूची दी हुई है। जैसे :—

शक्तिसूत्र—अगस्त्यकृत; सौदामिनीकला—ईश्वरकृत; अंशुमन्तंत्रम्—भरद्वाजकृत; यन्त्रसर्वस्व—भरद्वाजकृत; आकाशशास्त्रम्—भरद्वाजकृत; वाल्मीकिगणितं—वाल्मीकिकृत इत्यादि।